[बंगाल-हिन्दी-मण्डल, द्वारा पुरस्कृत]

विजयनगर-साम्राज्य का इतिहास

[कई चित्रों तथा मानचित्रों सहित]

भूमिका लेखक

डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी, डी-एस. सी. (लन्दन)

अध्यक्ष, इतिहास विभाग, प्रयाग विश्व-विद्यालय

लेखक

श्री वासुदेव उपाध्याय, एम० ए०

(मंगलाप्रसाद-पारितोषिक विजेता)

बंगाल-हिन्दी-मण्डल के लिए प्रकाशित

स स्ता सा हि त्य मं ड ल

नई दिल्ली

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री,
सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली।

प्रथम संस्करण
१९४५

मूल्य
चार रुपया

मुद्रक
अमरचन्द्र जैन,
राजहंस प्रेस,
सदर बाजार, दिल्ली

निवेदन

बंगाल-हिन्दी-मण्डल के विविध उद्देश्यों में एक यह भी है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी में अपने-अपने विषय के उत्कृष्ट विद्वानों से, उन्हें आदर-पूर्वक पारितोषिक भेंट करके, उत्तम प्रामाणिक पुस्तकें लिखाई जायें और उचित समझा जाय तो, पुरस्कृत पुस्तकों को प्रकाशित भी कराया जाय।

सन् १९४४ ई० में जिन हस्तलिखित पुस्तकों पर बंगाल हिन्दी-मंडल ने पारितोषिक प्रदान किये थे, उनमें से हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ ऐतिहासिक, विद्वान् श्री वासुदेव उपाध्याय, एम० ए० लिखित 'विजयनगर-साम्राज्य का इतिहास' नामक यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक इतिहास विषयक ग्रन्थों के लिखने में खासी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। 'विजयनगर-साम्राज्य का इतिहास' में पाठकों को लेखक का गम्भीर तथा खोजपूर्ण ऐतिहासिक अध्ययन मिलेगा, ऐसी आशा है।

यदि इस पुस्तक ने विद्वानों में उचित आदर पाया तो बंगाल-हिन्दी-मण्डल अपने विनम्र उद्योग को सफल समझेगा।

दिल्ली
५-७-४५

मन्त्री,
बंगाल-हिन्दी-मण्डल

वक्तव्य

किसी देश की संस्कृति उस देश के इतिहास में सन्निहित रहती है। अतएव उस देश की सभ्यता तथा संस्कृति का अनुशीलन करने के लिए हमें उसका इतिहास जानना आवश्यक है। जब तक रोम और ग्रीस के पुरातन इतिहास का अध्ययन न किया जाय तब तक उसकी महत्ता का परिचय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। ठीक यही दशा भारतवर्ष की भी है। यदि हमें अपने प्राचीन गौरव को जानना है तो हमें प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करना नितान्त आवश्यक है।

भारत में समय-समय पर अनेक साम्राज्य स्थापित हुए। वे उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचे और अन्त में काल के गाल में सदा के लिए विलीन हो गये। इन में कुछ ऐसे भी साम्राज्य हैं जिनका नाम केवल कथा-शेष रह गया है और जिनके अतुल वैभव तथा कला-कौशल की स्मृति वे खण्डहर दिलाते हैं जो समय के थपेड़े को सहकर भी आज अपना सिर उठाये खड़े हैं। विजयनगर का साम्राज्य इन्हीं साम्राज्यों में से एक है। इस साम्राज्य की महत्ता क्यों थी तथा इसको भारतीय इतिहास में क्यों इतना महत्त्व दिया जाता है इसका वर्णन अगले पृष्ठों में पाठकों को मिलेगा। परन्तु यहां तो मुझे केवल इतना ही कहना है कि हिन्दू-साम्राज्य के प्रतिष्ठापक तथा हिन्दू-संस्कृति के रक्षक ये विजयनगर सम्राट न होते तो आज हमारी संस्कृति का नाम भी न रहता। सच तो यह है कि दक्षिण भारत में भारतीय संस्कृति को बचाने का श्रेय इन्हीं राजाओं को प्राप्त है।

यह अत्यन्त दुःख का विषय है कि आज से केवल पचास वर्ष पूर्व इन महाप्रतापी राजाओं का कोई नाम भी नहीं जानता था। भारतीय जनता इनको भूल चुकी थी और विजयनगर का महान् साम्राज्य 'एक भूला हुआ

साम्राज्य' समझा जाने लगा था। इनकी पवित्र स्मृति को याद दिलाने वाले हम्पी के वे टूटे-फूटे खण्डहर थे जो मृत्यु के मुख में जाने की प्रतीक्षा में खड़े थे। परन्तु सर्व प्रथम इस महान् साम्राज्य के इतिहास की ओर ई० सेवेल नामक विद्वान् का ध्यान आकर्षित हुआ, जिन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध प्रामाणिक पुस्तक 'ए फारगाटेन इम्पायर' लिखकर इस साम्राज्य को प्रकाश में लाने का प्रशंसनीय कार्य किया। सेवेल की पुस्तक का नामकरण यथार्थ ही था। सेवेल के पश्चात् दक्षिणी भारत के ऐतिहासिकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन लोगों ने लगन के साथ इसका अध्ययन करना प्रारम्भ किया। इन विद्वानों में डा० कृष्णस्वामी, डा० सालातोर तथा फादर हेरास का नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानों ने इस साम्राज्य के इतिहास पर प्रामाणिक पुस्तकें लिखी हैं और इनकी शिष्य-मण्डली भी इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रही है। परन्तु यह सचमुच हमारे दुर्भाग्य की बात है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी में इस विषय पर एक भी पुस्तक अभी तक नहीं लिखी गई। विजयनगर का यह प्रस्तुत इतिहास इसी अभाव की पूर्ति करने का एक विनम्र प्रयास है। इस ग्रन्थ में विजयनगर साम्राज्य के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास का संक्षिप्त तथा प्रामाणिक विवेचन किया गया है। परन्तु मुझे इसमें कहा तक सफलता मिली है यह बतलाना तो विद्वानों का ही कार्य है। जहा तक मुझे मालूम है, इस विषय पर हिन्दी में यह सर्वप्रथम मौलिक ग्रन्थ है। मैंने केवल विजयनगर-साम्राज्य के इतिहास को हिन्दी पाठकों के लिए अन्धकार से हटाकर प्रकाश में लाने का उद्योग किया है। यदि इस इतिहास को पढ़कर एक भी भारतीय अपनी प्राचीन-संस्कृति की श्रेष्ठता का गर्व अनुभव करेगा तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूंगा।

अन्त में इस इतिहास के लिखने में जिन लोगों से मुझे सहायता मिली है उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना परम-कर्तव्य समझता हूं। सर्व प्रथम मैं डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, डी-एस० सी० को हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने कृपाकर

इस ग्रन्थ की भूमिका लिखकर इसे गौरवान्वित किया है। गुरुवर डा० ए. एस. अल्तेकर एम. ए., डी. लिट् तथा डा० रमाशंकर त्रिपाठी एम. ए., पी-एच. डी. का मैं हृदय से आभारी हूँ जिनके समीप रहकर मुझे इतिहास के अध्ययन का सुअवसर मिला है। बंगाल हिन्दी-मण्डल, दिल्ली के अधिकारियों–विशेषतः श्री वियोगी हरि जी को मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूं जिन्होंने इस पुस्तक को पुरस्कृत कर मेरे उत्साह को बढ़ाया है। मित्रवर डा. वासुदेव शरण अग्रवाल एम. ए., पी-एच. डी. का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने प्रांतीय म्यूजियम लखनऊ में अनुसन्धान करने का मुझे सुअवसर प्रदान किया। पूज्य भ्राता प्रो० बलदेव उपाध्याय एम. ए., साहित्याचार्य का मैं अभिवादन करता हूँ जिनकी कृपा से ही यह स्वल्प ज्ञान राशि मैं प्राप्त कर सका हूँ, अन्त में, मैं श्री मार्तण्ड उपाध्याय को धन्यवाद देना कैसे भूल सकता हूँ जिनके प्रयत्नों से यह पुस्तक स्वच्छ तथा सुन्दर प्रकाशित हो सकी है।

जल्दी के कारण भूलें इसमें कुछ रही हैं जिनके लिए मैं विद्वानों के समक्ष क्षमाप्रार्थी हूँ।

प्रयाग
५-७-४५

वासुदेव उपाध्याय

भूमिका

दक्षिण में ईसा की तेरहवीं सदी तक हिन्दुओं की शक्ति अक्षुण्ण रही। हिन्दू-धर्म, उसकी संस्थाओं और सामाजिक व्यवस्थाओं का जैसा विकास दक्षिण में हुआ, वैसा गुप्त साम्राज्य को छोड़कर सम्भवतः उत्तर भारत में कहीं भी न हो सका। चीन, मध्य एवं पश्चिमी एशिया की बर्बर तथा असभ्य जातियों के प्रवाह से प्रवाहित होने के कारण हिन्दू व्यवस्था उत्तरी भारत में व्यवस्थित होकर पूर्णतया विकसित न होसकी। राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक आंधियों के बवंडर में उत्तरी भारत अनेक शताब्दियों तक ऐसा फंसा रहा कि जिससे वहां का जीवन बहुत कुछ अस्त-व्यस्त रहा। उस प्रतिकूल वातावरण के कारण हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति का केन्द्र उत्तर से धीरे-धीरे दक्षिण में चला गया। वहां उसकी बहुत कुछ रक्षा और वृद्धि हुई। जिसकी साक्षी वहां की वास्तु-कला, चित्र कला, मानसिक वृत्तियां, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन और साहित्य सृष्टि-आज तक प्रत्यक्ष रूप से दे रहे हैं।

तेरहवीं शती के अन्तिम वर्षों में इस्लाम मतावलम्बी तुर्कों और अफगानों ने दक्षिण में बढ़ना आरम्भ किया। जातीय दुर्भाग्य जातीयता एवं सतर्कता के अभाव से क्रमशः दक्षिण में भी वैसी ही परिस्थिति हो गई जैसी उत्तर में थी। पहले देवगिर के राज्य का पतन हुआ। जिससे दक्षिण का सिंहद्वार आक्रमणकारियों के लिए खुल गया। खिलजी सेनाएं अपूर्व वेग से बढ़ती हुई काञ्ची, मधुरा, श्रीरङ्गम् एवं रामेश्वरम् तक पहुंच गईं। दक्षिण के हिन्दू राज्यों के अस्त हो जाने से वहां के समाज की दयनीय दशा होगई और हिन्दू संस्कृति के लिए विपत्तिजनक वातावरण प्रकट होगया।

इस बहुमुखी विपत्ति का शमन-दमन कठिनाइयों से कंटकित था।

तथापि हिन्दू शक्ति हताश न हुई। आत्म और गौरव रक्षा के लिए प्रयत्न होते रहे। उन्हीं प्रयत्नों में सबसे प्रमुख और सफल विजयनगर राज्य की स्थापना हुई। इस राज्य ने मुसलमानी राज्य का तुङ्गभद्रा से आगे बढ़ना यदि असम्भव नहीं तो दुस्तर और दुर्गम तो कर ही दिया। केवल इसी सेवा के लिए विजयनगर का राज्य भारतीय इतिहास में विशेष महत्त्व का अधिकारी है। यदि अधिक नहीं तो कम-से-कम उतने ही महत्त्व की बात यह भी है कि उस राज्य ने हिन्दू संस्कृति की रक्षा ही नहीं वरन् देश-काल के अनुसार उसका संवर्द्धन किया। आर्थिक तथा सांस्कृतिक उन्नति में इस राज्य ने जो सेवाएं कीं वे भी उज्ज्वल और आदरणीय हैं। इस कथन में मुझे तो कोई संकोच नहीं कि विजयनगर राज्य ने हिन्दू विद्या, संस्कृति, कला, मर्यादा की जैसी रक्षा और सेवा की वैसी महाराष्ट्र साम्राज्य द्वारा न हो सकी। उसका जो भी कारण हो किन्तु ऐतिहासिक स्थिति ऐसी ही है। इस राज्य की छत्रछाया में वेद, वेदान्त, उपनिषद धर्मशास्त्र, मीमांसा आदि का जैसा अध्ययन, पठन-पाठन और प्रचार हुआ वैसा फिर कभी किसी हिन्दू राज्य में न हो सका। विशेष रूप से वेद के उद्धार का श्रेय इसी राज्य के प्रकाण्ड पंडित राज्य-आचार्य सायण को ही है। इसके अतिरिक्त वैष्णव शैव, और जैन मतो की विषमता को कम करके उनकी उन्नति के लिए साधन भी इस राज्य ने उपस्थित किये। इस राज्य के प्राचीर के बल पर कला व कौशल सकुशल समृद्धि पाते रहे।

इस प्रकार सन् १३३६ से १५६५ अर्थात् सवा दोसौ वर्ष तक इसने हिन्दू स्वतन्त्रता और संस्कृति की पताका ऊँची रखी। इस अवसर से दक्षिण में वह आत्म विश्वास पूर्ण संस्कृतिक परिस्थिति उत्पन्न हो गई जिसके कारण विजयनगर के तिरोहित होने पर भी आक्रमणकारियों को वह सफलता न मिल सकी जो उन्हें पहले मिल चुकी थी। यही नहीं, वे भी ऐसे तेजहीन हो गए और उनके अस्त्र-शस्त्र ऐसे कुण्ठित हो गए कि

उनसे सास्कृतिक क्षति की सम्भावना बहुत ही कम रह गई। हिन्दू संस्कृति के गुण दोषों की छाया तो अन्यत्र भी देखने को मिलती है किन्तु उसके गुणों की छटा जैसी इस राज्य के आश्रय में सुदूर दक्षिण में रही और अब भी कुछ-कुछ सुदूर दक्षिण में दिखाई पड़ती है, वैसी कहीं नहीं प्राप्त है।

उपर्युक्त का मुख्य आशय विजयनगर के ऐतिहासिक एवं सस्कृतिक महत्ता की ओर ध्यान आकर्षित करना है। उत्तर के ऐतिहासिक सेवक अभी अपनी ही समस्याओं के अनुसंधान में इतने दत्तचित्त हैं कि दक्षिण के इतिहास अनुशीलन के लिए उन्हें अवकाश न मिल सका। दक्षिण के इतिहास सेवकों का ध्यान स्वभाविकतया उस ओर गया। वहा के इतिहास के साधन उन्हें सुलभ थे। राइस, सेवेल, फादर हेरास आदि योरपीय और कृष्णस्वामी आयंगर, सालातोर आदि दाक्षिणात्य इतिहास-सेवकों ने विजयनगर राज्य के इतिहास और संस्कृति पर अच्छा प्रकाश डाला। और सामग्री एकत्रित की। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उसके इतिहास का सांगोपाग अनुसंधान एव मार्मिक विवेचन समाप्त हो गया। अभी तक बहुत कुछ करना रह गया है। बहुत सी बातो म अभी तक विवाद हो रहा है। बहुत सी सामग्री अभी तक एकत्र होना बाकी है। उस सब सामग्री का मंथन, जो अभी तक प्राप्त हुई है। किया जा रहा है। जो अंग्रेजी पुस्तकें विजयनगर के इतिहास पर लिखी गई हैं। उनकी संख्या विषय के महत्त्व के अनुसार कम हैं। हिन्दी में तो इसपर कोई भी ग्रंथ न था।

उत्तर के इतिहास सेवियों में उस साम्राज्य पर सिवा वासुदेवजी उपाध्याय के सम्भवतः अन्य किसी ने इतना ध्यान नहीं दिया। किन्तु यही नहीं उन्होंने अपने अध्ययन का फल हिन्दी साहित्य एवं हिन्दी पाठकों को देकर सर्वथा प्रशंसनीय कार्य किया है। गुप्त साम्राज्य के इतिहास के अतिरिक्त उनका सरल सुग्राह्य और सारपूर्ण "विजयनगर-साम्राज्य का इतिहास" हिन्दी के ऐतिहासिक साहित्य की आवश्यक पूर्ति करता है।

इसके लिए हिन्दी साहित्य उनका आभारी है। प्रस्तुत ग्रंथ में राजनीतिक इतिहास के अतिरिक्त विजयनगर की आर्थिक, सामाजिक साहित्यिक, एवं धार्मिक दशा का सरल और सुबोध वर्णन है। जिससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है।

काशी विश्व विद्यालय के इतिहास विभाग से जो फल फले हैं उनमें भी उपाध्यायजी कुछ अधिक मोहक और उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। अभी तो उनका यौवन काल है। अतएव भविष्य में उनसे बहुत कुछ आशा है। उपाध्यायजी जिन कठिनाइयों और प्रतिकूल परिस्थितियों में जिस विश्वास और लगन के साथ काम कर रहे हैं वह आश्चर्य, कुतूहल और उत्साह-वर्द्धक है। वैसी स्थिति में जमकर अधिक परिश्रम करना और अपनी कृतियों को निरभिमान रहकर भूल जाना केवल उदात्त और विशाल हृदय व्यक्तियों में ही देखा गया है। मैं उनको इन गुणों के लिए बधाई देता हूँ। आशा है कि अन्य नव शिक्षित विद्या-प्रेमियों अथवा विद्याव्यसनी उनके इस गुण का अनुकरण कर सेवा के सच्चे अधिकारी एवं उज्वल यश के पात्र बनेंगे।

बंगाल हिन्दी मंडल ने इस इतिहास का आदर करके जिस विवेक का परिचय दिया है वह आशा-जनक है। मैं भी इसका अभिवादन करता हूँ। और मंगल कामना सहित हिन्दी के पाठकों और इतिहास प्रेमियों का ध्यान इस उपहार की ओर आकर्षित करता हूँ। मुझे पूरी आशा है कि वे इसका यथेष्ट आदर करेंगे।

रामप्रसाद त्रिपाठी,

इतिहास विभाग

प्रयाग विश्व-विद्यालय

१४-७-४५

विषय-सूची

संकेत-शब्द-सूची

अ० शा० —अर्थ-शास्त्र
आ० स० रि० —आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट
आरविदु —हिस्ट्री आफ आरविदु डाइनेस्ट्री
इ० ए० —इण्डियन एन्टिक्वेरी
ए० (एपि०) इ०—एपिग्रेफिका इण्डिका
ए० (एपि.) कर०—एपिग्रेफिका करनाटिका
ए० कले० —एपिग्रेफिक कलेक्शन
एपि० रि० —एपिग्रेफिक रिपोर्ट
ए फार० इम्पा०—ए फारगाटेन इम्पायर
कन्ट्रीब्यूशन —कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इण्डिया टु इण्डियन कलचर।
छा० उप० —छान्दोग्य उपनिषद्
जे० आर० ए० एस—जनरल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी।
जे० इ० हि० —जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री
जे० ए० एस० बी०—जरनल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल
जे. बी. एच. एस.—जरनल आफ बाम्बे हिस्टारिकल सोसायटी।
जे.बी.बी.आर.ए.एस—जरनल आफ बाम्बे ब्राञ्च आफ रायल एशियाटिक सोसायटी।
पराशर० —पराशर स्मृति
मनु० —मनुस्मृति
मै० आ० रि० —मैसूर आर्क्योलाजिकल रिपोर्ट
याज्ञ० —याज्ञवल्क्य-स्मृति
बृ० उप० —बृहदारण्यक उपनिषद्
शा० प० —शान्ति पर्व

शु० नी० —शुक्र-नीति

सा० इं० इ० —साउथ इण्डियन इन्सक्रुप्शन्स

सा० इ० ब्रो० —साउथ इण्डियन ब्रोन्ज़ेज

सोर्सेज़० —सोर्सेज़ आफ विजयनगर

इसके अतिरिक्त इलियट-हिस्ट्री का अर्थ 'हिस्ट्री आफ इण्डिया एज़ टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स' से तथा सालातोर-हिस्ट्री से अभिप्राय 'एडिमिनिस्ट्रेशन एण्ड सोसाइटी इन विजयनगर' नामक ग्रन्थों से समझना चाहिए।

दक्षिण भारतका प्राकृतिक मानचित्र
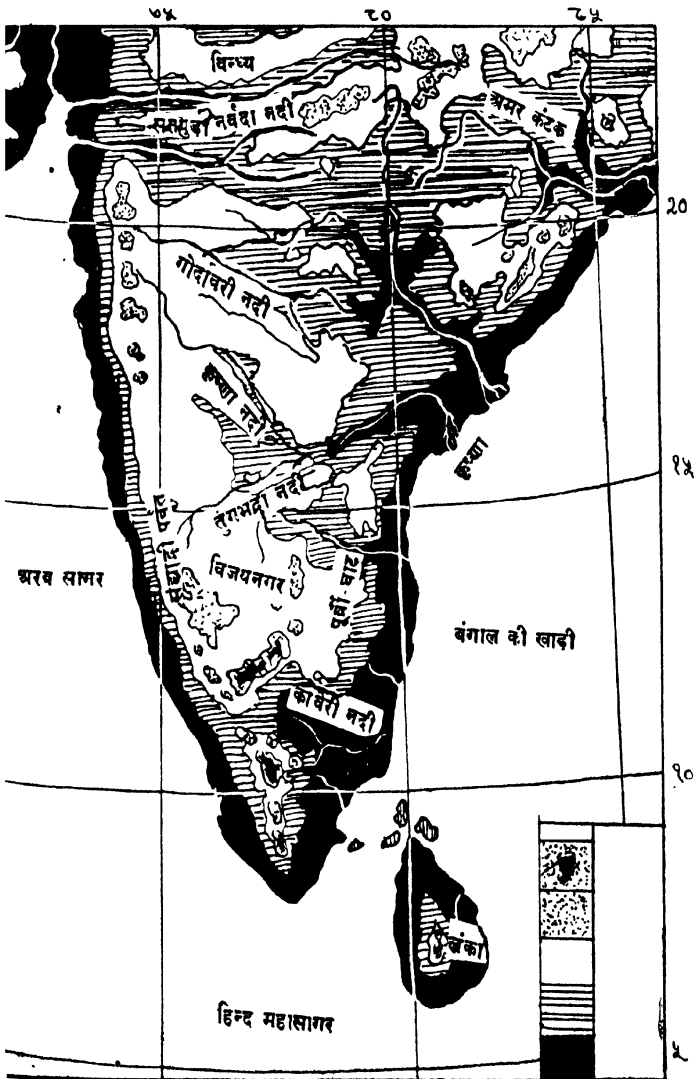
विजयनगर-साम्राज्य का इतिहास

: १ :

विजयनगर का परिचय

किसी देश के इतिहास के वास्तविक आधार वहाँ के मनुष्य तथा भूमि है। मनुष्यों के कार्यों का मूल कारण उस देश की प्राकृतिक अवस्था है। इतिहास मनुष्य के उन प्रयत्नों का विवरण प्रस्तुत करता है जिसे मनुष्य उस दशा में करने के लिए बाध्य हो जाता है। देश की प्राकृतिक अवस्था का—पहाड़ों, नदियों, जङ्गलों तथा जलवायु का प्रभाव मनुष्य के चरित्र तथा स्वभाव पर सदा दृष्टिगोचर होता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के कार्य उसकी परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। अतः किसी देश के इतिहास से भूगोल का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। (ऐतिहासिक भूगोल में इस बात की विवेचना करने का प्रयत्न किया जाता है, जिससे उस देश का इतिहास और प्राकृतिक सम्बन्ध पूर्णतया ज्ञात हो सके)। भारतीय प्राकृतिक अवस्था ने राजनैतिक इतिहास को बहुत प्राचीन-काल से प्रभावित कर रक्खा है। इसी ने उत्तर तथा दक्षिण भारत में अनेक भिन्नता पैदा कर दी। गंगा-सिन्धु के मैदान के दक्षिणी भाग में भारत का प्रायद्वीप फैला हुआ है जो पर्वतों के कारण पठार कहलाता है। दक्षिण भारत का पठार पश्चिमी भाग में सब से ऊँचा है जिसे सह्याद्रि पर्वत या पश्चिमी घाट कहते हैं। पठार का ढाल उस पर्वत के कारण पूर्व की ओर है। इसी भाग से नदियां निकल कर दक्षिण में बहती हुई बङ्गाल की खाड़ी में गिरती हैं। पूर्वी घाट से लेकर कारोमण्डल

विजयनगर की भौगोलिक स्थिति

तक चौड़ी पृथ्वी के भाग को कर्नाटक कहते हैं। पश्चिम में मालाबार के किनारे की भूमि तंग है, तौभी विदेशियों को उसने आश्रय दिया। पश्चिमी घाट में कई स्थान पर ऐसे मार्ग भी हैं जहाँ से सदा आवागमन हुआ करता है और पठार के मनुष्य मालाबार के किनारे जा सकते हैं। विदेशी अपना व्यापारिक सम्बन्ध इन्हीं मार्गों के द्वारा स्थापित कर सके। पुर्तगाली लोगों ने विजयनगर से पूरी तरह से व्यापार सम्बन्ध कायम रक्खा। दक्षिण में शासन करने वाले नरेशों ने अपनी जल-नौका तथा सेना को मालाबार के किनारे पर ही कायम किया। इस पठारी-भाग में कई एक नदियाँ भी बहती हैं जिन्होंने कितने साम्राज्यों तथा शासकों के उत्थान तथा पतन को देखा है। यहाँ की प्रधान नदी कृष्णा है जो पश्चिमी घाट से निकल कर बम्बई, हैदराबाद तथा मद्रास प्रान्त में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इसी नदी के किनारे दक्षिण के विजयनगर तथा बहमनी राज्यों के बीच घोर ऐतिहासिक-संग्राम होते रहे। इसी कृष्णा की सहायक तुंगभद्रा नदी के किनारे इस राज्य की प्रधान नगरी हम्पी ज़िले में बसाई गई थी। अतएव तुंगभद्रा को ही इस बात का गर्व है कि इसके गोद में विजयनगर पला था। विजयनगर के दुर्ग तुंगभद्रा के दाहिने किनारे पर बनाये गए थे। बाया किनारा कम प्रसिद्ध न था। विजयनगर के पूर्वगामी होयसल नरेशों का प्रधान स्थान यहीं था। यह भाग उत्तरी भारत से अधिक दुर्गम है क्योंकि पठार दो हज़ार फीट के लगभग ऊँचा है। विन्ध्य तथा सतपुड़ा पर्वत की श्रेणियों ने उत्तर से आक्रमण को रोकने में पर्याप्त सहायता पहुँचाई। यदि एक अधि-नायक स्वतन्त्रता की घोषणा करता तो उसको पराजित करने के लिए उत्तरी भारत में स्थित सम्राट् को सुदूर दक्षिण तक सेना पहुँचाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। उत्तरी मैदान तथा पठारी भाग की विभिन्न परिस्थितियों ने दोनों भागों के सामाजिक विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन तथा अन्य वस्तुओं में भिन्नता पैदा कर दी। उत्तरी भारत के महान् सम्राटों ने भी अपना शासन पठार में दृढ़-रूप से स्थापित

करने में असमर्थता दिखलाई। सुदूर दक्षिण में स्थित त्रिचनापली, मदुरा आदि के नरेशों का भाग्य मध्य पठार के शासकों पर अवलम्बित रहा। सारांश यह है कि पर्वतों तथा नदियों ने दक्षिण को बहुत समय तक बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित रक्खा। सर्व-प्रथम उत्तरी भारत के मैदान पर प्रभुत्व स्थापित कर दक्षिण पर विजय प्राप्त करने का विचार बाहरी सम्राट् करते रहे। अंग्रेजों से पूर्व भारत में विदेशी उत्तर-पश्चिम के मार्ग से आये। मैदान को जीत कर इस देश में शासन आरम्भ कर दिया। दक्षिण पर विजय करने का संकल्प बहुत थोड़े से शासकों ने किया था। मार्ग की कठिनता और प्राकृतिक दशा ही इसमें बाधक थे। यही कारण है कि विजयनगर-नरेश कई शताब्दियों तक स्वतन्त्र-रूप से शासन करते रहे। देश की पैदावार तथा वहाँ के पशुओं से ही किसी राज्य की समृद्धि होती है, अतः प्राकृतिक-विवरण के साथ-साथ विजयनगर-साम्राज्य के धान्य तथा पशुओं का वर्णन असंगत न होगा।

दक्षिणी पठार के हर एक प्रात की जलवायु गर्म है। यह गर्मी उत्तरी भारत के मुकाबिले में कम दुखदाई होती है। सर्दी के विचार से भी यहाँ पर ठंढक की मात्रा कम नहीं है। इस कारण यहाँ के मनुष्य परिश्रमी होते हैं। दक्षिणी भारत की भूमि सदा से उर्वरा रही है। प्राचीन चट्टान से निर्मित होने के कारण अत्यन्त उपजाऊ है। विशेषतया विजय-नगर प्रान्त को भूमि अन्य भागों से अच्छी है। 'कर्नाटक कवि-चरित' में कवि सर्वज्ञ ने विजयनगर की भूमि को अत्यन्त उर्वरा बताया है। उस समय के विदेशी यात्रियों ने भी इस भूमि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यहाँ की उपज में रुई, ज्वार, बाजरा, तिलहन आदि मुख्य हैं। ऊंचे स्थानों पर फल भी पैदा होता है। ऊंचे पर्वत सागौन तथा चन्दन के वृक्षों से भरे पड़े हैं। यहाँ के पशु भी देश की सम्पत्ति का ज्ञान कराते हैं। विजय-नगर साम्राज्य में पाले जाने वाले पशुओ में गाय, घोड़े, भैंस, बकरी, कुत्ते, तथा हिरन आदि की गणना होती रही [1]। वन-पशुओं में जंगली सुअर,

---

१ शुक्रनीति १, २८

शेर, चीता, भालू तथा नाना प्रकार की चिड़ियां; विशेषतया मोर, तोता आदि सम्मिलित थे। इन पशुओं का शिकार भी जनता द्वारा किया जाता था। विजयनगर-साम्राज्य में निर्मित मंदिरों तथा अन्य भवनों पर चिड़ियों तथा हिरनों की आकृतियां बनी हैं जो मनुष्यों के भावों को प्रकट करती हैं। विजयनगर के शासक गाय को पवित्र पशु—गौ-माता समझकर पूजा करते थे[1]। घोड़े तथा हाथियों का प्रयोग युद्ध में होता था इसलिए, उनका विशेष रूप से पालन-पोषण किया जाता था। ऊंट भी व्यापार का सामान ले जाने में अधिक काम आता था। मनुष्य को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता था[2]। यही कारण है कि हम्पी की दीवारों पर ऊंट की आकृतियाँ बनी हैं। पशु को सम्पत्ति का अंग समझकर विजयनगर नरेशों ने अर्थ-शास्त्र तथा बृहत्संहिता में वर्णित मार्ग के अनुसार उनके पालन-पोषण का प्रबन्ध किया था। शासकों के कार्यनिपुण होने के कारण साम्राज्य धन-धान्य से परिपूर्ण था। विजयनगर राजाओं के उच्च विचार, प्रजा-पालन की इच्छा तथा साम्राज्य को सबल और सुव्यवस्थित बनाने की लिप्सा को उत्तेजित करने में प्रकृति देवी ने पूर्ण रूप से सहायता की और उन्नति में हाथ बटाया। इसी कारण कई शताब्दियों तक विजयनगर वैभवपूर्ण था और स्वतन्त्रता का उपभोग करता रहा।

दक्षिण-भारत का भूभाग सदा से आक्रमण करने वालों के मार्ग में कठिनाइयाँ उपस्थित करता रहा। उत्तर-भारत से केवल महान् शक्तिशाली राजा ही दक्षिण पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफल हुए। इस सम्बन्ध में दक्षिण-भारत पर विजय करने वाले व्यक्तियों का संक्षिप्त वर्णन इस स्थान पर अप्रासंगिक न होगा।

प्राचीन काल से ही आर्य लोगों ने विन्ध्य पर्वत तथा महाकान्तार के कारण दक्षिण में जाने का साहस नहीं किया था। वहां आर्य-

---

१ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २४८

२ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३५०

सभ्यता किस ने फैलाई इसके विषय में अधिक बातें ज्ञात नहीं हैं। रामायण से पता चलता है कि अगस्त ऋषि ने सर्व प्रथम आर्य धर्म, भाषा, तथा संस्कृति को फैलाया। समय-समय पर ऋषि लोग दक्षिण में जाते रहे। बौद्ध ग्रंथ 'सुत्तनिपात' में गोदावरी के दक्षिण भाग का उल्लेख मिलता है। सम्राट् अशोक के लेख मैसूर-प्रांत में मिले हैं। उसके लेखों में चोल, पांड्य, केरल, ताम्रपर्णी (लंका) आदि का नाम आता है जिससे प्रकट होता है कि ईसापूर्व चौथी सदी में उत्तर से दक्षिण को बहुसंख्या में लोग जाया करते थे। उसके बाद शातवाहन लोगों ने राज्य प्रारम्भ किया। ईसा की तीसरी सदी तक दक्षिण में इनका राज्य रहा। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने अपने दिग्विजय के सम्बन्ध में समस्त दक्षिण के शासकों को परास्त किया था और उनसे कर लेता रहा। प्रयाग की प्रशस्ति में दक्षिण-आक्रमण का वर्णन विस्तार पूर्वक मिलता है। गुप्तों का अंत हो जाने पर उत्तर में हर्षवर्धन का नाम सम्राटों में गिना जाता है। हर्ष का राज्य समस्त उत्तरी भारत में विस्तृत था परन्तु दक्षिण में उसका प्रभाव जाता रहा। उसके समकालीन चालुक्य वंशी राजा पठार में शासन करते थे। उसी वंश के पुलकेशी द्वितीय ने हर्ष से भी युद्ध किया था। चालुक्यों के पश्चात् दसवीं सदी तक राष्ट्रकूट राजाओं का शासन दक्षिणी भारत में रहा। राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय ने कांची और तंजोर को जीत लिया था। चोल शासक ने भी उसकी आधीनता स्वीकार कर ली थी।

विजयनगर पूर्व दक्षिण भारत की राजनैतिक अवस्था

इस राज्य के पतन होने पर दक्षिण में कई राज्य स्थापित हो गए परन्तु उनमें से चार ही ऐसे थे जिनकी प्रधानता बनी रही। देवगिरि में यादव लोगों का राज्य हो गया। इस वंश का सब से प्रमुख राजा रामचन्द्र तेरहवीं सदी के मध्य में राज्य करता रहा। कहा जाता है कि यही रामचन्द्र संत ज्ञानेश्वर का आश्रयदाता था। इन्हीं संत ने भगवत्-गीता पर मराठी में 'ज्ञानेश्वरी' नामक टीका लिखी थी। इसी राजा के समय

में मुसलमान सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के गवर्नर ने देवगिरि पर चढ़ाई की थी। रामचन्द्र हार गया और सन्धि करने के लिए बाध्य हुआ। दूसरा मुख्य राज्य काकतीय लोगों का था जो वारंगल में शासन करते थे। गणपति बड़ा शक्ति-शाली और प्रतापी नरेश था। उसने आस-पास के सभी राजाओं को दबा कर अपनी प्रभुता स्थापित की। उसी की पुत्री रुद्रम्बा के पौत्र प्रतापरुद्र के समय में काकतीय वंश का ह्रास होने लगा। मुसलमानों ने उसे परास्त किया और धीरे-धीरे बहमनी सुल्तानों ने समस्त राज्य को ले लिया। तीसरा राज्य होयसल वंश का था जिसके स्थान पर विजयनगर राज्य की स्थापना हुई। सुदूर दक्षिण में पाड्य राज्य करते थे। इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि छठी सदी के बाद विजयनगर राज्य के अंत तक दक्षिण भारत के शासक ही पठार में राज्य करते रहे। यदा कदा मुसलमानो ने आक्रमण अवश्य किया परन्तु राज्य स्थापित न कर सके। दूरी तथा प्राकृतिक अवस्था को देख कर दिल्ली से शासन करने में असमर्थता का अनुभव किया और वे लूट का माल लेकर ही चले आए।

दक्षिण भारत में पट-परिवर्तन के साथ ही साथ सातवीं सदी से ही उत्तर में मुसलमानों का आक्रमण होता रहा। १२ वीं सदी के बाद तो उनका सुदृढ़ शासन स्थापित होगया। उनका विचार धीरे-धीरे बदल गया और लूटना छोड़ कर दिल्ली में पठान लोगों ने राज्य करना शुरू कर दिया। उत्तरी भारत में मुसलमानी राज्य सुदृढ़ रूप से काम करने लगा। बख्तियार के सैनिकों ने सारे उत्तरी मैदान को रौंद डाला। मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज को परास्त कर देहली में गुलाम वंश की स्थापना की। गुलाम वंश के पश्चात् खिलजी वंश दिल्ली की गद्दी का उत्तराधिकारी हो गया। बारहवीं शताब्दी तक किसी भी मुसलमान राजा ने दक्षिण भारत में प्रवेश करने का साहस न किया।

जैसा कहा गया है कि ११ वीं सदी के प्रारम्भ से ही दक्षिण भारत में कृष्णा नदी के उत्तर तथा दक्षिण भाग में दो शक्ति-शाली राज्य स्थापित

हो गए थे। कृष्णा के उत्तर-पश्चिम में यादव नरेश शासन करते थे जिनकी राजधानी देवगिरि थी। इससे पूर्व (आधुनिक निजाम राज्य) में काकतीय वंश का राज्य था, जिसकी राजधानी वारंगल के नाम से प्रसिद्ध थी। कृष्णा के दक्षिण मे समस्त पठार में प्रतापी होयसल-नरेश अपनी राजधानी द्वारसमुद्र से शासन करते रहे। दक्षिण-पूर्व के मैदान भाग में वीर पाड्य वंश का राज्य था। मलाबार के किनारे ट्रावनकोर की प्राचीन जातियां अपना प्रभुत्त्व स्थापित कर चुकी थीं। इन समस्त राजवंशों में होयसल का प्रभाव सर्वव्यापी था। सभी नरेश उसके प्रभुत्त्व को स्वीकार कर चुके थे और उसकी छत्रछाया में शासन करते थे। एक बार यादव रामचन्द्र ने होयसलों के प्रभुत्त्व को न मान कर उन पर १२७२ ई० में आक्रमण कर दिया था[1]। यद्यपि रामचन्द्र ने होयसल वंश को परास्त कर दिया परन्तु कुछ ही समय तक यादव वंश का प्रभाव स्थिर रहा। कारण यह था कि सन् १२७८ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण में देवगिरि (यादव राजधानी) पर आक्रमण किया। सुल्तान ने विजय की लालसा में यह आक्रमण नहीं किया था, वह देवगिरि को नष्ट करके सारा सोना, जवाहिरात आदि सारी सम्पत्ति उठा ले गया। उस समय मुसलमानों का भय समस्त दक्षिण में फैल गया। जज़िया भी सब लोग चुकाने के लिए तैयार हो गए थे। वीर नरसिंह होयसल के बेलूर ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि राजा ने सन् १२७८ ई० में प्रजा द्वारा मुसलमानों को कर देने के निमित्त भूमि का अलग से प्रबन्ध कर दिया जिसकी आय से वह कर दिया जाने लगा। कहने का तात्पर्य यह है कि तेरहवीं सदी के अंतिम भाग में दक्षिण भारत में मुसलमानों का प्रवेश हो गया। सुदूर दक्षिण में इससे भी पूर्व मुससमानों की एक छोटी सल्तनत क़ायम हो चुकी थी। सन् १०५० ई० में मदुरा में मलिकुलमुल्क ने मौलवी अलीयार के साथ अपना राज्य स्थापित कर लिया था और मला-

१ फ्लीट-डायनेस्टी आफ कनारी डिस्ट्रिक्ट इन बाम्बे प्रेसिडेंसी पृ० ७४

बार प्रांत तक उसका राज्य फैल चुका था [1]। परन्तु वीर-पांड्य के उदय होने पर मदुरा का मुसलमानी राज्य नष्ट हो गया। अलाउद्दीन खिलजी के सिंहासनारुढ़ होने पर दक्षिण भारत पर उसके सेनानायक मलिक काफ़ूर ने चढ़ाई की। सन् १३०६ ई० में काफ़ूर ने दिल्ली से प्रस्थान कर सर्वप्रथम वारंगल को घेर लिया। वहां के राजा प्रताप रुद्रदेव को परास्त कर होयसल राजधानी की ओर बढ़ा। उस समय होयसल वंश के प्रतापी राजा वीर बल्लाल तृतीय शासन करते थे। मुसलमानों की अगणित सेना के सन्मुख बल्लाल तृतीय ठहर न सके और मुसलमानों ने इन्हें कैद कर लिया [2]। मलिक काफ़ूर के हाथ में सारी सम्पति आ गई [3] और कर्नाटक तक की भूमि मलिक काफ़ूर के अधीन हो गई [4]। राजा के पुत्र ने दिल्ली सुल्तान की आज्ञा लेकर वीर बल्लाल को मुक्त करा लिया। फिरिस्ता के कथनानुसार काफ़ूर ने द्वार समुद्र और मलाबार पर विजय प्राप्त करके भी मदुरा के पांड्य नरेशों को स्वतंत्र रहने न दिया। दक्षिण भारत में शासन करने वाले किसी राजा की हिम्मत न हुई कि वह मुसलमानों को रोके। मदुरा में शेखर पांड्य के पुत्रों में राज्य के लिए झगड़े हो रहे थे। मलिक काफ़ूर को यह बात ज्ञात हो गई। अतएव इससे लाभ उठाने की बात उसने सोची। अचानक राजा के पुत्र सुन्दर पांड्य ने मुसलमान सेनापति की सहायता मांगी और मदुरा आने का निमन्त्रण दिया। काफ़ूर ने वहां पहुंच कर सुन्दर पांड्य को राजा बनाया और उनके प्रतिद्वन्द्वी वीर पांड्या को परास्त किया। काफ़ूर ने मलाबार पर भी आक्रमण किया था। जहां पर उस समय मुसलमानों की ही प्रधानता थी [5]। मदुरा के समस्त हिन्दू मंदिरों

---

१ नेल्सन-मदुरा डिक्ट्रक्ट मैन्युअल पृ० ६६।

२ ऐयंगर—साउथ इंडिया एण्ड मुसलिम इन्वेडर्स पृ० ९३।

३ इलियट—हिस्ट्री आफ इण्डिया भा० ३ पृ० २०३।

४ प्रा० स० रि० १९०७–८।

५ इलियट—हिस्ट्री भा० ३ पृ० ९०।

का ध्वंस करके वह रामेश्वरम् की ओर बढ़ा। रामेश्वरम् में एक मसजिद की स्थापना कर अपनी विजय-यात्रा को समाप्त किया। काफूर दक्षिण की रक्षा के निमित्त सेना का एक भाग छोड़ आया। भारत में सर्वत्र अपनी विजय-पताका फहरा कर मलिक काफूर सन् १३११ ई० में दिल्ली लौटा। अमीर खुसरू के कथनानुसार वह ९६००० मन सोना, जवाहिरात, हीरा, नीलम आदि मूल्यवान सामग्री, ५१२ हाथियों तथा १२००० घोड़ों के साथ वह दिल्ली वापस आया था। सन् १३२७ ई० में बहाउद्दीन ने कम्पिल पर चढ़ाई की। मुहम्मद बिन तुग़लक के सेनापति ने कम्पिल के राजा को मार डाला। उसके लड़के को मुसलमान बनाकर दिल्ली भेज दिया। इस आक्रमणों का प्रभाव दक्षिण भारत पर अत्यन्त हानिकारक साबित हुआ। यादव नरेश हरिपाल के क्रूरता तथा निर्दयता पूर्ण मारे जाने, मदुरा के विशाल मंदिर के ध्वंस होने तथा हिन्दुओं के पवित्र तीर्थस्थान रामेश्वरम् में मसजिद की स्थापना होने के कारण दक्षिण भारत के हिन्दुओं का हृदय टूक-टूक हो गया। इस दुखदाई घटना का अत्यन्त सजीव चित्र गंगदेवी ने अपने काव्य 'मदुरा-विजयम्' में खींचा है। उसका कहना था कि दक्षिण भारत में मुसलमानों के आक्रमण से मंदिरों में मृदंग-नाद के स्थान पर शृगाल की अवाज सुनाई पड़ती थी और यज्ञ तथा वेद मन्त्र का सर्वथा लोप हो गया था।

विभिन्न वर्णों में सम्मिश्रण के कारण मुसलमानों के संसर्ग से रवूटन तथा लवेस नामक दो नई जातियाँ पैदा हो गईं[1]। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दुओं का सामाजिक जीवन पवित्र न रहा तथा अनेक बाधाएं सामने उपस्थित हो गईं।

दक्षिण भारत पर मुसलमानों की विजय पताका बहुत काल तक फहरा न सकी। मलिक काफूर के लौटने के बाद ही हिन्दुओं ने पुनः स्वतन्त्र होने का प्रयास किया। समस्त दक्षिण भारत में होयसल

---

१ डा० ताराचन्द—भारत पर मुसलमानी प्रभाव पृ० ६३

नरेश वीर बल्लाल तृतीय की तूती बोलने लगी। सभी शासक उसके आधीन हो गए। इसका एक कारण यह भी था कि उत्तरी भारत तथा मध्यभारत में मुसलमान द्वन्द-युद्ध में संलग्न थे। कृष्णा नदी के दक्षिण में मुसलमान शासक अपना प्रभुत्व स्थिर न रख सके। अतः वीर बल्लाल तृतीय का प्रभाव समस्त दक्षिण में विस्तृत हो गया। अपनी राज-नगरी की रक्षा के निमित्त द्वारसमुद्र को छोड़ कर विरुपाक्षपुर को राजधानी बनाया[1]। कुछ विद्वानों का कथन है कि वीर बल्लाल तृतीय ने मदुरा के मुसलमान शासकों पर विजय प्राप्त करने के लिए द्वारसमुद्र को छोड़ कर तिरुवन्मलाई (विरुपाक्षपुर) को अपनी राजधानी बनाया। यह कथन इस कारण प्रामाणिक सिद्ध होता है कि सन् १३३० ई० में मुहम्मद तुग़लक ने दक्षिणी राज्यों को आधीन करने के निमित्त एक विशाल सेना मदुरा भेजी। थोड़े समय तक तुग़लक का प्रभाव वहाँ रहा। सन् १३३४ ई० तक मुहम्मद तुगलक के सिक्के दक्षिण में चलते रहे, जिससे उसका प्रभुत्व दक्षिण भारत में प्रमाणित होता है। सन् १३३५ ई० मलाबार का राज्य स्वतंत्र हो गया[2] इसके पश्चात् वारंगल को स्वतन्त्र करने के लिए तथा दक्षिण सेमुसलमानों को भगाने के लिए एक हिन्दू संघ स्थापित किया गया। इसमें होयसल नरेश वीर बल्लाल तृतीय और काकतीय राजा प्रताप रुद्रदेव के पुत्र कृष्ण नायक सम्मिलित थे। इस संघ का फल यह हुआ कि वारंगल से मुसलमान निकाल बाहर किये गए। केवल देवगिरि तुग़लक वंश के हाथ में रहा। सन् १३३५ ई० के बाद दक्षिण में उत्तरी भारत में मुसलमानी आक्रमण बन्द हो गए।

होयसल राजा वीर बल्लाल तृतीय ने सन् १३४० ई० में दक्षिण भारत से यवनों को निर्मूल करने की प्रतिज्ञा से मदुरा पर विशाल सेना

---

१ सालातोर—सोशल एण्ड पोलिटिकल लाइफ इन विजयनगर भा० १ भूमिका पृ० ७।

२ डा० ईश्वरीप्रसाद—मुसलिम रूल पृ० १५५।

लेकर चढ़ाई की। मुसलमान शासक परास्त हो गया। होयसल राजा ने पराजित शासक को पीछे लौट जाने की आज्ञा दे दी और उसे मुक्त कर सन्धि कर ली। इब्न-बतूता उस काल में दक्षिण में वर्तमान था। उसने लिखा है कि पराजित मुसलमान शासक ने रात में वीर बल्लाल तृतीय की सेना को घेर लिया। होयसल सेना में भगदड़ मच गई। वीर बल्लाल पकड़ लिया गया। सन् १३४२ ई० में मदुरा के राजा ने उस प्रतापी नरेश को निर्दयता पूर्वक मरवा डाला। इतना होते हुए भी होयसल वंश का नाश न हो सका। मुसलमान मदुरा से उत्तर की ओर न बढ़ सके। होयसल वंश के शासन की बागडोर बल्लाल के तृतीय पुत्र विरुपाक्ष या बल्लाल चतुर्थ के हाथ में रही। मदुरा में सन् १३५१ ई० तक मुसलमानी सिक्के पाये जाते रहे। इसी प्रमाण पर उस समय तक मदुरा के शासक मुसलमान ही कहे जाते हैं। तत्पश्चात् दक्षिण-भारत में यवन शासन नष्ट हो गया। रामेश्वरम् से लेकर कृष्णा नदी तक पुनः हिन्दू राज्य स्थापित हो गया। इसी हिन्दू राज्य के संस्थापक विजयनगर के शासक कहे जाते हैं। कृष्णा नदी के उत्तरी भाग में बहमनी राज्य की स्थापना हो चुकी थी। सन् १३६५ ई० में मुहम्मद गुलबर्गा की गद्दी का स्वामी हो गया था[1]। इन्हीं बहमनी बादशाहों से हिन्दू शासक सदा युद्ध करते रहे।

विजयनगर से पूर्व दक्षिण-भारत की संस्कृति

दक्षिण भारत में मुसलमानी प्रभुत्व तथा संस्कृति को मिटाकर विजयनगर के सम्राटों ने पुनः हिन्दू धर्म की संस्थापना की। परन्तु दक्षिण में शताब्दियों पूर्व से ही आर्य संस्कृति का पूर्ण विकास था। विजयनगर ने पुनः उसको नवजीवन प्रदान किया और जनता अपने प्राचीन स्वरूप को समझ गई। दक्षिण की पुरानी संस्कृति को जानने के लिए यह आवश्यक है कि कई शताब्दियों पूर्व से ही इसका दिग्दर्शन कराया जाय। कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि प्राचीन-

---

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ३८०।

काल में भारतीय राजा स्थान-स्थान पर धर्म-प्रचारक भेजते थे। उत्तरी भारत में जिस धर्म की उत्पत्ति तथा विकास हुआ, उसका फैलाव दक्षिण भारत में भी अवश्य होता रहा। बौद्ध तथा जैनमतों का भी प्रचार पठार की भूमि में होता रहा। उत्तरी भारत से ब्राह्मणों ने विशुद्ध आर्य धर्म (वैदिक धर्म) को सुदूर दक्षिण में फैलाया[१]। ईसा की सातवीं शताब्दी के बाद उत्तरी भारत धर्म तथा संस्कृति का केन्द्र न रह सका। उत्तर में मुसलमानो के आक्रमण शुरू हो गए थे। भारत में हर्षवर्धन के बाद शासकों में एकता न रही। कोई ऐसा वीर पैदा न हुआ जो सबको मिलाकर एक राष्ट्र कायम करता और बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा करता। मुसलमानों के आक्रमण से सर्वत्र आतंक छा गया। वैमनस्य, ईर्ष्या तथा फूट के कारण से बाहर वालों ने लाभ उठाया और हिन्दू राज्यों का अंत होने लगा। किसी को सिर उठाने की हिम्मत न हुई। यही कारण है कि आठवीं सदी से महान धार्मिक नेता दक्षिण भारत में ही उत्पन्न हुए जिनकी विचार धारा से समस्त भारत ओत-प्रोत हो गया। जिस मुसलमानी विजेताओं के डर से जो भारतीय संस्कृति दक्षिण में शरण ले चुकी थी, वही दक्षिण के धार्मिक सुधारकों के साथ उत्तर भारत में फिर आयी। दक्षिण भारत में बौद्ध तथा जैन मतों का ह्रास वैष्णव और शैव संतों के द्वारा किया गया। इन लोगों ने निवृत्ति प्रधान मतों का खण्डन करके प्रवृत्ति पर ज़ोर दिया। संसार में भगवान् की प्रतिमा—विष्णु तथा शिव—की पूजा का, प्रचार किया। इस कार्य में अडियार (शैव) और आलवार (वैष्णव) संतों का विशेष हाथ रहा। आलवार बौद्ध, जैन और शैवों के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने अपना प्रचार तामिल भाषा में किया जिससे जनता पर विशेष प्रभाव पड़ा। उनके रचित ग्रंथ वेदों के सदृश पुनीत तथा प्रमाणिक समझे जाते हैं। जनता विष्णु प्रतिमा तथा लिङ्ग

---

१ गोविन्दाचार्य— कमिंग आफ ब्राह्मण टू साउथ इंडिया जे. आर. ए. एस. १९१२।

की पूजा करने लगी। बौद्धों के स्थानापन्न होने के कारण और जनता द्वारा अपनाए जाने के निमित्त अडियार तथा आलवार संतों ने भी, तीर्थयात्रा, उपवास, मठ में पूजा, अहिंसा तथा सभी जातियों की समानता के भावों को लोगों में प्रचारित किया। परन्तु दक्षिण में इन दोनों मतों में शत्रुता की भावना सदा बनी रही। इसी को मिटाने के लिए भगवान् शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ। उन्होंने एकेश्वरवाद का सिद्धान्त चलाया। यद्यपि दक्षिण में वैष्णव आचार्य तथा शैव सिद्धान्त के प्रतिपादकों ने शंकर का विरोध किया, परन्तु अद्वैत सिद्धान्त का प्रचार कन्या-कुमारी से हिमालय तक हो गया। सभी ने उसकी महत्ता को स्वीकार किया। पल्लव तथा चोल नरेशों ने शैवमत को अपनाया परन्तु शासक तथा धार्मिक नेताओं में परस्पर विरोध बना रहा। इतनी विरोधी बातों के होते हुए भी रामानुज ने वैष्णव-मत का प्रचार किया। दसवीं शताब्दी के पश्चात् दक्षिण में वैष्णव मत की प्रधानता हो गई। उनका कथन था कि ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है और उसकी उपासना ही मोक्ष का प्रधान मार्ग है। आचार्य रामानुज ने भक्ति की धारा समस्त दक्षिण भारत में प्रवाहित की। उनका अद्वैत सिद्धान्त से भिन्न मत था। शंकर के मत का खण्डन कर रामानुज ने विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया और अपने मत को पुष्ट करने के लिए अनेक ग्रथों की रचना की। वैष्णव सम्प्रदाय में भक्ति की प्रधानता थी। ये 'हरि को भजे सो हरि का होई' के सिद्धान्त को कार्यरूप में परिणत कर रहे थे। शैव संतो ने भी उनका अनुकरण कर पांच बातों का विशेष रूप से प्रतिपादन किया। सर्व प्रथम अपने देव शिव में विश्वास रखने की शिक्षा दी। धार्मिक प्रचारक गुरु में भी अन्ध-भक्ति की बात सुनाई। पूजा, योग और आचार पर ज़ोर दिया। सहिष्णुता का प्रचार किया और भक्ति में समस्त जातियों की एकता तथा समानता की भावना प्रवाहित की। इतना होते हुए भी वैष्णव मत का प्रचार तथा उन्नति अविच्छिन्न रही। उसी दक्षिण में तीसरे व्यक्ति वल्लभाचार्य ने 'पुष्टि-मार्ग' की स्थापना की। दक्षिण भारत में उत्पन्न इन धार्मिक

सिद्धान्तों का प्रचार समस्त उत्तर भारत में भी हो गया। स्वामी रामानन्द ने वैष्णव मत का और अधिक प्रचार किया। उत्तर में कबीर तथा नानक आदि ने निर्गुण पंथ की आवाज़ उठाई। बंगाल में चैतन्य ने कृष्ण-भक्ति की धारा कीर्तन के रूप में प्रवाहित की। संत ज्ञानेश्वर ने महाराष्ट्र जनता में वैष्णव धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया था। कहने का तात्पर्य यह है कि विजयनगर शासकों से पूर्व दक्षिण भारत में अद्वैत-तथा द्वैत सिद्धान्तों में विरोध था। जंगम तथा लिङ्गायत लोगों में असीम वाद-विवाद हो रहा था। मुसलमानों के आक्रमण से हिन्दू जाति के रीति-रिवाज तथा सामाजिक नियमों पर कुठाराघात हो रहा था। मुसलमानों के पदार्पण से रवूटन तथा लवेस नामक नई जातिया पैदा हो गईं, थीं। अमीर खुसरू का कहना था कि कारोमण्डल के किनारे की भूमि पर मुसलमान जनता की प्रधानता थी। उनकी जनसंख्या बढ़ती जा रही थी। अरब के गयासुद्दीन दगमनी का राज्य सुदूर दक्षिण में विस्तृत था[1]। ऐसी अवस्था में सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में उथल-पुथल मच रही थी और सर्वत्र अशांति का राज्य था। हिन्दू जनता किसी ऐसे नायक को ढूढ रही थी जो प्रत्येक बंधनों को काट कर उनको मुक्त करे और हिन्दू-संस्कृति के आदर्श-मार्ग को दिखलावे।

ईसा की चौदहवीं सदी में दक्षिण भारत में हिन्दू जाति की रक्षा का प्रश्न था। प्राचीन धर्म पर होने वाले प्रहार से समाज को बचाना था। यही कारण है कि भारतीय-संस्कृति की रक्षा करने वाले एक राज्य की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना से की गई। दक्षिण में समाज की दशा शोचनीय हो गई थी। समस्त धार्मिक सिद्धान्तों में एकता का अभाव था। एक सम्प्रदाय वाले दूसरे से युद्ध किया करते थे। सभी मत वाले, वैष्णव तथा शैव आदि अपनी बातों की प्रधानता बतलाते तथा अपने सिद्धान्त की महानता का प्रतिपादन करते थे। वाद-विवाद

विजयनगर की उत्पत्ति

१ ईलियट-हिस्ट्री भा० ३ पृ० ९०।

से दक्षिण भारत के समाज में वैमनस्य का वायुमण्डल उत्पन्न हो गया था। विजयनगर के राजाओं ने सभी को यथार्थ ज्ञान का पाठ पढ़ाया। सच्चे धर्म की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और सहिष्णुता का भाव पैदा किया। इस कारण से जनता में आपस में प्रेम तथा एकता की भावना जागरित हुई। विजयनगर के सम्राटों ने विद्यारण्य तथा वेदान्त-देशिकाचार्य की सहायता से वैदिक साहित्य को पुनः प्रतिष्ठापित किया। विद्या की उन्नति तथा वैदिक ग्रन्थों के पठन-पाठन से जनता में प्राचीन संस्कृति का प्रचार हुआ। वेदों में निहित ज्ञान को सबके सामने रक्खा गया। इसमें वर्णित राजनीति को कार्यान्वित किया गया। इन्हीं बातों के उत्पादक विजयनगर के सम्राटो ने दक्षिण भारत में एकछत्र हिन्दू राज्य स्थापित किया। ये बातें विजयनगर की महत्ता तथा विशेषता की द्योतक हैं। इसके बाद ही हरिहर ने होयसल वंश का शासन अपने हाथ में ले लिया। इसके लिए किसी प्रकार का गृह-युद्ध न हुआ। बल्लाल तृतीय के वंशज ने भी इसे उचित समझा। इसी से राज्य की रक्षा हो सकती थी। अतएव विरुपाक्ष ने (वीर बल्लाल का पुत्र) स्वयं हरिहर के आधीन रहना स्वीकार कर लिया।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि चौदहवीं शताब्दी के मध्य में तुंगभद्रा से लेकर रामेश्वरम् तक होयसल वंश की तूती बोल रही थी। सम्राट वीर बल्लाल तृतीय ने समस्त दक्षिण पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। केवल नाम के लिए मुसलमान जनता मलाबार (तामिल देश) में निवास करती थी। इब्नबतूता ने सन् १३४२ तक बल्लाल तृतीय की शक्ति को देखा था, परन्तु इस प्रतापी राजा के मदुरा-युद्ध में विजयी होने पर भी धोखे से मुसलमानी सेना ने इसे पकड़ लिया तथा मार डाला। वीर बल्लाल तृतीय के राज्य में हरिहर तथा बुक्क नामक दो भ्राता थे। जो होयसल वंश के राज्य की रक्षा करते रहे तथा एक प्रांत के स्वामी (गवर्नर) थे। सन् १३३३ ई० तक वीर बल्लाल शासन

करता रहा[१]। उसके पश्चात् उसका पुत्र वल्लप्पा उत्तराधिकारी हुआ। इसको बल्लाल विरुपाक्ष भी कहते थे। होयसल वंश के शिलालेखों में वर्णन मिलता है कि हरिहर वीर बल्लाल तृतीय का सन् १३३३ई० में प्रधान मंत्री था और 'महामण्डलेश्वर' की पदवी से विभूषित था। उसके लेखों से ज्ञात होता है कि बल्लाल तृतीय का पुत्र विरुपाक्ष सन् १३३६ ई० में हरिहर के महामण्डलेश्वर पद पर विराजमान था[२]। उसी समय हरिहर के भ्राता मारप्प ने राज्य के पश्चिमी भाग में शत्रुओं पर विजय प्राप्त की[३]। हरिहर ने सम्राट की महान् पदवी धारण की और विजयकी खुशी में उत्सव मनाया तथा भूमि दान में दी[४]। इन समस्त प्रमाणों के विवेचन से यही प्रकट होता है कि सन् १३३६ ई० में विजयनगर राज्य की स्थापना होयसल वंश के स्थान पर हुई। हिन्दू जनता ने इसका तनिक भी विरोध नहीं किया। होयसल वंश के प्रात-अधिपति हरिहर ने ही नये राज्य की स्थापना की। वीर बल्लाल के पुत्र को शासन की बागडोर न देकर स्वयं अपने हाथ में ले लिया। उस समय इसकी ही आवश्यकता थी। जब कि कृष्णा के उत्तर में मुसलमानों का प्राबल्य था, उस दशा में किसी हिन्दू शक्तिशाली व्यक्ति की परम आवश्ययता थी, जो दक्षिण को मुसलमानों के आक्रमण से बचाये। आर्य संस्कृति की रक्षा कर सके। हरिहर ने विजयनगर की स्थापना कर इसकी पूर्ति की। दुर्बल तथा प्रभावहीन शासक विरुपाक्ष से कार्य भार स्वयं ले लिया। जनता ने भी इसे उचित समझा। बल्लाल के पुत्र विरुपाक्ष से हरिहर ने अपनी पुत्री का विवाह किया और अपनी छत्रछाया में उसे महामण्डलेश्वर बनाया। कहने का तात्पर्य यह है कि हरिहर ने किसी प्रकार का अन्याय नहीं किया। देश तथा काल पर विचार करने से उसका कार्य सर्वथा समुचित प्रतीत होता है। इसलिए जनता ने भी इस परिवर्तन का स्वागत किया। होयसल

---

१ ई० कर० ६ पृ० २०२। २ इ० कर० भा० १० पृ० १६६
३ ए० कर० ६ पृ० ३४७। ४ ए० कर० भा० ६ पृ० ३३)।

वंश के स्थानापन्न विजयनगर के शासकों की आज्ञा का पालन जनता उसी प्रकार करती रही, उनमें उसी मात्रा मे शाति विराजमान थी, जिस प्रकार वीर बल्लाल तृतीय के समय में थी। जनता में विद्रोह तथा नवीन राज्य के प्रति विरोध का तनिक भी आभास किसी लेख या साहित्य में नहीं मिलता। सब ने उस काल की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले, हिन्दू धर्म के प्रतिपालक विजयनगर-नरेशों का हार्दिक स्वागत किया। उनके साथ दत्त-चित्त होकर शासन में सहायता की। कुछ विद्वानों का मत है कि हरिहर होयसल वंश का युवक था[1]। अतएव जनता ने उसका स्वागत किया।[2] लेखों में इस प्रकार वर्णन पाया जाता है कि नन्द के कुमार कृष्ण (बुक्क) उत्पन्न होकर म्लेच्छों का नाश करेंगे[3]। वर्णन की शैली जो कुछ भी हो, परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि विजयनगर के शासकों ने राज्य स्थापित कर समस्त दक्षिण भारत की रक्षा की। सभी सम्प्रदाय (जैन, शैव, वैष्णव) वालों को मुसलमानों के रोष से बचाया। इस प्रकार देश तथा जाति की प्रतिष्ठा विजयनगर के द्वारा सुरक्षित की गई[4]।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि विजयनगर के प्रथम दो शासकों की प्रशस्तियों द्वारा की जाती है। इन्हीं लेखों के आधार पर यह कहा जाता है कि जब मुसलमानों का आक्रमण होयसल राज्य पर प्रारम्भ हुआ तो उसी समय वीर बल्लाल तृतीय ने हरिहर प्रथम (विजयनगर के प्रथम शासक) को होयसल राज्य के उत्तरी भाग का संरक्षक बनाया और 'महामण्डलेश्वर' की पदवी से विभूषित किया। मुसलमानों ने द्वारसमुद्र (होयसल की

---

१ इसका इस स्थान पर उत्तर देना उचित नहीं प्रतीत नहीं होता। इसका खण्डन अन्यत्र किया जायगा।

२ हेरास-बिगनिंग आफ विजयनगर पृ० ६३

३ ए० कर० ४ पृ० ५८।

४ कृष्णस्वामी-कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इंडिया टू इंडियन कल्चर पृ० २६७-६६

राजधानी) को सन् १३२७ ई० में नष्ट कर डाला[1] । उस समय से लोग तिरुवन्नमल्लाई (नई राजधानी) में निवास करने लगे । महामंडलेश्वर हरिहर ने मुसलमानों के आक्रमण को रोकने में घोर परिश्रम किया । यही हरिहर जब स्वयं शासक बना उस समय भी इसने महामण्डलेश्वर की पदवी न छोड़ी और न अन्य राजकीय पदवी को धारण किया । कारण स्पष्ट है कि हरिहर अपने को प्रजा का संरक्षक समझता था । स्वतंत्र शासक होने पर भी राजा की ऊंची आकांक्षाओं को न रखते हुए पहले ही की तरह जनता की सेवा करता रहा । लोगों ने भी इसे अपना पालक समझा और उनमें पूर्व की सी भावना बनी रही ।

अतएव लेखों में "महामण्डलेश्वर हरिहर होयसल देश में शासन करता है" ऐसी बात लिखी मिलती है । उसके उत्तराधिकारी बुक्क प्रथम की भी वैसी ही पदवी लेखों में मिलती है । सर्व प्रथम लेख (सन् १३३५ ई०) में महामण्डलेश्वर बुक्क का शासन होयसल देश में बतलाया गया है[2] । इन सब का कारण यही ज्ञात होता है कि विजयनगर शासकों को राज का प्रबंध आदर्श मार्ग पर करना था । वे अपने देश को यवनों के आक्रमण से बचाना चाहते थे । पूर्व के शासक होयसल राज्य में ही उनका शासन प्रारम्भ हुआ । अतः हरिहर प्रथम तथा बुक्क प्रथम भी होयसल देश के शासक (महा-मण्डलेश्वर) कहलाए । उनको नवीन पदवी धारण करने तथा राज्य के नाम-करण की चिन्ता न थी प्रत्युत सुचारु-रूप से वे शासन-प्रबंध में संलग्न रहे । ऐसे शासकों का जनता द्वारा स्वागत करना अत्यन्त स्वाभाविक बात थी ।

होयसल वंश के समाप्त हो जाने पर दक्षिण भारत में विजयनगर नाम का नवीन राज्य स्थापित किया गया । जिस समय दक्षिण की बागडोर विजयनगर नरेशों के हाथ में आई उस समय उत्तरी भारत में

---

१ फ्लीट—डाइनेस्टी आफ कनारी डिस्ट्रीक्ट पृ० ७० ।

२ आ० स० रि० १९०७-८-विजयनगर राज्य ।

विभिन्न मुसलमानी रियासतें—जौनपुर, गुजरात, बंगाल, खानदेश और कृष्णा नदी के किनारे बहमनी नामक—स्वतंत्रता की घोषणा कर चुकी थीं। ये समस्त रियासतें दिल्ली साम्राज्य के विभिन्न प्रान्त (राज्य के छोटे टुकड़े) के रूप में कायम की गई थीं। दिल्ली सम्राट के निर्बल होने पर स्वतन्त्र हो गईं। अतएव विजयनगर का विरोध समीपवर्ती बहमनी राज्य से सदा रहा और युद्ध होते रहे। इस विकट परिस्थिति में यवनों के अत्याचार से बचाने के लिए एवं हिन्दू संस्कृति की रक्षा के निमित्त विजयनगर राजवंश ने वीर बल्लाल के पुत्र को हटाकर अपना शासन प्रारम्भ किया।

विजयनगर का राज-वंश

विजयनगर के राजवंश-परम्परा के विषय में विद्वानों में मतभेद है। इसके लिए चार भिन्न-भिन्न मतों का प्रतिपादन किया जाता है। (१) काकतीय (२) कादम्ब (३) तुलुव तथा (४) यादव (तेलेगु) वंश से उनका सम्बन्ध बतलाया जाता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि हरिहर तथा बुक्क काकतीय वंश में उत्पन्न हुए थे। वे काकतीय नरेश प्रताप रुद्रदेव के कोषाध्यक्ष थे। जिस समय वारंगल पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ, ये दोनों वहां से भागकर होयसल नरेश वीर बल्लाल की शरण में आये। राजा ने उनको अपने यहां नियुक्त कर 'महामण्डलेश्वर' के पद पर रक्खा। इस मत के स्वीकार करने में कठिनाई यह है कि ऐतिहासिक घटनाएँ असत्य प्रमाणित हो जाती हैं। मुसलमानों को परास्त करने के साथ वारंगल के राजा ने होयसल राज्य पर भी आक्रमण किया था [१]। उपर्युक्त कथन के मानने वाले इस घटना को सत्य नहीं मानते। इसके अतिरिक्त विचारणीय विषय यह है कि काकतीय कुलोत्पन्न हरिहर और बुक्क ने आपत्ति के समय (मुसलमानी आक्रमण के समय) प्रताप रुद्रदेव को क्यों छोड़ कर होयसल नरेश की शरण ली। इसके अतिरिक्त वीर बल्लाल अपने शत्रु प्रतापरुद्र के वंशज को कभी महामण्डलेश्वर का पद

---

१ शर्मा—जे. बी. एच. एस. भा० २ पृ० २०७

नहीं दे सकता था [१]। यदि हरिहर के उत्तराधिकारी शासकों के लेखों का अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे संगम के पुत्र तथा यदुकुल के भूषण थे [२]। अतः काकतीय वंश से उत्पत्ति की बात सर्वथा अप्रमाणित हो जाती है।

तुलुव वंश से उत्पत्ति मानने वालों ने समस्त शासक वर्गों को मिश्रित कर दिया है। संगम के वंशज के शासन पश्चात् विजयनगर में कृष्णदेव-राय तुलुव का राज्य रहा। उसके समय में इस राज्य की अत्यन्त उन्नति हुई। इसी कारण से यह मान लिया जाता है कि हरिहर आदि भी तुलुव वंश के महान् व्यक्ति थे। परन्तु यह बात सारहीन है और संगम सालुव तथा तुलुव वंशों का सम्मिश्रण हो जाता है।

राइस महोदय ने विजयनगर की उत्पत्ति कदम्ब वंश से बतलाई है। परन्तु यह मत यथार्थ नहीं प्रतीत होता। आगे यह बात बतलाई जायगी कि विजय नगर के प्रांत अधिपति संगम के पुत्र मारप्प ने कदम्ब कुल का नाश कर दिया [३]। यदि संगम उसी वंश में उत्पन्न होता तो उसका पुत्र अपने वंश को नष्ट करने की बात कभी भी नहीं सोचता। आदर्श हिन्दू नरेश विजयनगर के शासक ऐसे कार्य को कभी भी नहीं कर सकते थे। अतएव राइस का सिद्धान्त भी अप्रमाणित हो जाता है।

साहित्य तथा लेखों के आधार पर यह बात युक्ति-संगत प्रतीत होती है कि विजयनगर के शासक होयसल वंश के थे। इस को सिद्ध करने के इतने प्रमाण मिलते हैं जिससे किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता। प्रथम बात तो यह है कि सर्वत्र एक प्रकार का ही उल्लेख पाया जाता है कि विजयनगर शासक होयसल देश पर अथवा होयसल राजधानी में राज्य करते थे। इन राजाओं ने इस पट्टन (होयसल राजधानी) को

---

१ सेवेल—ए फारगाटन एम्पायर पृ० २३

२ विट्गुंठा लेख—ए० इंडिका ३ प० २३

३ हेरास—कदम्ब-कुल।

अपना केन्द्र बनाया[1]। बुक्क की राजधानी सदा द्वारसमुद्र ही थी[2]। सन् १३८८ ई० में हरिहर द्वितीय पेनुकोंडा (होयसल राज्य का नगर) में शासन करता था[3]। सन् १५७१ के लेखों में तिरुमल्ल भी कर्नाटक का शासक कहा गया है[4]। इससे पूर्व १४६३ ई० के एक लेख में आदि पुरुष संगम की प्रशंसा की गई है और साथ ही साथ यह उल्लेख मिलता है कि संगम कर्नाटक की राज्य-लक्ष्मी का स्वामी था। इसके राज्य में यह देश सुख तथा वैभव पूर्ण था[5]। 'मदुरा-विजय' नामक काव्य-ग्रंथ में वर्णन मिलता है कि संगम के पुत्र बुक्क को कर्नाटक की जनता चन्द्रमा से तुलना करती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि विजय-नगर वंश का शासन कर्नाटक (होयसल देश) में सदा बना रहा। गंग-देवी ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है—

कर्णाटलोकनयनोत्सवपर्वचन्द्रः साकं तथा हृदयसंभृतया नरेन्द्रः।
कालोचितानि भुवने क्रमशः सुखानि वीरः चिराय विजयापुरमध्यवासीत्॥

कृष्णस्वामी ने भी इसी की पुष्टि की है कि विजयनगर के राजा कर्नाट वंश के थे[6]। समस्तप्रमाणों का यदि विवेचन किया जाय तो निम्न लिखित बातों पर विजयनगर शासक की उत्पत्ति होयसल वंश या कर्नाट वंश से प्रतीत होती है—

(१) विजयनगर शासक होयसल राजधानी से शासन करते रहे तथा उसको शीघ्र बदलने का प्रयत्न नहीं किया।
(२) विजयनगर के राजाओं ने होयसल वंश के रीति तथा शासन-प्रबन्ध को अपनाया।
(३) होयसल राज्य के अधिकारियों को विजयनगर साम्राज्य में उचित स्थान दिया गया।

---

१ मैसूर आर्क० रिपोर्ट १९१६ पृ० ५६।
२ रंगाचार्य—भा० १ पृ० १७। ३ ए० कर० भा० ४ पृ०१४।
४ ए० कर० भा० १२। ५ ए० कर० भा० ८ पृ० १५८।
६ कन्ट्रीब्यूशन ऑफ साउथ इण्डिया पृ० २९९।

(४) तेलेगु भाषा का ही व्यवहार विजयनगर-नरेशों ने किया।

(५) कर्नाट देश के आराध्यदेव विरुपाक्ष को ही विजयनगर के शासकों ने अपनाया। उनके लेखों के अन्त में "श्री विरुपाक्ष" लिखा मिलता है[1]।

अंत में विद्वानों के मतों से तेलेगु जाति से ही इनका सम्बन्ध प्रमाणित होता है। विजयनगर शासकों में इस जातीयता का गर्व था। पूर्वगामी होयसल राजाओ के किये गए कार्यों का समर्थन किया। वीर बल्लाल तृतीय के सारे दान-पत्रों की पुष्टि की। ज्यों के त्यों दानग्राही उसका उपभोग करते रहे[2]। यदि वंश-परम्परा में भेद होता तो विजयनगर शासक अपनी जातीय प्रभुताको बढ़ाते, अन्यजाति को इतना प्रोत्साहन न देते। इन बातों पर विचार करने से ये होयसल वंशज ही माने जा सकते हैं।

---

१ नेलोर लेख ए० इंडिका भा० ३ पृ० ११७।

२ ए० कर० भा० ६ पृ० १०५।

विजयनगर का विहङ्गम दृश्य

: २ :
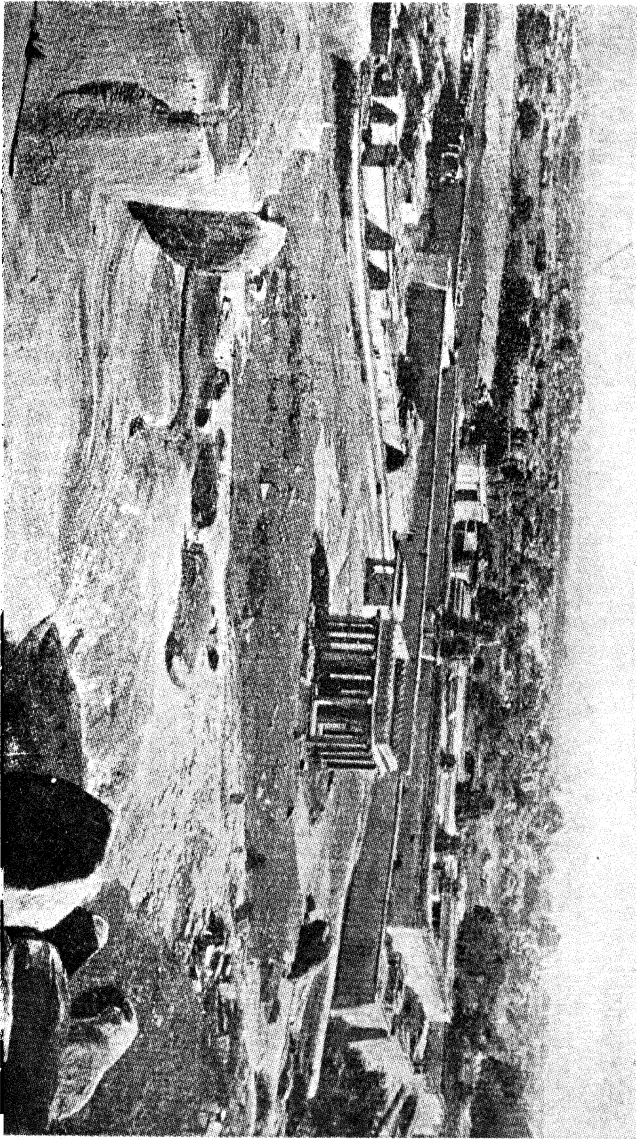
विजयनगर का प्रथम राज-वंश—संगम

दक्षिण भारत में ऐसी ऐतिहासिक परिस्थिति पैदा हो गई जिसके कारण विजयनगर की स्थापना हुई। इन हिन्दू धर्म के संस्थापक नरेशों ने कई शताब्दियों तक दक्षिण में शासन किया। उन शताब्दियों में चार विभिन्न वंश के राजाओं ने विजयनगर के सिंहासन को सुशोभित किया था। उनमें से प्रथम राज वंश को 'संगम-वंश' के नाम से पुकारते हैं। यह वंश विजयनगर के संस्थापक हरिहर के पिता के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है।

इस वंश के आदि-पुरुष का नाम संगम था। ये चन्द्रवंशी यादव थे। इसका उल्लेख अनेक शिलालेखों में पाया जाता है[1]। इनके

संगम

पिता का नाम अनन्त तथा माता का नाम मेघाम्बिका था। इनके पूर्व पुरुषों के विषय में अनेक बातें ज्ञात हैं जिनके कारण इतिहासज्ञ इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि ये होयसल वंश की ही शाखा थे। होयसल तथा संगम के वंशों में अनेक समानता पाई जाती है जिनका वर्णन पिछले परिच्छेद में किया गया है। संगम के शासन के विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु विजयनगर-संस्थापकों के पिता होने के कारण शिलालेखों में संगम की भूरि प्रशंसा की गई है। वह हिमालय के सदृश गम्भीर और धीर थे। कार्तिकेय के समान वीर, प्रकाश के समान तेजस्वी और प्रभायुक्त

---

१ सोमवंश्या यतः श्लाघ्या यादवा इति विश्रुताः।
तस्मिन् यदुकुले श्लाघ्ये सोऽभूच्छ्रीसंगमेश्वरः॥
येन पूर्वविधानेन पालिताः सकला प्रजाः।
(हरिहर द्वितीय का नेलोर दानपत्र- ए० इ० ३ पृ० ४०)

थे[1]। एक अन्य शिलालेख में वर्णन मिलता है कि विष्णु भगवान् चन्द्रवंश में जन्म लेने के विचार से संगम के रूप में पैदा हुए[2]। किसी ने लिखा है कि जिस प्रकार वसन्त के आगमन से समस्त ऋतुओं की शोभा बढ़ जाती है उसी प्रकार संगम ने अपने गुणों से यदुवंश को सुशोभित किया[3]। इसी के वंशज संगम द्वितीय के बिट्रगुन्ठ दान-प्रशस्ति में भोगनाथ ने लिखा है कि संगम (आदि पुरुष) के चरण कमलों पर राजाओं के मणियुक्त मुकुट रक्खे जाते थे और उनका सिर सदा झुका करता था[4]। इन सब बातों के आधार पर संगम एक प्रतापी शासक ज्ञात होता है। सम्भवतः वह होयसलो का आधीनस्थ एक बड़ा सामन्त था। तत्कालीन मुसलमानों को उसने युद्ध में परास्त किया[5]। इसलिए इन प्रशस्तियों के वर्णन को कोरी कल्पना नहीं मान सकते और साथ ही साथ इन पर विशेष महत्त्व भी नही दे सकते हैं।

आदि-स्थान

संगम का मूल स्थान मैसूर के पश्चिमी भाग में 'कलास' नामक स्थान मालूम पड़ता है। इसी भाग में प्रसिद्ध शंकराचार्य ने अपने आदि-पीठ शृंगेरी मठ की स्थापना की। इस पर संगम के पुत्र हरिहर बुक्क आदि बड़ी श्रद्धा रखते थे। विजय-नगर की स्थापना के पश्चात् हरिहर तथा उसके समस्त भ्राताओं ने विजय के उपलक्ष में इस प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान की यात्रा

---

१ ए० कर० भा० ८। २ ए० कर० भा११, २३

३ राइस—मैसूर इन्सक्रिपशन्स पृ० ५५

४ अस्ति प्रस्तूयमानप्रबलनिजभुजाखर्वगर्वानुरोधि।
स्वाधीनोदारसारस्थगितरिपुनृपोद्दामसंग्रामशक्तिः॥
राजा राजन्यकोटिप्रणतिपरिलुठन्मौलिमाणिक्यरोचि-
राजीनिराज्यमान स्फुरदुरुचरणाम्भोरुहः संगमेन्द्रः॥
(ए० इ० भा० ३)

५ हेरास–विजयनगर हिस्ट्री पृ० ७३
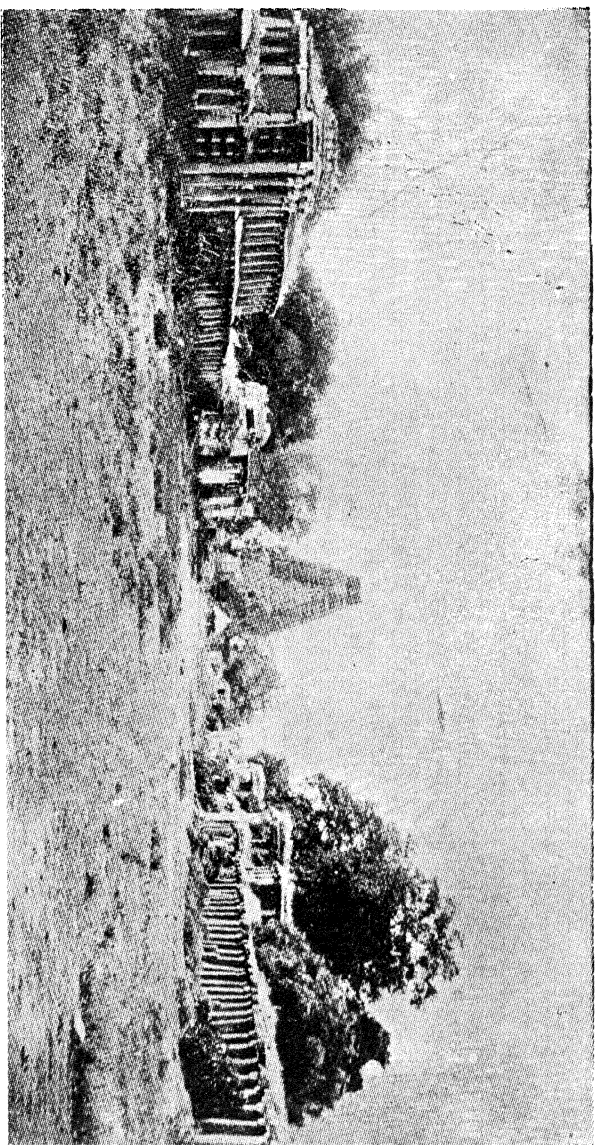
विजयनगर का बाजार

की थी। इस घटना से यही ज्ञात होता है कि ये मैसूर के पश्चिमी भाग के मूलनिवासी थे। अतः इन लोगों के हृदय में इस तीर्थ पर अतुल श्रद्धा होना स्वाभाविक है।

संगम के पुत्र

सङ्गम के अनेक पुत्र थे जिनका उल्लेख कई शिलालेखों में भिन्न-भिन्न रीति से मिलता है। किसी लेख में सङ्गम के केवल एक ही पुत्र बुक्क का नाम मिलता है[1]। यह बात निर्विवाद है कि सङ्गम के पुत्रों में से बुक्क के कारण ही इस वंश की कीर्ति विजयनगर साम्राज्य के रूप में कायम रही। इन शिला-लेखों का पूर्वोक्त कथन अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों के सामने सत्य नहीं माना जा सकता। कहीं संगम के प्रथम दो पुत्रों—हरिहर तथा बुक्क का निर्देश मिलता है[2]। पर अधिकांश लेखों में संगम के पांच पुत्रों के नाम मिलते हैं। यह उल्लेख प्रायः समान क्रम से ही सर्वत्र मिलता है जिससे उनके जेठे तथा छोटे होने का अनुमान सहज में ही किया जा सकता है। इन पांच पुत्रों के नाम इस प्रकार है[3]:—हरिहर, कम्पण, बुक्क, मारप्पा तथा मुद्दप्पा। हरिहर सब से जेठा और मुद्दप्पा सब से छोटा पुत्र था क्योंकि प्रशस्तियों में नामोल्लेख का क्रम सब में एकसा पाया जाता है।

संगम के समकालीन होयसल वंश का प्रतापी शासक बल्लाल तृतीय कर्नाटक देश में शासन करता था। फिरिस्ता ने लिखा है कि उत्तर के

---

१ एपि० कर्ना० भा०५; १४८; भा० ८, ६५; भा० ६, ८१ आदि

२ वही भा० ११, ३४, जे. बी, बी. आर. ए. एस० भा० १२ पृ० ३७३

३ तस्मादुद्भवन् पञ्च तनया शौर्यशालिनः।
कल्पावनिरुहाः पूर्वं कलशाम्बुनिधेरिव ॥
आदौ हरिहरः क्ष्माभृदथ कम्पमहीपतिः।
ततो बुक्कमहीपालः पश्चान्मारप्पमुद्दपौ ॥
एपि० इ० भाग ३, पृ० २५.

मुसलमानी आक्रमण की आशंका से वीर बल्लाल ने अपने जाति वालों की एक महती सभा की[1]। इसी सभा में संगम के पुत्रों को विधर्मियों के आक्रमण को रोकने का कठिन कार्य सौंपा गया।

संगम का सब से ज्येष्ठ पुत्र हरिहर ही विजयनगर साम्राज्य का स्थापक था। लेखों में वर्णन मिलता है कि चौदहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में होयसल वंश का प्रतापी नरेश वीर बल्लाल तृतीय शासन कर रहा था। प्रारम्भिक जीवन में हरिहर इसी के यहाँ सामन्त के रूप में कार्य करता रहा। फिरिस्ता का कहना है कि वारंगल पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने पर काकतीय शासक रुद्रदेव का पुत्र कृष्ण कर्नाटक के अधिपति बल्लालदेव के समीप आया और उसने हिन्दू संस्कृति के विनाशक मुसलमानों की चढ़ाई की सूचना दी। इस गुप्त मन्त्रणा के फलस्वरूप सब ने मुसलमानों से लोहा लेना स्वीकार किया। बल्लाल ने अपने स्वजातियों की एक महती सभा बुलाई जिसमें राज्य-रक्षा के अनेक उपाय सोचे गए। इसकी सफलता के लिए विरुपाक्षपुर की किलेबन्दी हुई और इसमें हरिहर महामण्डलेश्वर बनाया गया[2]। पठानों के आक्रमण से राज्य के उत्तरी भाग की रक्षा करना हरिहर के लिए प्रधान कार्य था। यह काम उत्तर-दायित्व का था। हरिहर की वीरता का परिचय इस उच्च-पद से स्वतः मिलता है। विट्रगुन्ठ की प्रशस्ति में उल्लेख पाया जाता है[3] कि हरिहर ने इन्द्र के समान बलशाली किसी मुसलमान सुल्तान को परास्त किया था।

हरिहर प्रथम

यह कहना सर्वथा न्याय-युक्त है कि बल्लाल तृतीय के जीवन-पर्यन्त

---

१ फिरिस्ता (ब्रिग्सका अनुवाद) भा० १ पृ० ४२७

२ हेरास—विजयनगर हिस्ट्री पृ० ६०

३ तत्र राजा हरिहरो धरणीमशिषच्चिरम्।
सुत्रामसदृशो येन सुरत्राणः पराजितः॥
(ए० इ० ३)

हरिहर महामण्डलेश्वर (प्रांत-अधिपति) के स्वरूप में ही शासन-प्रबन्ध करता रहा। संगम के वंशज को प्रारम्भिक अवस्था में स्वतंत्रता न मिली तथा हरिहर को इसकी कोई आवश्यकता भी न थी। इसके पश्चात् अंतिम राजा विरुपाक्ष के समय में हरिहर ने होयसल शासन का अन्त करके विजयनगर की स्थापना की। इसका मूल कारण हिन्दू जाति तथा संस्कृति की रक्षा ही माना जा सकता है। दक्षिण भारत में आर्य सभ्यता को पुनः जीवित करने की भावना से प्रेरित होकर हरिहर को यह कार्य करना पड़ा। सन् १३३६ ई० में हरिहर ने अपने भाइयों को साथ लेकर शृंगेरी मठ के प्रधान श्रीपाद भारती तीर्थ विद्यारण्य के समीप यात्रा की। अनुमान किया जाता है कि इसने विद्यारण्य के आदेशानुसार विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की।

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना

उपर्युक्त वर्णन से यह प्रकट होता है कि 'महामण्डलेश्वर' होते हुए हरिहर प्रथम ने सन् १३३६ ई० में विजयनगर राज्य की नींव डाली। होयसल वंश से सम्बन्धित तथा उन्हीं के स्थानापन्न होने के कारण हरिहर ने अपनी पदवी को नहीं त्यागा। वह स्वतन्त्र शासक होने पर भी अपने को 'महामण्डलेश्वर' तथा होयसल भूमि का राजा कहता रहा [1]।

इस काल के पश्चात् प्रशस्तियों में वर्णन मिलता है, कि दक्षिण भारत के दक्षिण और उत्तरी भाग के अन्य छोटे शासकों ने हरिहर की सत्ता को स्वीकार कर लिया। उसकी आज्ञा का पालन करने लगे। सन् १३४७ ई० के लेखों में हरिहर को विजयनगर का रक्षक कहा गया है। उसके समस्त भ्राताओं ने हरिहर को सम्राट मान लिया था और उसके शासन में प्रांत के अधिपति थे। कम्पण दक्षिण-पूर्व का अधिपति था। बुक्क द्वारसमुद्र में शासन करता था [2]। मारप्पा प्राचीन वनवासी राज्य में चन्द्रगुप्ती स्थान में राज्य प्रबन्ध करता था। उसने वनवासी लोगों को परास्त कर विजयनगर की प्रभुता बढ़ाई।

शासनकाल व प्रबंध

---

१ मद्रास आ० रि० १९१६। २ मद्रास आ० रि० १९०६

इस अवस्था में हरिहर अपने भ्राताओं की सहायता से सन् १३४६ ई० से १३५५ ई० तक शासन करता रहा। उसने कभी सम्राट् की पदवी धारण न की। स्वतन्त्र होते हुए भी जीवन पर्यन्त 'महामण्डलेश्वर' की पदवी से विभूषित रहा। इसका कारण यह था कि उसने होयसल राज्य के स्थान पर विजयनगर की स्थापना की थी। अतएव वह होयसल रीति को लेकर ही कार्य करना चाहता था। जनता ने भी इसे पसन्द किया और राज्य-परिवर्तन होते हुए भी प्रजा में शान्ति विराजमान रही। सभी ने हरिहर की राज-मुद्रा से अंकित आज्ञा-पत्र का पालन किया[1]। हरिहर ने तुंगभद्रा नदी के दाहिने किनारे पर एक नया नगर बसाया जिसका नाम विजयनगर पड़ा। यहीं उसकी राजधानी रही। हरिहर उस नगर में रहते हुए उत्तर से मुसलमानी आक्रमण को रोकने का प्रयत्न करता रहा। विजयनगर की स्थापना से होयसल के आधीन शासकों ने स्वतन्त्र होने का विचार किया।

कदम्ब, कोकंण, तेलेगु तथा मदुरा के मुसलमान शासक उस विद्रोह मे सम्मिलित थे[2]। यही नहीं, तत्कालीन दिल्ली के तुगलक शासक ने भी हरिहर को परास्त करने का प्रयास किया[3]। परन्तु यशस्वी वीर हरिहर ने सभी विद्रोहियों तथा आक्रमणों को दबा दिया और अपने राज्य में सुख व शान्ति की वृद्धि की। इन युद्धों के पश्चात् सन् १३५४ ई० मे बुक्क को अपना युवराज बनाया[4]। कुछ विद्वानों का मत है कि शासन के अंतिम भाग में हरिहर ने अंग और कलिंग पर विजय-पताका फहराई थी[5]। सुदूर पांड्य चक्रवर्ती ने भी हरिहर की आधीनता स्वीकार करली।

युद्ध और शान्ति

---

१ ए० कर० ६।

२ कृष्णास्वामी—सोरसेज ऑफ विजयनगर पृ० २२।

३ ए० इ ०३।

४ हेरास—बिगिनिंग ऑफ विजयनगर पृ० १०७; ए० कर० भा० ८, ६।

५ वटरवर्थ लेख पृ० ११३।

इस प्रकार तुंगभद्रा से लेकर पांड्य देश तक समस्त भाग हरिहर के आधीन रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि हरिहर का राज्य-विस्तार होयसल नरेश वीर बल्लाल तृतीय के समान बना रहा। हरिहर ने विजय प्राप्त करने के पश्चात् शृंगेरी मठ में भूमि दान भी किया जहाँ पर उसके सभी भ्राता वर्तमान थे[१]। इस प्रकार शासन करता हुआ हरिहर प्रथम सन् १३५५ ई० में इस संसार से चल बसा।

ऊपर बतलाया गया है कि हरिहर प्रथम के अन्य चार भ्राताओं को शासन प्रबंध में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ था। जिस समय बल्लाल तृतीय ने अपने राज्य की रक्षा के लिए 'महामण्डलेश्वर' नियुक्त किये उसी समय कम्पण को पूर्वी भाग का भार सौंपा गया था। ये संगम के द्वितीय पुत्र तथा हरिहर के अनुज थे। हरिहर के साथ ही इनका जीवन समाप्त हो गया। अतएव इनके विषय में कुछ वर्णन करना असंगत न होगा। इनका पद्वी युक्त नाम कम्पणभर्ति ओडयर लेखों में मिलता है। इनका कार्य हरिहर प्रथम के साथ होयसल राज्य के पूर्वी भाग में प्रारम्भ हुआ। इनके उपलब्ध शिलालेखों के प्राप्ति-स्थान से यह सिद्ध होता है। समस्त प्रशस्तियां नेल्लूर जिले के भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं। इनके पुत्र संगम द्वितीय का प्रधान शिलालेख नेल्लूर जिले के ही विट्रगुन्ठ नामक स्थान से मिला है[२]। उसमें उल्लिखित स्थानों से ज्ञात होता है कि कम्पण नेलोर तथा कडुप जिलों में शासन करता था। भौगोलिक स्थिति पर विचार किया जाय तो कम्पण का उस प्रांत में राज्य करना युक्ति-संगत प्रतीत होता है। नेल्लोर जिले के अन्तर्गत ही उदयगिरि का प्रसिद्ध किला था। उस स्थान की विशेष महत्ता थी। इसका कारण यह था कि उत्तरी भाग में वारंगल को मुसलमानों ने जीत लिया था। उदयगिरि पर आक्रमण की बारी थी। इसके अतिरिक्त दक्षिण में प्रवेश करने का यह एक मुख्य मार्ग था। इसका सैनिक महत्त्व अधिक होने

भ्राता कम्पण

---

१ हेरास—पृ० १०५। २ एपि० इंडिका भ० ३ पृ० ३३।

के कारण उदयगिरि की रक्षा की व्यवस्था बड़ी सावधानी तथा चतुराई से की गई थी। वहा पर मुसलमानों को रोकना बड़ा सरल था। इन सब बातों पर विचार कर कम्पण को पूर्वी भाग की रक्षा का भार सौंपा गया था।

कम्पण प्रभावशाली शासक था। प्रशस्ति लेखक भोगनाथ का कहना है कि शत्रुओं को सदा कम्पित करने के कारण ही कम्पण नाम सत्य हो गया।[१] बिट्रगुन्ठ के लेख में हरिहर के राज्य करने की घटना के उल्लेख के बाद कम्पण की भी बहुत दिनों तक (चिरम्) शासन करने की वार्ता उल्लिखित है।[२] इससे स्पष्ट मालूम होता है कि हरिहर के स्वतंत्र शासन-काल में भी कम्पण राज्य-प्रबंध में सहयोग करता रहा। हरिहर प्रथम को सभी भ्राताओं ने राजा माना और शासन में सहायता करते रहे। होयसल भूपति की आज्ञा के समान कम्पण अपने भ्राता विजयनगर नरेश हरिहर प्रथम की भी आज्ञा का पालन करता रहा तथा दोनों साथ-साथ शासन करते रहे। वीर बल्लाल की तरह हरिहर ने भी समस्त राज्य में अपने भ्राताओं को अधिपति (महामण्डलेश्वर) बना रक्खा था। कम्पण के पुत्र संगम द्वितीय ने भी अपने पितृव्य हरिहर का नामोल्लेख किया है जिससे यही अनुमान किया जाता है कि दोनों भाइयों में मेल और विशेष मैत्री का व्यवहार था। एक ही समय में भिन्न-भिन्न प्रांतों पर एक ही उद्देश्य से शासन करने वाले भाइयों में मित्रता का व्यवहार उचित ही नहीं प्रत्युत स्वाभाविक भी है। शृंगेरी मठ की यात्राओं में कम्पण ने अपने भाइयों का साथ दिया था।[३] ये सब बातें हरिहर और कम्पण के पारस्परिक प्रेम को बतलाती हैं।

कम्पण प्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायण के आश्रयदाता थे। इनके लेखों

---

१. तस्यानुजश्चिरमशाद् धात्रीं कम्पणभूपतिः।
याथार्थ्यम् भजन्नोभयस्य कम्पयितुं द्विषदभिः (एपि० इ० भा० ३)

२. ए० कर० भा ४, पृ० २४

३. वटरवर्थ—नेलोर इन्सक्रिप्शन भा० २ पृ० ७८६।

में सायण का नाम उल्लिखित है। सायण ने भी 'सुभाषित-सुधानिधि' की पुष्पिका में अपने को पूर्व पश्चिम समुद्राधीश्वर कम्पराज का महाप्रधान बतलाया है[1]। इस प्रबल शासक ने विजयनगर साम्राज्य की स्थापना में योगदान देते हुए उसे पुष्ट करने का भी प्रयत्न किया था। हरिहर के स्वतंत्र रूप से राज करते समय एक प्रांत का अधिपति बनकर कम्पण ने साम्राज्य के वैभव को बढ़ाया। ये हिन्दू संस्कृति की पूरी तरह से रक्षा करते रहे। हरिहर की मृत्यु के दूसरे वर्ष में सन् १३५५ ई० में कम्पण का देहावसान हो गया। अतः कम्पण विजयनगर साम्राज्य का शासक न बन सका। हरिहर के तीसरे भ्राता बुक्क को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ।

भ्राता मारप्प

हरिहर प्रथम के शासनकाल में उसके चौथे भाई मारप्प को वर्तमान मैसूर राज्य के अन्तर्गत शिमोगा तथा उत्तरी कनारा (वनवासी) का शासन-प्रबंध सौंपा गया था[2]। मारप्प ने कदम्ब के राज्य को जीतकर विजयनगर साम्राज्य की वृद्धि की। यह कहा जाता है कि इस युद्ध में हाथी, घुड़सवार तथा पैदल सेना ने भाग लिया था। मारप्प अपने मंत्री माधव की सहायता से सुचारु-रूप से शासन कर रहा था। विद्वानों की धारणा है कि यह मंत्री (माधव) माधवाचार्य से विभिन्न व्यक्ति था[3]। माधव मंत्री क्रियाशक्ति के प्रधान शिष्यों में से था। मारप्प शैवमत को मानने वाला था। उसके रचित ग्रंथ 'शैवागम सार' से इस कथन की पुष्टि होती है।

बुक्क

सन् १३५५ ई० में विजयनगर के शासक हरिहर प्रथम की मृत्यु के पश्चात् बुक्क सिंहासन पर बैठा। होयसल नरेश बल्लाल तृतीय के समय से ही बुक्क राज्य के दक्षिणी भाग का राज्य-प्रबंध करता रहा। शिलालेखों के वर्णन से मालूम पड़ता है कि महामण्डलेश्वर बुक्कराय होयसल राज्य में शासन

---

१ पूर्वपश्चिमसमुद्राधीश्वरविशालकम्पराजमहाप्रधान-सायणाचार्येण।

२ एपि० कर० भा० ८। ३ वही

करना था[१] । इसके साथ ही साथ उसे युवराज की भी उपाधि मिली थी[२] । सम्भवतः स्वतंत्र शासक होकर, हरिहर प्रथम ने इसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया हो । समस्त लेखों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि १३५५ ई० के पश्चात् विजयनगर साम्राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथ में लेकर भी बुक्क किसी महान् पदवी से विभूषित न हुआ बल्कि अपने को 'महामण्डलेश्वर' ही लिखता रहा ।

सर्व प्रथम बुक्क ने शासक होकर अपने राज्य के सहायक शृंगेरी मठाधीश विद्यातीर्थ श्रीपाद को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की और वहां अनेक गाव दान में दिये[३] । इसके पश्चात् अपनी मर्यादा का पालन करने तथा साम्राज्य का सुचारु रूप से संचालन करने के लिए द्वारसमुद्र से अपनी राजधानी विजयनगर को हटा लिया[४] । विदेशी यात्री न्यूनिज ने भी ऐसा ही लिखा है[५] ।

विद्वानों का मत है कि हरिहर प्रथम की मृत्यु-पश्चात् तेलेगु प्रात में विद्रोह प्रारम्भ हो गया । वहा के शासक ने स्वतंत्र होने का सपना देखा

शत्रुओं से युद्ध

परन्तु प्रतापी शासक ने इन विद्रोहियों को शीघ्र परास्त कर दिया[६]। लेखों में वर्णन मिलता है कि बुक्क की युद्ध-कुशलता से तथा उसकी तलवार की चमकाहट से शत्रुओं के दिल दहल उठे और उनको अन्ध-गुफाओं में छिपना पड़ा[७] । इस प्रकार इसने आन्ध्र, अंग

---

१ जे० बी० बो० आर० ए० एस० भा० १२ पृ० ३३६

२ राइस—मैसूर इन्स्क्रिप्शन्स पृ० २

३ एपि० कर० भा० ६; मद्रास वार्षिक रिपार्ट १९१६

४ अथानुजस्तस्य जगत्प्रतीतः श्रीबुक्कराजो विजयाभिधानम्

(एपि० कर० ११ पृ० ४२)

५ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २२, २९९

६ हेरास—विजयनगर की हिस्ट्री पृ० ११६

७ एपि कर० ६, १०; मद्रास आ० रिपोर्ट १९१६ प० ५१

और कलिङ्ग पर अपना प्रभुत्त्व स्थापित किया [1]। विजयी बुक्क ने शत्रुओं को हटा कर धार्मिक मार्ग पर चलकर पृथ्वी की रक्षा [2]।

बहमनी से घोर संग्राम

बुक्क का पर्याप्त समय नये स्थापित बहमनी राज्य के प्रसिद्ध शासक मुहम्मद शाह (सन् १३५८–१३७७ ई०) से युद्ध में व्यतीत हुआ। सन् १३६५ ई० में मुहम्मद शाह गुलबर्गा की गद्दी पर बैठा। उसके पश्चात् सुल्तान ने कई कारणों से विजयनगर शासक बुक्क से घोर संग्राम किया। सर्व प्रथम कारण यह था कि बहमनी राज्य में बुक्क तथा वारंगल के राजा विनायक देव (कडप्पा) के नाम के सिक्के प्रचलित थे। सुलतान मुहम्मद ने गद्दी पर बैठते ही सोने के सिक्के अपने नाम से चलाना प्रारम्भ किया। बहमनी राज्य के सेठ साहूकार बुक्क के सिक्के को ही पसंद करते थे क्योंकि इस सिक्के का तोल कम था। मुहम्मद शाह को यह बात पसंद न आई, उसने राज्य के समस्त सेठों को सन् १३६० ई० में मरवा डाला और उनके स्थान पर उत्तर भारत से पठानों के साथ आये हुए खत्रियों को बैंक का काम सौंपा। इस निर्दय व्यापार से बुक्कराय का हृदय द्रवित हो गया तथा मुहम्मदशाह भी बुक्क के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर मन ही मन जलता था। सन् १३६५ में राज्यारोहण के अवसर पर दरबार में हिन्दू नरेशों की अनुपस्थिति के कारण मुहम्मदशाह क्रोधित होगया और दण्ड देने की इच्छा से उसने बुक्क से सोना तथा जवाहिरात मांगा। बुक्क इस बात से बहुत क्रोधित हुआ और युद्ध की तैयारी करने लगा। कम्पण तथा बुक्क ने बीस हजार की संख्या में अपने घुड़सवार युद्ध के लिए भेजे। सेना ने तुंगभद्रा को पार कर मुद्गल किले को जीत लिया। संग्राम में हजारो मुसलमान हताहत हुए। विजयनगर नरेश ने रायचूर द्वाब को बहमनी सुलतान से लेने के लिए दूत भेजा। मुहम्मद शाह ने राजदूत को

---

१ वटरवर्थ—इन्सक्रिप्शन्स पृ० ११३: एपि० कर० भा० १०

२ धर्मेण रक्षति क्षोणीं श्रीबुक्कभूपतौ।

कैद करलिया। शांति के बदले अन्य मुसलमानों की सहायता लेकर पुनः युद्ध की तैयारी करने लगा। सन् १३६७ ई० की बात है, कि मुहम्मदशाह ने नृत्य के अवसर पर मदिरा से उन्मत्त होकर बुक्क के कोष से द्रव्य लेने के लिए एक पत्र लिखा। स्वभावतः बुक्कराय इससे झुंझला उठा और अंत में बड़ी विषम लड़ाई हुई। बुक्क के पास विशाल तोपखाना, तीस हजार घुड़सवार तथा नव लाख पैदल सिपाही थे। इस विशाल सेना से मुहम्मद शाह को युद्ध करना सरल न था, परन्तु दौलताबाद की सहायता से हिन्दू तथा मुसलमान सेनाओं में घोर संग्राम हुआ। विजयनगर के सेनानायक मल्लिनाथ ने यवन सेना को पहले तो भगाना प्रारम्भ कर दिया; पर स्वयं घायल हो गया। इस घटना से हिन्दू सेना में भगदड़ मच गई। सत्तर हजार हिन्दू मारे गए। मुहम्मदशाह ने मुद्गल पर पुनः अधिकार कर लिया। समीप की सारी हिन्दू जनता कत्ल कर दी गई। विजयनगर के तोपखाने तथा सारे धनको मुसलमान उठाकर ले गए। इस उथल-पुथल तथा जन-संहार के पश्चात् दोनों शासकों में सुलह हो गई[1]।

शासन-प्रबंध

शान्ति स्थापित हो जाने पर राजा बुक्क ने राज्य-प्रबंध आदर्श मार्ग पर व्यवस्थित किया। अपने मंत्रियों की सहायता से हिन्दू-धर्म का पुनरुद्धार किया। इसके समय में तीन मंत्रियों का कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रथम माधवाचार्य जो इसके गुरु थे और साथ ही साथ विजयनगर राज्य के मंत्री के पद पर भी अधिष्ठित थे। माधव मंत्री के ऊपर पश्चिमी भाग—वनवासी प्रांत—पर शासन करने का भार था। यहां से तुरुष्कों को निकाल कर इन्होंने भग्न-मंदिरों का जीर्णोद्धार किया तथा प्रजावर्ग में सुख शांति की स्थापना की। दूसरे मंत्री सायणाचार्य थे जिन्होंने बुक्कराय की अनुमति से चारों वेद और तत्सम्बन्धी ब्राह्मण ग्रंथों पर विस्तृत तथा प्रामाणिक भाष्य बनाया। प्रजा में शांति का वातावरण पैदा

---

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ३८०—८४

किया[१]। 'माधवीया धातुवृत्ति' की पुष्पिका से पता लगता है कि पहले सायणाचार्य कम्पराज के पुत्र संगम द्वितीय के मंत्री रहे,[२] तत्पश्चात् बुक्क के पास चले आए[३]। इनके लेख में नागण नामक व्यक्ति के भी महाप्रधान होने की बात उल्लिखित है[४]। अन्य विभागों के लिए भी प्रधान नियुक्त किये गए थे। लेखों में वर्णन से प्रकट होता है कि प्रधान केवल पाच षर्ष के लिए नियुक्त किये जाते थे। धन्नायक, वसेय तथा गोयरस का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बुक्कराय के सुशासन तथा कीर्ति का वर्णन प्रशस्तियों में पाया जाता है। हरिहर के नेलूर लेख में बुक्क को साक्षात् शिव का अवतार कहा गया है और इसकी ख्याति भुवन-व्यापिनी बतलाई गई है[५]। इसके उत्तराधिकारी हरिहर द्वितीय के अतिरिक्त दूसरे पुत्र कुमार कम्प ने विशेष महायता पहुंचाई। राज्य को मुसलमानों से सुरक्षित करना तथा मदुरा से मुसलमानों को निकालने का कार्य

---

१ श्रीमत्पूर्वपश्चिमदक्षिणसमुद्राधीश्वरकम्पराजसुतसंगमराजमहामंत्री मायणपुत्रमाधवसहोदरसायणाचार्यकृता।

कुछ विद्वानों का कहना है कि माधवाचार्य मारप्प के मंत्री रह चुके थे।

२ देखिए-पराशर स्मृति की टीका (भूमिका)

३ धर्मेण रक्षति क्षोणीं वीरश्रीबुक्कभूपतौ (एपि० इ० ३ पृ० १२१)

४ एपि० कर० भा० ६, २६

५ तस्य श्रीसंगमेन्द्रस्य पुत्रोऽभूत् पुण्यवैभवात।
वीरः श्रीमंगलादर्शो श्रीश्रीबुक्कभूपतिः ॥ १०
सहार्चिरलसं लोका अभुजंगं विभूषयन्।
वदन्त्यनुग्रनामानं शिवोयं बुक्कभूपतिम् । ११
यत्कीर्तिलक्ष्म्याः क्रीडन्त्याः ब्रह्मांडत्रयमण्डलम्
मुक्ताच्छत्रं शशाङ्कस्तु दीपः शुक्रदिवाकरौ। १२
—नेलूर लेख (एपि० इ० ३)

कुमार कम्पण ने किया। इसकी विदुषी पत्नी गंगदेवी ने अपने ऐतिहासिक महाकाव्य 'मधुरा विजयम्' में मदुरा की विजय का वर्णन बड़ी रोचकता के साथ किया है। हरिहर और कम्प के पितृदेव बुक्कराय की प्रशंसा माधवाचार्य ने अपनी पुस्तक में की है, जो उचित ही प्रतीत होती है—

युक्तिं मानवतीं विदन् स्थिरधृति वेदविशेषार्थभाक्।
आसोहः क्रमकृत्प्रयुक्तिनिपुणः श्लाघ्यातिदेशोन्नतिः॥
नित्यं स्फूर्त्यधिकारवान् गत सदा बाधः स्वतन्त्रेश्वरो।
जागर्ति श्रुतिमत्प्रसङ्गचरितः श्रीबुक्कणक्ष्मापतिः॥
(जैमिनीय न्यायमाला)

इस आदर्श मार्ग पर शासन कर बुक्क ने अपने साम्राज्य का विस्तार तुंगभद्रा से मदुरा तक कर दिया। इस विशाल साम्राज्य की रक्षा और सुप्रबंध के लिए विजयनगर शासक ने अनेक विभाग कायम किये।

महामण्डलेश्वर और प्रांत-शासन

उसने प्रांतों पर एक व्यक्ति नियुक्त किया गया जो 'महामण्डलेश्वर' कहा जाता था। सायण के जामाता मल्लिनाथ का नाम लेखों में उल्लिखित है जो चित्तलदुर्ग प्रांत के महामण्डलेश्वर का कार्य करते रहे। कम्पण प्रथम के पुत्र संगम द्वितीय 'पाक विषय' का शासन प्रबंध करता रहा। इनकी राजधानी विक्रमपुर थी। प्रबंध में प्रत्येक महामण्डलेश्वर स्वतंत्र रूप से काम करते थे। केन्द्रीय विभाग से हस्तक्षेप न किया जाता था। वह स्वतंत्र रूप से मंत्रिमण्डल तैयार करता, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता और समस्त विषयों की जिम्मेदारी महामण्डलेश्वर स्वयं रखता था। वह शासक को युद्ध में अनिवार्य रूप से सहायता करता था। बुक्क ने प्रधान प्रांतों के महामण्डलेश्वर के पद पर अपने पुत्रों अथवा कुटुम्बियों को नियुक्त किया था। हरिहर द्वितीय युवराज होने के नाते पिता बुक्क के साथ रहा करता। कुमार कम्प को सुदूर दक्षिण का प्रांत—पांड्य देश—दिया गया, भास्कर को उदयगिरि का भाग सौंपा गया[1] और पूर्वी भाग का प्रबंध कम्पराय प्रथम के पुत्र संगम

---

[1] एपि० इ० १६०३ नं० ६१

द्वितीय को दिया गया था[1]। समस्त महामण्डलेश्वरों में संगम द्वितीय का नाम विशेषतया उल्लेख किया जा सकता है। अतः उसके विषय में कुछ लिखना असंगत न होगा।

पिता कम्पराज की मृत्यु के पश्चात् संगम द्वितीय की अवस्था छोटी थी। अतएव सारे प्रांत का भार उसके मंत्री सायण पर पड़ा[2]। बालक संगम पर सायण का विशेष ध्यान रहा। उसने केवल राज्य का ही प्रबंध नहीं किया परन्तु शत्रुओं को परास्त कर राज्य का विस्तार किया। विद्वान् सायण ने शासक को समस्त विद्यादान कर उच्च पद के योग्य बनाया। इस सुशिक्षा के कारण संगम विद्वान् तथा प्रतापी राजा हुआ। सायण ने युद्ध में ले जाकर उसे युद्ध-कुशल बनाया।

संगम द्वितीय का एक महत्त्वपूर्ण लेख विट्रगुन्ठ में मिला है जिसके अध्ययन से इनके जीवन की विशेष घटनाओं का पता मिलता है। ये पितृभक्त तथा गुरुभक्त थे। इनके गुरु उस समय के प्रसिद्ध यति श्री कण्ठनाथ थे[3]। इनकी इच्छा से संगम ने विट्रगुन्ठ नामक बड़ा ग्राम दान में दिया और उसका नाम 'श्रीकण्ठपुर' रक्खा। पिता की प्रत्येक वार्षिक तिथि पर संगम दान देता था। सायण के सहवास में संगम विद्वानों का अनुरागी हो गया। मन्त्री सायण के अतिरिक्त उनके अनुज भोगनाथ संगम के नर्म-सचिव थे[4]। सन् १३५५ ई० में ये सिंहासन पर बैठे। सम्भवतः नव वर्षों तक इन्होंने राज्य कार्य किया[5]। भोगनाथ की लिखी

---

१ जयन्त इव जम्भाटे प्रद्युम्न इव शार्ङ्गिणः।
तनयः समभूद् वीरस्तस्य संगमभूधरः।
एपि० इ० ३ पृ० २५

२ यही सायण बुक्क प्रथम के भी मन्त्रीपद को सुशोभित करते रहे।

३ एपि० इ० भा० ३ पृ० २६ श्लोक १२

४ इति भोगनाथसुधिया संगमभूपालनर्मसचिवेन। वही पद्य १५,

५ हेरास—विजयनगर हिस्ट्री पृ० ६८

प्रशस्ति में ऐसे विरुद संगम के लिए उपयुक्त किये गए हैं जिनसे पता चलता है कि राज्य की प्रजा विशेष सुखी थी [1]। संगम पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र के अधीश्वर बतलाये गए हैं। ये शत्रुओं की सेना के विध्वसंक थे। अतिशयोक्ति को छोड़ देने पर भी यह तो निश्चित है कि यह भूपाल एक विजेता था। भोगनाथ ने भी लिखा है कि जयश्री इन्हीं के बलशाली भुजाओं का आश्रय लेकर रहा करती थी[2]।

संगम द्वितीय के अतिरिक्त अन्य महामण्डलेश्वर भी पूर्ण स्वाधीनता से शासन प्रबन्ध करते थे। सायण के सदृश अन्य सामन्तों के मन्त्री वर्तमान थे। लेखों में वर्णन मिलता है कि वीरुप्पण नामक व्यक्ति पेनुगोंडा राज्य का स्वामी बनाया गया था[3]। इसके मन्त्री ने कृषि की उन्नति के लिए एक नहर बनवाई थी[4]। भास्कर के मन्त्री ने एक तालाब बनवाया था[5]। इससे प्रकट होता है कि प्रान्त के अधिपति अपने मन्त्री की सहायता से समस्त राज्य-प्रबन्ध सुचारु रूप से किया करते थे। यदि केन्द्रीय शासक को किसी महामण्डलेश्वर की आवश्यकता होती तो वह राजधानी में बुला लिया जाता। बुक्क ने अपने प्रान्त अधिपति विरुप्पण को प्रथम पेनुगोंड़ा में नियुक्त किया। पुनः अरगड़ या मले राज्य में तबादला (transfer) कर दिया[6]। कुछ समय पश्चात् वह विजयनगर में वापिस बुला लिया गया। प्रायः सात वर्ष तक कार्य सम्पादन करने के बाद वह फिर

---

१ निरातंकाः भयात्तस्मिन्नित्यं भोगोत्सवाः प्रजाः।
नेलोर का दानपत्र, ए. इ. भाग ३ पृ० १२१,

२ यद्भुजाश्रयजातकौतुका नापरं जयरमाऽभिवृण्वती।
संयुगानि समुपेयुषी चिरादासिधारमनुतिष्ठति व्रतम्॥
[एपि० इ० ३ पृ० २५

३ एपि० इ० ४ पृ० ३२७। ४ एपि० कर० १२, पृ० ६२।

५ एपि० रिपोर्ट० १९०३ नं० ६१।

६ एपि० कर० भा० ८ नं० २०, ३७।

महामण्डलेश्वर बना दिया गया[1]। इस तरह राजा मण्डलेश्वर की सहायता से शासन करता था।

विजयनगर का समस्त प्रबन्ध करने के पश्चात् शासक बुक्क हिन्दूधर्म को सुदृढ़ बनाने तथा संस्कृति की उन्नति में अपना समय व्यय किया करता था। सर्व प्रथम उसने अपने मन्त्री माधवाचार्य को हिन्दूधर्म के मूल श्रोत वेदों पर भाष्य लिखने की आज्ञा प्रदान की। परन्तु माधव ने अपने भ्राता सायण को इस कार्य के लिए योग्य समझ कर राजा से उनकी चर्चा की। बुक्क ने मन्त्री के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और सायणाचार्य पर वेदों के भाष्य लिखने का भार रक्खा गया। सायण ने अपने भाष्य के प्रारम्भ में इसी बात का उल्लेख किया है—

हिन्दू संस्कृति की रक्षा

यत्कटाक्षेण तद्रूपं दधद् बुक्कमहीपतिः।

आदिशन्माधवचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने॥

ऋग्वेद भाष्य की पुष्पिका में सायण द्वारा बुक्क की संरक्षता में रह कर भाष्य लिखने की वार्ता उल्लिखित है[2]।

इन उद्धरणों से पता चलता है कि बुक्क वैदिकमार्ग का प्रवर्तक था। वेदों के सरल होने पर उनके पठन-पाठन से जनता हिन्दू संस्कृति पर आस्था रक्खेगी, इसी विचार से प्रेरित होकर बुक्क ने भाष्य लिखवाने का बीड़ा उठाया था।

बुक्क ने दक्षिण भारत से यवनों को निकाल भगाया। दक्षिण में श्रीरंगम् पर मुसलमानों ने आक्रमण कर अधिकार कर लिया था। उस स्थान पर मुसलमानों का प्रभाव बढ़ गया था। मदुरा में उनका राज्य

---

१ एपि० कर० ६, पृ० ५२ (शक १२६२.)

२ "इति श्री राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कसाम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिता-भाष्ये।

कायम हो गया। उनके बुरे आचरण के कारण प्रसिद्ध वैष्णव भक्त लोकाचार्य भगवान् रंगनाथ की प्रतिमा लेकर भाग गए। वेदान्तदेशिक ने देवगिरि में शरण ली और भिक्षा मांग कर जीवन व्यतीत करने लगे। जब माधवाचार्य को पता लगा तो उन्होंने वैष्णव यतियों को बुला भेजा। किसी ने बादशाह के शरण में रहना पसंद न किया [१]। अतएव बुक्क ने अपने पुत्र कुमार कम्पण को सेनापति गोपणार्य के साथ मदुरा से यवनों को भगाने के लिए भेजा। कुमार कम्प ने चम्पराय को पराजित किया और सन् १३७७ ई० में हिन्दू सेना ने मदुरा के सुलतान अलाउद्दीन सिकन्दर शाह को हरा दिया। इस प्रकार मदुरा तथा सारे दक्षिण का मुसलमानों से उद्धार किया [२]। कम्पण की स्त्री विदुषी गङ्गदेवी ने अपने रचित महाकाव्य 'मधुरा विजयम्' अथवा 'कम्पणचरितम्' में विस्तार के साथ मदुरा पर विजय का वर्णन किया है। इस घटना के बाद वेदान्तदेशिक और लोकाचार्य ने भगवान् की मूर्तियों को पुनः स्थापित किया। गोपणार्य सेनापति ने इस कार्य में बहुत सहायता की। इसी कारण उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। वेदान्तदेशिक ने मन्दिर के द्वार पर एक पद्य उत्कीर्ण कराया जिसमें गोपणार्य का नाम उल्लिखित है—

सम्यञ्चर्यां सपर्यां पुनरकृतयशः प्रायणो गोपणार्यः।

इसके पश्चात् बुक्क का यश सर्वत्र फैल गया। बहुत सम्भव है कि बुक्क ने महाराजाधिराज की पदवी इस विजय के बाद धारण की हो [३]। एक स्थान पर सायण ने भी ऋक्भाष्य की पुष्पिका में बुक्क को 'महाराजाधिराज परमेश्वर' लिखा है। इस प्रकार लगभग पचीस वर्षों तक विजयनगर का शासन कर बुक्क ने साम्राज्य की सर्व प्रकार से उन्नति की।

---

१ कृष्णस्वामी—कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इण्डिया पृ० ३११

२ हेरास-आरविदु डाइनेस्टी पृ० १०५

३ एपि० कर० भा० ५
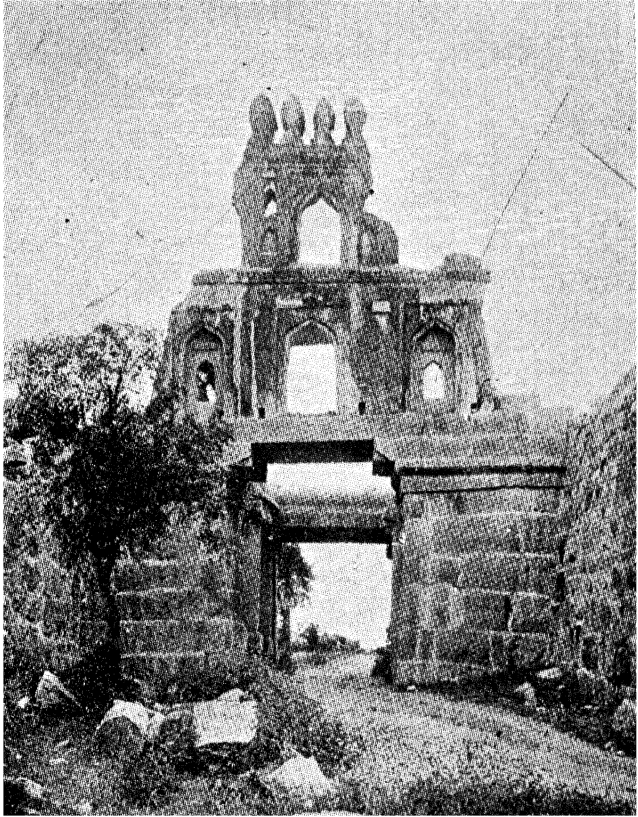
राज-महल का सिंहद्वार

तुंगभद्रा से लेकर मदुरा तक इनका राज्य विस्तृत था। आदर्श मार्ग पर शासन प्रबन्ध करतेहुए विजयनगर को इन्होंने एक सुदृढ़ साम्राज्य बनाया। यवनों का राज्य नष्ट कर दक्षिण भारत में पुनः हिन्दू संस्कृति की संस्थापना की। मैसूर राज्य में जैनों तथा वैष्णवों के संघर्ष को मिटाया। स्वयं शैव होते हुए यह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता का भाव रखता था। इसके राज्य में शैव, वैष्णव तथा जैन धर्मों का प्रचार निर्विघ्न रूप से होता था। बुक्क ने महाराजाधिराज की पदवी धारण कर अपने नाम के सिक्के भी चलाये। इन्हीं सिक्कों का प्रचार मुसलमानी राज्य बहमनी में भी था। इन बातों से बुक्क के काल में व्यापार की वृद्धि तथा देश की समृद्धि का पता लगता है [१]।

हरिहर द्वितीय

बुक्कराय के शासन पश्चात् उनका जेठा पुत्र हरिहर द्वितीय विजयगर साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। इस राजा का सर्वप्रथम लेख सन् १३७६ ई० का प्राप्त हुआ है।[२] इसलिए यह प्रतीत होता है कि बुक्क की मृत्यु इसी काल में हुई और हरिहर ने 'महाराजाधिराज राज-परमेश्वर' की पदवी धारण की।[३] संगम-वंश का यह सर्वप्रथम शासक था जिसने राज्यप्रबंध हाथ में लेते ही सम्राट् की महान् पदवी धारण की। लेखों से ज्ञात होता है कि यह बुक्क के गौरी नामक स्त्री से उत्पन्न हुआ था। नेलूर के लेख तथा देवराय द्वितीय के 'सत्य मंगलम्' दानपत्र में इसकी माता का नाम गौरी उल्लिखित है:—

> गौरीसहचरात्तस्मात् प्रादुरासीत् महेश्वरात् ।
> शक्त्या प्रतीतस्कन्दांशो राजा हरिहरेश्वरः ॥
> अहीनभोगसंसक्तिरसौ राजशिखामणिः ।
> गोप्ता हरिहरं गौर्यां कुमारमुदपादयत् ॥

---

१ इन सब का विस्तृत विवरण दूसरे भाग में देखिए।
२ जे० आर० ए० एस० भा० १२ पृ० ३४०
३ एपि० इ० भा० ३ पृ० ११५

गद्दी पर बैठते ही बहमनी के राजा ने इसको असमर्थ युवा नरेश समझ कर राज्य पर आक्रमण कर दिया। हरिहर ने भी तीस हजार

मुसलमान राजाओं से युद्ध

घुड़सवार तथा नव लाख पैदल सेना लेकर रायचूर के द्वाब पर धावा किया। मुसलमानी सेना रात्रि समय गाने तथा नाच में लगी थी। तलवार की धार पर विचित्र नाच होने लगा। हिन्दू सेना इसी को देखने के लिए अपना कैम्प छोड़कर यवनों के पास चली गई। यह जानकर कि हिन्दू सेना ने अपना कैम्प छोड़ दिया है, मुसलमानों ने उसी अँधेरी रात में विजयनगर की सेना पर धावा बोल दिया। हिन्दुओं ने बड़ी वीरता दिखलाई परन्तु फिरूज और बहमनी सेना के कारण विजयनगर सेना में भगदड़ मच गई। हरिहर का पुत्र युद्ध में मारा गया। सुबह होते ही बहमनी के सेनापति ने हिन्दुओं को तुंगभद्रा के उस पार भगा दिया और द्वाब को अपने आधीन कर लिया। फौलादखाँ को उस भाग (द्वाब) का गवर्नर बना दिया। ऐसी विकट परिस्थिति में हरिहर ने चालीस लाख रुपया देकर बहमनी के शासक को शांत किया और फिरूज गुलबर्गा लौट गया[1]।

उत्तरी भाग में शांति स्थापित होने के पश्चात् हरिहर द्वितीय ने दक्षिण भारत में अपने राज्य को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। संगम

राज्यप्रबंध व विस्तार

द्वितीय के मंत्री सायणाचार्य को हरिहर ने अपना मन्त्री बनाया। राजा के इस कार्य की प्रशंसा तथा उल्लेख सायण ने अपने शतपथ-ब्राह्मण की पुष्पिका में की है—

"श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरहरिहरभूपाल-साम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण ;"

इससे ज्ञात होता है कि महाराजाधिराज हरिहर ने अपने समस्त शत्रुओं को

---

१. **कैम्ब्रिज हिस्ट्री** भा० ३ पृ० ३८७

शान्त कर दिया था। नेलूर दानपत्र के वर्णन से ज्ञात होता है[1] कि हरिहर कर्नाटक प्रान्त पर शासन करता था। इसके अतिरिक्त इसने चोल, चेर व पांड्य राजाओं को भी परास्त किया था। अतः इसको शार्दूल मदभंजन की पदवी दी गई थी[2]। हरिहर का राज्य सुदूर दक्षिण तक विस्तृत था जो उसके एक प्राप्त लेख से ज्ञात होता है।[3]

इस प्रकार तुंगभद्रा से लेकर सुदूर पांड्य देश तक हरिहर द्वितीय का राज्य विस्तृत था। इतने बड़े विशाल राज्य के सुप्रबंध के लिए उसने इसे कई छोटे-छोटे प्रांतों में विभक्त किया था। उसके लेखों में इन प्रांतों के नाम निम्न प्रकार से मिलते हैं—[4]

(१) उदयगिरि राज्य (२) पाक विषय (३) गुत्ती राज्य (४) मलेह (प्राचीन बनवासी) राज्य (५) मूलवापी राज्य (६) तुल राज्य तथा (७) राज्य गम्भीर राज।

राजा ने अपने राजकुमारों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को प्रांत-अधिपति के पद पर नियुक्त किया था। राजा के पुत्र बुक्क द्वितीय मूलवापी पर शासन करता रहा। देवराय प्रधान स्थान उदयगिरि का गवर्नर था। हरिहर के छोटे भाई मल्लिनाथ के दो पुत्रों को प्रांत का शासन-प्रबंध सौंपा गया था।[5] विरुपण्ण दक्षिण में आरकाट जिले में शासन करता रहा। चिक्कराय नामक व्यक्ति को प्राचीन बनवासी प्रांत (मलेह राज्य) की रक्षा का भार दिया गया था। इस प्रकार हरिहर पश्चिम से पूर्वी किनारे और

---

१ कर्णाटकलक्ष्मीकर्णावतंसः चतुर्वर्णाश्रमपालकः शार्दूलमदभंजकः चेरचोलपांड्यस्थ,··(एपि० इ० भा० ३ पृ० ११७)

२ शार्दूल चोल राजाओं का चिन्ह था।

३ एपि० इ० भा० ३ पृ० ११६

४ आ० स० रि० १६०७-०८

५ सेवेल—ए फारगॉटेन इम्पायर पृ० ३६ तथा एपि० इ० भा० ६ पृ० ३२७

तुंगभद्रा से पांड्य देश तक शासन करता रहा। यही कारण है कि लेखों में इसे निम्न लिखित पदवी प्रदान की गई है:—[१]

श्रीमत्प्रतापचक्रवर्तीपूर्वदक्षिणपश्चिमसमुद्राधीश्वरश्रीमन्महाराजाधिराज राजपरमेश्वरश्रीवीरहरिहरमहाराजः ॥

इस प्रकार शासन करते हुए हरिहर की ख्याति चारों तरफ फैल गई।

भारतीय संस्कृति की रक्षा

हरिहर ने साम्राज्य को विस्तृत तथा सुशासित करके भारतीय संस्कृति की रक्षा में अपना जीवन बिताया। इसका प्रमाण लेखों में तथा तत्कालीन विद्वानों के रचित ग्रंथों में मिलता है। नेलूर दान पत्र में हरिहर के लिए '**वैदिकमार्गस्थापनाचार्यः**' '**चतुर्वर्णाश्रमपालकः**' तथा '**धर्म-धुरीणः**' आदि पदवियां उल्लिखित हैं[२]। सायण ने भी शतपथ ब्राह्मण की पुष्पका में 'हरिहर को वैदिक मार्ग प्रवर्तक' लिखा है। राजा हरिहर द्वितीय अपने पिता बुक्क के सदृश धर्म का पालक था। उसने दक्षिण भारत में वैदिक धर्म के प्रसार के लिए बहुत समय व्यतीत किया। सारे समाज में वर्णाश्रम धर्म को प्रतिष्ठापित किया। सब लोगों तथा सब वर्णों को सब आश्रमों का आचार सिखलाकर आदर्श नागरिक बनाया[३]। अपने कार्य तथा धर्म की उन्नति करके प्रजा को सुख तथा सम्पति प्रदान की। यही कारण है कि प्रजा उसके समय में सतयुग की बात सोचने लगी[४]।

---

१ **नेलूर दानपत्र (एपि० इ० ३)**

२ **एपि० इ० भा० ३ (नेलूरदानपत्र)**

३ **सर्ववर्णाश्रमाचारप्रतिपालनतत्परे तस्मिन् चतुःसमुद्रान्ता भूमिः-कामदुधाऽभवत् ।**

४ **विजितारातिव्रातो श्रीहरिहरक्ष्माधीशः ।**
धर्मब्रह्मधुरीणः कलिं स्वचरितेन कृतयुगं कुरुते ॥

षोडश महादान हरिहर अपने समय का बड़ा राजा दानी था। वह षोडश महादान दिया करता था। प्रशस्तियों में इसके दानों का वर्णन निम्न प्रकार से मिलता हैं–

तुलापुरुषदानानि महादानानि षोडश।
कृतवान् प्रतिराज्यन्य वज्रपाताख्यवैभवः॥
यः षोडशमहादानं महामहिमकर्मणा।
भवनं कृतवान् सर्वं भुवनं कीर्तियोषितः॥[1]

इसी बात की पुष्टि सायण ने अथर्व संहिता के भाष्य के प्रारम्भ में की है—

विजयी हरिहरभूपः समुद्वहन् सकलभूभारम्।
षोडश महान्ति दानान्यनिशं सर्वस्य तृप्तये कुर्वन्॥

यही नहीं कि अपने धर्म या राज्य की उन्नति की भावना से प्रेरित होकर हरिहर ने ऐसा किया हो, परन्तु अन्य मतानुयायियों के साथ भी उसने अपने उदार हृदय का परिचय दिया। हरिहर स्वयं शैव था तथा 'विरुपाक्ष' का पुजारी था। परन्तु इसके हृदय में सहिष्णुता का भाव था। सन् १३२१ ई० में उसने केशव मदिर के एक भाग का पुनः निर्माण किया तथा १२६१ ई० में होयसलों के बनाए हुए विष्णु मंदिरों का जीर्णोद्धार किया[2]। विजयनगर नरेश ने जैन मंदिरों को भी बहुत सा द्रव्य दान में दिया। इसका न्याय-कुशल मंत्री इरुगप्प जैन धर्मावलम्बी था, परन्तु उससे राजा अत्यन्त प्रेम करता। उसीके कहने से विजय नगर में एक विशाल जैन-मंदिर बनाने की आज्ञा हरिहर ने प्रदान की। ये बातें राजा की सहिष्णुता का परिचय देती हैं।

इसके अतिरिक्त हरिहर द्वितीय विद्वानों का आश्रय दाता था। इसी के आश्रय में रहकर सायण ने अथर्व संहिता तथा शतपथ ब्राह्मण पर

---

१ सत्यमंगल दानपत्र

२ सा० इ० इन्सक्रिप्शन भा० १ पृ० १६

भाष्य लिखे। सायण ने शतपथ ब्राह्मण की पुष्पिका में इसकी पुष्टि की है और हरिहर को 'वैदिक मार्ग' प्रवर्तक लिखा:—

"**श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरहरिहरभूपाल-साम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण।**"

इसका ही पिष्टपेषण हरिहर के नेलूर लेख से भी होता है, जिसमें राजा को 'वेद भाष्य प्रकाशकः' की उपाधि दी गई है [१]। सायण के अतिरिक्त उसका मंत्री इरुगप्प भी विद्वान् पुरुष था। उसने 'नानारत्न माला' नामक कोष का निर्माण किया था। हरिहर के अधीनस्थ सर्वज्ञ का कनिष्ठ भ्राता चिन्नभट्ट भी एक प्रगाढ़ विद्वान् था। हरिहर के आश्रय में रह कर उसने भी 'तर्क-भाषा-प्रकाशिका' नाम की पुस्तक लिखी। उस की पुष्पिका से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है:—

"**श्री हरिहरमहाराजपरिपालितेन सहजं सर्वज्ञविष्णुदेवरायतनूजेन सर्वज्ञानुजेन चिन्नभट्टेन विरचितायां तर्कभाषाप्रकाशिकायाम्।**

इस प्रकार सर्व वर्ण को आचार सिखलाते, आश्रमों को आदर्श मार्ग बतलाते हुए एवं पूर्ण सहिष्णुता का भाव प्रसारित करते हुए वैदिक मार्ग प्रवर्तक राजा हरिहर द्वितीय पचीस वर्ष तक शासन करता रहा। सन् १४०४ ई० में इसकी मृत्यु हो गई। हरिहर के राज्य में व्यापार की भी उन्नति हुई। उसने अनेक सोने तथा ताँबे के सिक्के अपने नाम से प्रचलित किये जिन पर 'प्रताप हरिहर' उत्कीर्ण है।[२]

सन् १४०४ ई० के पश्चात् हरिहर का जेठा पुत्र देवराय विजय-नगर राज्य का अधिकारी हुआ। कृष्णस्वामी का कथन है कि प्रधान

देवराय प्रथम

राजकुमार होने के कारण ही देवराय राज्य का उत्तराधिकार हुआ।[३] हरिहर द्वितीय के अन्य दो पुत्र—विरुपाक्ष प्रथम तथा बुक्क द्वितीय—थे जो प्रांतों के अधिपति थे। सर हेग

---

१ एपि० इ० भा० ३ प, ११७

२ एपि० इ० भा २०, २१ पृ० ३०२, ३२१

३ आ० स० रि० १९०७–८

का मत है कि बुक्क द्वितीय हरिहर के पश्चात् इस विजयनगर साम्राज्य का अधिकारी हुआ।[1] सम्भवतः दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हों। राजकुमार की अवस्था में उसका नाम बुक्क हो सकता है परन्तु शासन प्रारम्भ होने के साथ नाम बदल दिया गया हो। इस वंश में हरिहर प्रथम के बाद बुक्क शासक हुआ, हरिहर द्वितीय के पश्चात् राजा का नाम बुक्क द्वितीय हो सकता है।

बहमनी से युद्ध

अन्य राजाओं के सदृश देवराय को भी बहमनी के नवाब से युद्ध करना पड़ा। सन् १४०६ की बात है कि फिरूज ने सब प्रान्तों के मुसलमानों को इकट्ठा करके देवराय प्रथम पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध का कारण यह बतलाया जाता है कि विजयनगर का शासक एक स्वर्णकार की लड़की से विवाह करना चाहता था। वह लड़की इस कार्य से सहमत न थी और बहमनी राज्य में भग गई। इसी बहाने को लेकर फिरूज ने मुद्गल पर चढ़ाई कर दी। उसके साथ अहमद खाँ ने द्वाब पर अधिकार कर लिया। यवन सेना ने विजयनगर की राजधानी पर धावा किया। इस युद्ध में देवराय (प्रथम) परास्त होने पर सन्धि के लिए बाध्य हो गया। इस सन्धि में विजयनगर राज्य की बहुत बड़ी हानि हुई। बंकापुर के जिले दे दिए गये। असंख्य द्रव्य, मोती और जवाहिरात सुल्तान को देने पड़े। मुसलमानों ने दो हज़ार नाचने वाले युवक तथा युवतियों को विजयनगर के शासक से माँगा। इतने ही से कार्य समाप्त न हो सका और बहमनी सुल्तान शांत न हुए। कहा जाता है कि देवराय को अपनी पुत्री शादी में देनी पड़ी तथा उपर्युक्त सामान व राज्य दहेज़ में दिये गये[2]। इन सब दुर्दशाओं का मूल कारण स्वयं शासक ही कहा जा सकता है। रण-क्षेत्र में भी यह अपने राग-रंग में फंसा रहा तथा नाचने में व्यस्त रहना ही पसन्द किया। अतएव मुसलमानी

---

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ३९१

२ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ३९२.

सेना को अवसर मिल गया और देवराय प्रथम को परास्त होना पड़ा।

देवराय को उचित मार्ग पर लाने में उसके मन्त्री लक्ष्मीधर का बहुत हाथ रहा। उसने राज्य के समस्त प्रान्तों पर बराबर दृष्टि रक्खी[१]। युवराज विजय को मूलवापी राज्य का महामण्डलेश्वर बनाया। दूसरे मन्त्री इरुगप्प ने भी राज्य की दशा सुधारने में पर्याप्त प्रयत्न किया। यही व्यक्ति देवराय प्रथम से लेकर देवराय द्वितीय पर्यन्त मन्त्री का कार्य करता रहा। इसी के कारण मन्दिरों तथा विद्वानों को भूमि दान में दी गई। इस प्रकार देवराय प्रथम का अंतिम जीवन सुख और शान्ति में बीता। सन् १४२२ में इसकी मृत्यु हो गई और विजय ने राज्यभार ग्रहण किया।[२]

देवराय की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र विजयराय ने नव वर्ष तक राज्य किया[३]। एक लेख से ज्ञात होता है कि विजय ने 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की[४]। उसके पुत्र देवराय द्वितीय के लेख से भी उपर्युक्त पदवी मिलती है। इस लेख में विजय के लिए 'वीरप्रताप विजयराय महाराज' की पदवी का उल्लेख मिलता है। न्यूनिज का कथन है कि विजय ने केवल ६ वर्ष राज्य किया और इसका दूसरा नाम बुक्क तृतीय था[५]। विद्वानों का मत है कि विजय अपने पिता तथा पुत्र के साथ मिलकर छः वर्ष तक राज्य करता रहा।

विजय के शासनकाल में बहमनी सेनापति अहमदखाँ ने पुनः विजयनगर साम्राज्य पर आक्रमण किया। कारण यह था कि देवराय प्रथम के परास्त होने पर विजयनगर शासक बहमनी नवाब को वार्षिक कर

---

१ एपि० कर० भा १० नं० ७

२ वही भाग ७ (६३)

३ ईश्वरीप्रसाद—मिडिवल इण्डिया ६, ४१५।

४ एपि० कर० भा० ७

५ एपि० रि० १८०७ पृ० ८३।

दिया करते थे। विजय ने उसे बंद कर दिया। अतएव सन् १४२३ ई० में अहमदखाँ ने चढ़ाई करदी। मुसलमानों की सेना तुंगभद्रा के किनारे नवरोज त्यौहार मनाने के लिए ठहर गई। प्रजा को तंग करने लगी। विजय ने उनके कार्यों से घबरा कर सन्धि कर ली और पिछला सारा बकाया चुका दिया। परन्तु युद्ध के फलस्वरूप हजारों हिन्दू मारे गये, कैदी बनाए गये तथा इस्लाम धर्म में दीक्षित किये गये। जब गर्मी के दिन आये, तब अहमदखाँ गुलबर्गा लौट गया। आते समय वह असंख्य धन, मूल्यवान् जवाहिरात तथा हाथी साथ ले गया। इन सब बातों से विजयनगर राज्य पर आपत्ति का अनुमान किया जा सकता है। विजय का शासन भी राज्य के लिए दुःख का समय रहा।

विजय के पश्चात् उसके पुत्र देवराय द्वितीय ने विजयनगर के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली। इसके सर्व प्रथम लेख से ज्ञात होता है कि यह सन् १४२४ ई० में सिंहासन पर बैठा। उसी लेख में इसको इम्मादी देवराय कहा गया है[1]। पहले कहा जा चुका है कि देवराय प्रथम की मृत्यु सन् १४२२ ई० में हुई अतएव दोनों लेखों की तिथियां (१४२२, १४२४) यह बतलाती हैं कि विजय इन दो वर्षों में स्वतंत्र रूप से शासन करता रहा। विद्वानों ने विजय का छः या नव वर्ष का राज्य-काल बतलाया है। अतएव यह कहा जा सकता है कि विजय अपने पुत्र देवराय द्वितीय के साथ मिलकर भी राज्य प्रबन्ध करता रहा।

देवराय द्वितीय

देवराय द्वितीय का राज्य समस्त दक्षिण भारत में लंका के समीप तक विस्तृत था। उसके नायक के पद पर उसका भ्राता विराजमान था। उत्तरी आरकाट का भार उसके भाई को तथा उसके मंत्री लक्षण को शेष दक्षिण का कार्य भार सौंपा गया था। लक्षण सर्व प्रथम राजधानी में मंत्री का कार्य करता था, परन्तु वह दक्षिण भारत में अच्छे प्रबन्ध के लिए

---

१ एपि० कर० भा० ७; तिथि १३४६ शक।

भेजा गया। वहां कुछ समय तक काम करके लक्ष्मण सन् १४३१ में सालुव गोपराज को कार्य भार देकर वापस आ गया। वहां उसने अनेक ग्राम दान में दिए[1]।

देवराय द्वितीय एक आदर्श शासक था। उसके समय में संगम-वंश की उन्नति चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। वह एक विद्वान् व्यक्ति, पण्डितों का आश्रयदाता तथा प्रजापालन में संलग्न रहने वाला राजा था। उसके मन्त्री जैन इरुगप्प ने जैन धर्म के प्रचार के लिए बहुत दान दिया। देवराय ने भी विरुपाक्ष मन्दिर के लिए अनेक ग्राम दान में दिए। शिक्षा की वृद्धि के लिए शासक ने सम्पतकुमार पण्डित को ग्राम दान दिया। ये आयुर्वेद के प्रगाढ़ विद्वान् थे तथा विद्यार्थियों को शिक्षा दिया करते थे[2]। देवराय ने यह अनुचित समझा कि प्रजा से राज्य में प्रचलित वैवाहिक कर ग्रहण किया जाय। अतएव उसने इस कर को बन्द कर दिया[3]। इस आज्ञा से विशेषतः कर्नाटक, तामिल तथा तेलेगु के ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। प्रजा की श्री वृद्धि तथा खेती की उन्नति-के लिए शासक ने नहरें खुदवाईं। इस प्रकार देवराय द्वितीय के समय में प्रजा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थी।

सब से बड़ा कार्य देवराय द्वितीय ने यह किया कि उसने अपनी सेना में दस सहस्र तुर्की घुड़सवार नियुक्त किए। विजय के परास्त होने के पश्चात् देवराय को ज्ञात हुआ कि हिन्दू सेना में धनुषधारियों की कमी है। मुसलमान धनुषधारी अधिक दक्ष थे, अतएव युद्ध में उनको विजय मिलती थी। इस कमी को पूरा करने के लिए देवराय ने अपनी सेना में दो हजार मुसलमान धनुषधारी नियुक्त किये थे[4]। इनका मुख्य कार्य

---

१ ए० कर० भा० १० नं० २

२ कैटलाग आफ कापर प्लेट्स् (मद्रास) म्यूजियम, पृ० ४४

३ एपि० रि० १६०४ पृ० ५०

४ एपि० कर० भा० ३ भुमिका पृ० २३

हिन्दू सैनिकों को धनुष सिखलाना था। विजयनगर राजा ने इनके रहने के लिए शहर में एक पृथक् स्थान निश्चित कर दिया। इनके लिए मसजिद तथा कसाईखाने का प्रबन्ध किया गया। राजा अपने सिंहासन के समीप में कुरान की पुस्तक रखता था जिससे किसी भी मुसलमान को उसके सामने झुकने में (सलाम करने में) संकोच या विरोध न हो [1]। इस प्रकार देवराय ने अपनी विशाल सेना तैयार कर ली। दो हजार मुसलमान धनुषधारियों ने साठ हजार हिन्दू सैनिकों को धनुष सिखलाया। ऐसी सेना के तैयार हो जाने पर देवराय ने सन् १४४३ ई० में रायचूर द्वाब पर आक्रमण किया। इसने प्रसिद्ध किले मुद्गल, रायचूर और बंकापुर को जीत लिया। विजयनगर की सेना ने कृष्णा नदी तक अधिकार कर लिया और बीजापुर तथा सागर तक की भूमि को रौंद डाला। उस सेना में दस हजार मुसलमान धनुषधारी, साठ हजार हिन्दू घुड़सवार (धनुष चलने में प्रवीण) तथा तीन लाख पैदल सिपाही सम्मिलित थे। विजयनगर की जीत के पश्चात् मुसलमानी सेना ने अधिक ज़ोर दिखलाया। शत्रु की बलशाली सेना को देखकर देवराय ने बहमनी नवाब अलाऊद्दीन अहमद से सन्धि करली। इस युद्ध में विजयनगर की बहुत बड़ी हानि हुई तथा कई राजकुमारों की मृत्यु हो गई।

देवराय द्वितीय के शासन काल में दो विदेशी यात्रियों ने विजयनगर राज्य में भ्रमण किया। इटली का निवासी निकोलो तथा ईरानी दूत अब्दुल रज्ज़ाक ये दोनों यात्री विजयनगर में रहे। इन लोगों ने देवराय के शासन काल और विजयनगर शहर का सजीव वर्णन किया है।

इटली निवासी सुप्रसिद्ध यात्री निकोलो सन् १४२१ ई० में देवराय के शासन काल में विजयनगर राजधानी में वर्तमान था। उसने लिखा है

निकोलो का वर्णन

कि शहर साठ मील में फैला हुआ था। उस समय नगर में किले, मन्दिर तथा सुन्दर महल बने हुये थे। राज-महल के चारों ओर सात प्राचीरें बनी थीं। साम्राज्य में बहु विवाह की

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ४६१

प्रथा प्रचलित थी तथा सती की प्रथा से लोग परिचित थे । भारत के समस्त राजाओं में देवराय शक्तिशाली नरेश था । राजा की हजारों रानियां थीं । वर्ष में तीन बार बड़े समारोह के साथ त्योहार मनाया जाता था— पहिला होली, दूसरा दीपावली तथा तीसरा विजयादशमी का त्योहार प्रसिद्ध था । इन अवसरों पर लोग विभिन्न प्रकार के सुन्दर वस्त्र धारण करते तथा आमोद-प्रमोद में जीवन बिताया करते थे ।

अब्दुलरज्जाक

निकोलो के बीस वर्ष के बाद ईरानी दूत अब्दुलरज्जाक विजयनगर में आया । सन १४४२ ई० में उसने नगर को देखा । उसने राजा, नगर तथा सामाजिक अवस्था का सुन्दर शब्दों में चित्रण किया है । जब यह राजधानी में पहुँचा तो राजा ने उसे दरबार में बुलाया । राजसभा में राजा मूल्यवान वस्त्र धारण किए हुए बैठा था । अब्दुलरज्जाक ने विजयनगर शासक को घोड़े तथा अन्य पदार्थ भेंट में दिये । देवराय ने ईरान के बादशाह का पत्र लेकर दुभाषिये को पढ़ने के लिये दिया[1] । राजा ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की कि बादशाह ने मेरे लिए दूत भेजा है । राजा देवराय की आज्ञानुसार अब्दुलरज्जाक को पान दिया गया । उसकी भोजन-सामग्री—दो भेड़, चार कबूतर, शक्कर, चावल तथा मक्खन का प्रबन्ध किया गया । चलते समय राजा ने दूत को ५०० सिक्के दिए । अब्दुलरज्जाक ने लिखा है कि शहर घना आबाद था । राजा अत्यन्त शक्तिशाली था । उसका राज्य दक्षिण से गुलबर्गा तक तथा बंगाल से मलाबार तक विस्तृत था । राजा की विशाल सेना थी जिसमें ११ लाख सैनिक थे । सब जातियों में ब्राह्मण का ही अधिक आदर होता था । राजा भी उन ब्राह्मणों का ही कहना मानता था । नगर में सात प्राचीरों के अन्दर राजमहल बनाया गया था । बाजार में मोती, पन्ना, नीलम तथा हीरा बिका करते थे । नगर के समीप तालाब तथा नहर तैयार किये गए थे । इसी किले में दीवान-खाना, सभा-भवन के साथ

---

१ इलियट—हिस्ट्री आफ-इण्डिया भा० ४ पृ० १०५-२० ।

दफ़्तर खाना (आफिस) भी बना था । उसका कहना है कि राजा देवराय के एक भाई ने राज्य पाने के लिए शासक के जीवन को संकट में डालने का प्रयत्न किया था पर संयोग-वश देवराय बच गया[1] ।

देवराय ने अपने जीवन के अंतिम समय में बहमनी राज्य तथा लंका पर आक्रमण किया था । देवराय के समय में कन्नड़ भाषा के कवि तथा लेखक कुमार व्यास का भी आविर्भाव हुआ । वीर शैवों ने अपने मत को खूब फैलाया । विदेशी व्यापार की भी बहुत उन्नति हुई । राज्य में तीन प्रकार के सिक्के प्रचलित थे जो व्यापार की अधिकता की पुष्टि करते हैं । देवराय के सिक्के पर एक ओर 'राय-गज-गड़भेरुड़' लिखा मिलता-है तथा दूसरी ओर हाथी की आकृति बनी है । इससे ज्ञात होता है कि देवराय जानवरों के शिकार का बड़ा प्रेमी था । उपर्युक्त बातों पर विचार करने तथा विदेशियों के वर्णन के आधार पर यह प्रकट होता है कि संगम-वंश का सबसे बड़ा प्रतापी नरेश देवराय द्वितीय ही था । राज्योन्नति की चरम सीमा तथा सुख व शांति की पराकाष्ठा इसी के समय में दिखलाई पड़ती है । ऐसे आदर्श मार्ग पर कार्य करते हुए देवराय ने बाइस वर्ष तक शासन किया । सन् १४४६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई । इसके पश्चात् संगम-वंश की अवनति प्रारम्भ हो गई ।

संगम-वंश के अंतिम शासक

देवराय द्वितीय के पश्चात् उसके पुत्र मल्लिकार्जुन को राज्य भार सँभालना पड़ा । विद्वानों का मत है कि सन् १४४६ ई० में देवराय की मृत्यु हुई और मल्लिकार्जुन गद्दी पर बैठा[2] । देवराय के दोनों लड़के मल्लिकार्जुन तथा विरुपाक्ष के लेख क्रमशः १४५२ ई० तथा १४७० ई० के मिलते हैं । इससे प्रकट होता है कि देवराय की मृत्यु के पश्चात् संगम वंश के अंतिम दो शासकों ने प्रायः पच्चीस वर्ष तक राज्य किया । देवराय के पश्चात् विजय-

---

१ ऐयंगर—हिस्ट्री आफ-इण्डिया पृ० १४४ ।

२ ए० इ० भाग ३, पृ० ३६

नगर साम्राज्य को शक्तिहीन समझ कर चारों तरफ से शत्रुओं ने आक्रमण करना आरंभ कर दिया। बहमनी का नवाब तथा उड़ीसा के कपिलेश्वर नामक शासक विजय नगर के प्रधान शत्रु थे।

एक लेख में वर्णन मिलता है कि इम्मादी प्रतापी देवराय जब पर्वत पर निवास कर रहा था व उसको एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम देवता के नाम पर मल्लिकार्जुन रक्खा गया। यह स्पष्टतया उल्लिखित है कि कुमारावस्था में ही मल्लिकार्जुन को राज्य भार सँभालना पड़ा था—

'तयोः प्राचीनपुण्यानां परिपाकविशेषतः।
स्वीयजन्मान्तरप्राप्तभाग्यभोगफलाय हि॥
मल्लिकार्जुन देवस्य श्रीगिरौ सन्निवासिनः।
पितर्युपरते श्रीमान् धीरः परमधार्मिकः॥
इम्मादि देवेन्द्रो राजाऽभूत् जगतीपति :।
तेजोनिधिः भूमिपतेः श्रीमल्लिकार्जुन इति प्रथितः कुमारः॥

राज्यभार के साथ-साथ मल्लिकार्जुन को उड़ीसा के राजा कपिलेश्वर तथा बहमनी के मुसलमान नवाब से युद्ध करना पड़ा। घोर युद्ध हुआ और शत्रुओं को पराजित होकर लौट जाना पड़ा। इस युद्ध का वर्णन 'गंगादास-प्रताप-विलास' नामक नाटक के द्वितीय अङ्क में निम्न प्रकार से किया गया है।

'विजयनगरीपुरन्दरे श्रीमत्प्रतापदेवराजे महेन्द्रसभालंकारे सति तत्कुमारेण श्रीमल्लिकार्जुनेन साम्राज्यसिंहासनमधिष्ठितम्। तदाकर्ण्य दक्षिणसुरत्राणेण गजपतिना (बहमनी) नरेशेण विजयनगरमावृत्य स्थितं तावदसहमानो गजबलं मृगेन्द्रशावक इव गिरिकन्दरात् विजयनगरतः श्रीमल्लिकार्जुन राजा वहिर्निगर्त्य....हयपतिगजपतिसैन्यमशेषमजयत्।'[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि विजयनगर शासक ने बहमनी के तथा उड़ीसा के राजा कपिलेश्वर दोनों को परास्त किया था। फिरिस्ता का कथन

---

१ कैटलाग आफ संस्कृत मैनुसक्रप्ट्स (इंडिया आफिस) भा० ७.

दक्षिण भारत

विजयनगर तथा मुसलमानी रियासतें
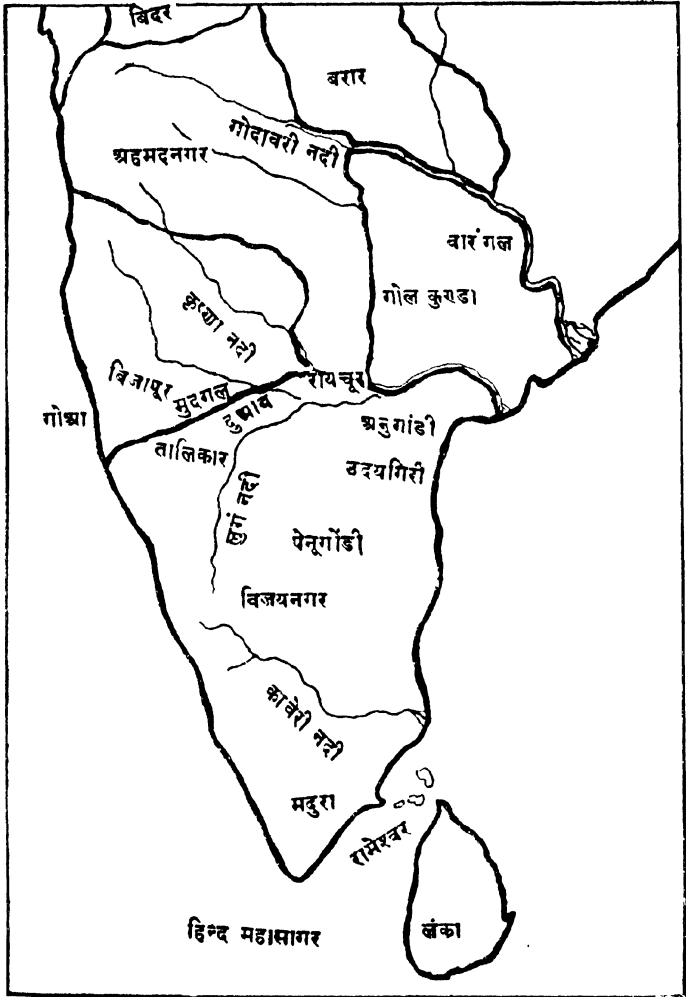
है कि यह घटना सुल्तान अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् (सन् १४५८ के बाद) हुई [1] । उड़ीसा का राजा इस पराजय के बाद शांत न रहा। वह अवसर ढूंढ़ रहा था। राज्य की अवस्था कुछ अच्छी न थी। अतएव कपिलेश्वर ने बहमनी के सुल्तान से मिलकर तैलिंगाना पर चढ़ाई कर दी। इसका वर्णन जगन्नाथ मंदिर के एक लेख में मिलता है, जिससे पता चलता है कि कपिलेश्वर ने कर्नाटक को जीतकर काञ्ची तक अपने अधिकार में कर लिया था:—

"कृत्वा सम्प्रतिमालवेन्द्रजयिनम् सेनाधिनाथं तु यम् ।
गौडेन्द्रस्य नितांतउत्कलपथा प्रस्थानरोधाः गलम् ॥
श्रीखंडाद्रिपयोधरो परिकरं निर्माय कांचीं रहः ।
सानन्दं कपिलेश्वरो विहरते कर्णान्तराजश्रिया ॥[2]

इस घटना के पश्चात् विजयनगर की शक्ति का ह्रास समझकर पांड्य राजा ने सन् १४६९ में कांची पर आक्रमण किया। [3] इस चढ़ाई से यह प्रकट होता है कि विजयनगर के सीमाप्रान्त केन्द्रीय सरकार से पृथक् हो गए थे। बहमनी सुल्तानों के लगातार आक्रमणों से राजधानी विजयनगर से पेनुगोंडा हटा दी गई थी। मल्लिकार्जुन प्रायः सन् १४६६ ई. तक शासन करता रहा परन्तु राज्य की नष्ट शक्ति को पुनः वापस न ला सका। तैलिंगाना, वारंगल, राजमहेन्द्री और खानदेश पृथक् साम्राज्य हो गये[4] । उड़ीसा तथा गोंडवाना समीपवर्ती रियासतें उत्पन्न हो गईं। दक्षिण भाग के नायक नरसिंह ने अपने सहायक तिम्म को उत्तर में भेजा। वह पेनुगोंडा

---

१ कृष्णस्वामी—लिटिल नोन चैप्टर आफ विजयनगर (ऐंशेंट इंडिया भा० २ पृ० ३८)

२ ज० ए० सो० बं० भा० ११९ पृ० ९ १७३; एपि० रिपोर्ट १८०६ पृ० ६५

३ एपि० रि० १९०६–७ पृ० ५६

४ कृष्णस्वामी—ऐशेंट इंडिया भा० २ पृ० ४६

में राजा के साथ रहा करता था और शासन में सहयोग दिया करता था। कपिलेश्वर के आक्रमण से बचने के लिए नरसिंह ने चन्द्रगिरि को अपना केन्द्र बनाया जिससे विजयनगर राज्य की वह रक्षा सके। इसका तात्पर्य यह है कि विजयनगर शासक शत्रुओं से राज्य को बचाने में असमर्थ थे और प्रांत के अधिपतियों से सहायता मागने लगे थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि समस्त नायकों ने स्वतंत्र रूप से दान देना प्रारम्भ किया। तिम्म के किसी भी लेख में मल्लिकार्जुन का नामोल्लेख नहीं पाया जाता[1] जो उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है।

मल्लिकार्जुन के पश्चात् विरुपाक्ष ने विजयनगर का शासन-प्रबन्ध किया। वह नाममात्र के लिए राजा था। विजयनगर के राज्य प्रबन्ध का भार नरसिंह सालुव पर था। विरुपाक्ष के शासन का विरोध समस्त नायकों ने किया। कोई भी उसे नहीं चाहता था। सब नायकों ने महा-मण्डलेश्वर की पदवी धारण की। उनके दानपत्रों में विरुपाक्ष का नाम तक नहीं मिलता[2]। विरुपाक्ष और मल्लिकार्जुन के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कोई इसे राजा का पुत्र तथा कोई भ्राता बतलाता है[3]। परन्तु यह निर्विवाद है कि विरुपाक्ष देवराय द्वितीय का पुत्र था। सन् १४६७ में मल्लिकार्जुन के पश्चात् यह राज्य का स्वामी बना[4]। एक लेख में विरुपाक्ष के लिए "**निजप्रतापादधिगतराज्यम्**" लिखा मिलता है, जिससे प्रकट होता है कि शक्तिवान् तथा गुणवान् होने के कारण विरुपाक्ष विजयनगर का राजा बनाया गया था:—

---

१ सा० इ० इ० भा० २ नं० २३.

२ वही—नं० ११६

३ कृष्णस्वामी—ऐशेंट इंडिया भा० २ पृ० ४४ तथा ५२; एपि० रि० १८६१ पृ० ६

४ आर्के० एनुवल १६०७-८ पृ० २२५

"निजप्रतापादधिगत्य राज्यं, समस्तभाग्यैः परिसेव्यमानः।
संग्रामतस्सर्ववैरिपून् विजित्य, सम्मोदते वीरविलासभूमिः॥

परन्तु सन् १४६९ से लेकर १४८१ ई० तक लगातार शत्रुओं के आक्रमण होते रहे। इन घटनाओं से यही प्रकट होता है कि कोई भी प्रभावशाली राजा इस समय विजयनगर में न था। मुहम्मदशाह द्वितीय विजयनगर-पर आक्रमण करता रहा और सब लड़ाइयां में उसको सफलता मिलती रही। मुहम्मद गवान ने गोआ पर विजय प्राप्त की। सन् १४७२ में बेलगाव विजयनरेश के हाथ से निकल गया। पश्चिमी किनारे के दो मुख्य बन्दरगाह विरुपाक्ष के हाथों से जाते रहे [१]। उसी के समय में नरसिंह सालुव का प्रभुत्व सारे साम्राज्य में फैल गया था। उसके उत्कीर्ण लेख सारे राज्य में मिलते हैं। उसने अपना राज्य स्वतन्त्र रूप से पूर्वी किनारे (मछुली पट्टम) से लेकर तैलिगांना तक स्थापित कर लिया [२]। सालुव के लेखों में 'महामण्डलेश्वर' तथा 'महाराजा' की उपाधि नरसिंह के लिए प्रयुक्त की गई है [३]। सन् १४२६ के लेख से ज्ञात है कि नरसिंह ने 'राजाधिराज' की पदवी धारण की [४]। इससे ज्ञात होता है कि विरुपाक्ष का राज्य काल उस समय तक समाप्त हो गया था। इस कथन की पुष्टि उसके पुत्र इम्मादी नरसिंह के एक लेख से होती है जिसकी तिथि शक १४१४ उल्लखित है। कहने का तात्पर्य यह है कि संगम वंश का अन्तिम शासक विरुपाक्ष सन् १४८६ ई. तक किसी प्रकार शासन करता रहा। देवराय द्वितीय के बाद विजयनगर के अन्तिम दो राजाओं का समय कष्ट के साथ व्यतीत हुआ। इन्हीं के समय में (सन् १४४९ से १४८६ तक) संगम-वंश का अन्त हो गया और राज्य अत्यन्त अवनत अवस्था को पहुँच गया।

---

१ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ९९
२ वही--पृ० १०१
३ एपि० कर० भा० ६ व १०
४ वही--भाग १२

विजयनगर का प्रथम राज-वंश

: ३ :
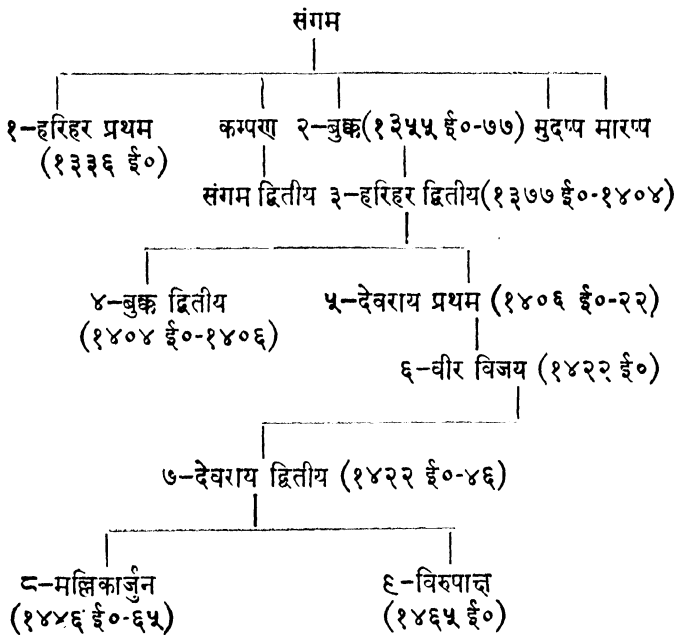
सालुव-वंश

विजयनगर के संगम-वंश का राज्य समाप्त होने पर सालुव-वंश का राज्य प्रारम्भ होता है। सालुव-वंश का सर्वप्रथम शासक नरसिंह था। संगम-वंश के अंतिम शासक--मल्लिकार्जुन तथा विरुपाक्ष के समय में ही नरसिंह सालुव की बढ़ती शक्ति का परिचय सबको प्राप्त होगया था। नरसिंह चन्द्रगिरि के अधिनायक के पद पर था तथा संगम-वंश की ओर से दक्षिण का शासन-प्रबन्ध करता था। संगम-वंश के अवनत काल में उड़ीसा के राजा तथा बहमनी के सुल्तान विजयनगर पर आक्रमण करने लगे थे। मल्लिकार्जुन तथा विरुपाक्ष में इतनी शक्ति न थी कि वे शत्रुओं की बढ़ती हुई शक्ति को रोक सकें। अतएव गवर्नरों में सर्व प्रधान नरसिंह सालुव ने राज्य-प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया। विद्वानों का मत है कि सन् १४८६ के बाद ही सालुव-वंश का राज्य आरम्भ हुआ।

वंश

नरसिंह का संगम-वंश से क्या संबंध था, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु लेखों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि दक्षिण भारत में अनेक सालुव युवक गवर्नर के पद से शासन कर रहे थे। नरसिंह के पितृव्य तिप्प सालुव का विवाह देवराय द्वितीय की बहन से हुआ था। राजनाथ दण्डिन् ने **'साल्वाभ्युदयम्'** नामक एक पुस्तक लिखी है। उसमें नरसिंह के युद्धों का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार यह ज्ञात होता है कि सालुव राजा यदुवंशी थे। वाराहपुराण में भी यादव-वंश का उल्लेख मिलता है। इस पुराण में गुण्ड नामक व्यक्ति का नाम आता है। इसकी ऐतिहासिकता अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध की गई है। नरसिंह के पुत्र के 'देवलमल्लाई ताम्रपत्र'

में गुण्ड नामक व्यक्ति का नाम पाया जाता है[1] । इसीमें नरसिंह का निम्न-लिखित वंश-वृक्ष मिलता है ।
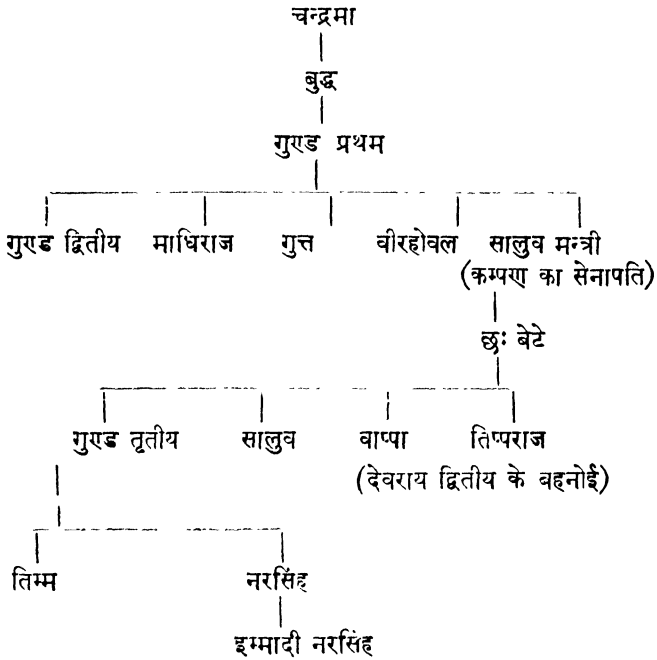
नरसिंह के पूर्व इस वंश के अन्य व्यक्ति भी विजयनगर राज्य (संगम-काल) में ऊँचे-ऊँचे पदो पर नियुक्त थे । दक्षिणी भारत में इस वंश की प्रधानता थी । नरसिंह चन्द्रगिरि का गवर्नर (प्रांतीय नायक) था । इस वंश के नामकरण (सालुव) के विषय में विद्वानों में मतभेद है । कृष्ण-स्वामी का मत है कि नरसिंह ने संगम-वंश से राज्य छीन लिया अतएव इस वंश का नाम सालुव पड़ा[2] । जैमिनी पुराण में वर्णन मिलता है कि

१ एपि० इंडि० भा० पृ० ७४ ।
२ आ० स० रि० १६०८-६ पृ० १७६ ।

मंज्जु ने मदुरा के मुसलमान राजा को परास्त किया। उसी समय से इस वंश को सालुव कहा गया। 'सालुव' तेलेगु भाषा का शब्द है जिसका अर्थ बाज़ (चिड़िया) होता है। देवलमल्लाई-ताम्रपत्र में ऐसा वर्णन मिलता है कि बाज़ की तरह नरसिंह ने राज्य को छीन लिया। यही कारण है कि विजयनगर के दूसरे वंश का नाम 'सालुव' पड़ा।

प्रारम्भिक कार्य

इम्मादी नरसिंह के ताम्रपत्र में ऐसा वर्णन मिलता है कि प्रारम्भ में नरसिंह चन्द्रगिरि का नायक था। वह सदा मुसलमानों से युद्ध करता रहा और मल्लिकार्जुन तथा विरुपाक्ष के समय में इसने विजयनगर को नष्ट होने से बचाया[1]। देवराय द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उड़ीसा के शासक ने तैलिंगाना पर अधिकार कर लिया। सन् १४७० ई० में उड़ीसा के राजा गजपति के मरने पर पुरुषोत्तम ने दक्षिणी भारत पर आक्रमण किया परन्तु सफल न हो सका। इसी समय बहमनी के मुसलमान शासक ने भी चढ़ाई की। नरसिंह ने राजमहेन्द्री में स्थित होकर बहमनी सुल्तान के बढ़ाव को रोक दिया। उस समय विजयनगर की केन्द्रीय सरकार का विश्वास प्रांतीय शासकों पर न रहा। यही कारण था कि नरसिंह ने समस्त नायकों की सम्मति से एक योग्य शासक को सिंहासन पर बैठाने के लिए निश्चित किया। नरसिंह ने सब नायकों को द्रव्य देकर शात किया और स्वयं उसने विजयनगर पर चढ़ाई कर दी।[2] सालुव तिम्म ने भी नरसिंह की सहायता की। उसके प्रधान सेनापति ईश्वर ने राजा की बड़ी सहायता की। इसने कई एक किले जीत लिये। वाराह-पुराण में भी नरसिंह के द्वारा विजित उदयगिरि और पेनुगोंडा आदि दुर्गों का नाम मिलता है। इसने उत्तरी भाग में तैलिंगाना की प्रधान नगरी राजमहेन्द्री को अपनी राजधानी बनाया। सालुव नरसिंह ने विजयनगर के कुछ प्रांतों को अपने आधीन रक्खा पर शेष प्रांत स्वतन्त्र हो गए। दक्षिणी महाराष्ट्र संगम वालों के हाथ

---

१ ए० इ० भा० ७ पृ० ७४

२ कृष्णस्वामी—ऐन्शेएट इण्डिया भाग २ पृ० ६७

से निकल गया। ऐसी अवस्था में भी विरुपाक्ष को सिंहासन से हटाना उचित न समझ वह समय व्यतीत करता रहा। सन् १४८६ ई. के लेखों में सालुव नरसिंह के लिए 'राजाधिराज परमेश्वर' की उपाधि मिलती है। इसके पहले के लेखों में 'महामण्डलेश्वर' या 'महाराज' की पदवियां उल्लखित हैं। अतः इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि सालुव नरसिंह सन् १४८६ ई. में स्वतंत्र रूप से विजयनगर राज्य का शासक बन गया।

सालुव-वंश का राज्य सन् १४८६ ई. से प्रारम्भ होकर सन् १५०६ में समाप्त हो गया। इस वंश में केवल दो शासक हुए। प्रथम सालुव नरसिंह तथा द्वितीय उसका पुत्र इम्मादी नरसिंह। विद्वानों का कथन है कि नरसिंह सात वर्ष तक राज्य करता रहा। न्यूनिज के वर्णन से ज्ञात होता है कि नरसिंह ४४ वर्ष तक शासन करता रहा। सम्भवतः न्यूनिज ने इस चौवालिस साल में नरसिंह के नायक रहने (प्रान्त के गवर्नर) की अवधि को भी सम्मिलित कर लिया है। संगम के वंशज मल्लिकार्जुन तथा अंतिम राजा विरुपाक्ष के समय से ही नरसिंह चन्द्रगिरि का अधिपति था। इस सारे समय को मिलाकर नरसिंह का शासनकाल चौवालिस वर्ष का माना जा सकता है।

नरसिंह को बहमनी के सुल्तान मुहम्मद द्वितीय से राजमहेन्द्री नामक स्थान पर युद्ध करना पड़ा। यद्यपि विजयनगर राजा के पास सात लाख पैदल सिपाही तथा पाच सौ हाथी थे, फिर भी नरसिंह परास्त होकर भाग गया। अंत में बहमनी के सुल्तान से उसने सन्धि कर ली। फल स्वरूप नरसिंह ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया तथा असंख्य धन भेंट में देना पड़ा। सुल्तान ने आगे चलकर कांची पर चढ़ाई की तथा शहर को नष्ट कर दिया। उसके लौट जाने के पश्चात् सालुव नरसिंह ने अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की। वाराह-पुराण में ऐसा वर्णन मिलता है कि नरसिंह ने अपने सेनापति ईश्वर की सहायता से बारह दुर्ग जीता और मुसलमानों को परास्त किया। 'जैमिनी-भारत' में भी सालुव नरसिंह की विजय का वर्णन पाया जाता है। उसने अंग, बग और कालिंग को जीता। इस तरह

उसका राज्य उत्तरी आरकाट, दक्षिणी आरकाट, चिंगलपुट, नेलोर, कृष्णा जिला तथा मैसूर प्रांत तक विस्तृत हो गया। वाराह-पुराण (श्लोक ३०) में नरसिह को 'शास्त्रज्ञ' तथा 'कर्नाट प्रतिपालक' कहा गया है। इससे यही कहा जा सकता है कि नरसिंह युद्ध-कुशल था और कर्नाटक तक के देश उसके आधीन थे। इस प्रकार सालुव नरसिंह सन् १४९३ तक शासन करता रहा।

इम्मादी नरसिंह

नरसिंह के पुत्र इम्मादी नरसिंह सालुव वंश का दूसरा राजा था। कहा जाता है कि नरसिंह को अपने सेनापति नरेश नायक (नरसिंह के सेनापति ईश्वर का पुत्र) पर अत्यधिक विश्वास था। मरते समय उसने नरेश से कहा कि मेरे दो पुत्रों में से योग्य व्यक्ति को राज्य का भार सौंपना। सेनापति नरेश ने प्रथम पुत्र को राज्य न देकर इम्मादी नरसिह को ही उत्तराधिकारी बनाया। इम्मादी के लेख सारे राज्य में पाये जाते हैं। सन् १४९३ के एक लेख में इम्मादी नरसिंह के लिए "श्रीमन् महामण्डलेश्वर पश्चिमसमुद्राधिपति सालुवइम्मादीनरसिंहराय" की पदवी प्रयुक्त की गई है। सन्१४९३ ई० में नरसिंह का शासनकाल समाप्त होने पर इम्मादी शासन करने लगा। नरेश नायक संरक्षक की तरह इम्मादी के राज्य की देखभाल करता रहा। उसके शिलालेखों के प्राप्त स्थान-चूडापा, अनन्तपुर, दक्षिणी कनारा, त्रिचनापल्ली, मदुरा तथा मैसूर प्रात से प्रकट होता है कि पिता के सदृश उसका भी राज्य विस्तृत था। उसके लेख की अंतिम तिथि १५०२ ई० मिलती है[1], जिसे इम्मादी नरसिंह के शासन काल का अंतिम वर्ष कह सकते हैं। इम्मादी के एक लेख में दान देने के कारण नरेश नायक को दानी बतलाया गया है। उसमें राज्य का स्वामी नरेश नायक कहा गया है[2]। इससे यह सिद्ध होता है कि सन्

---

१ एपि. रिपोर्ट १९०५ पृ. ८५.

२ वही नं. ४४५ आफ १९१३.

१५०२ ई० में इम्मादी का शासन समाप्त हो गया था। कुछ विद्वान् इम्मादी नरसिंह का राज्य १५०० ई० के बाद समाप्त होना बतलाते हैं। उसके एक लेख में यह बतलाया गया है कि 'महामण्डलेश्वर सालुव इम्मादी नरसिंह महाराज' सन् १४९९ ई० में विजयनगर में शासन कर रहे थे[1]। इसका शासन सन् १४९३ ई० से १५०१ तक अवश्य प्रसिद्ध रहा। उसी लेख में नरेश नायक सालुव विजयनगर शासक का सेनापति कहा गया है। सन् १५०१ के एक लेख में नरसिंह या वीर नरसिंह शासक कहा गया है[2]। उस लेख में नरसिंह के लिए 'महाराजाधिराज परमेश्वरवीरप्रतापीवीरनरसिंह' की उपाधि मिलती है। वह शासक विजयनगर में शासन कर रहा था। यह तिथि बतलाती है कि यह नरसिंह सालुव-वंश का संस्थापक नरसिंह नहीं हो सकता। इसकी समता नरेश नायक के पुत्र वीर नरसिंह से की जा सकती है। सालुव वंश के दूसरे राजा के लिए इम्मादी शब्द का प्रयोग मिलता है। अतः यह लेख वीर नरसिंह का है।

---

१ एपि० रिपोर्ट पृ० १६६ आफ १९०१.

२ वही नं. १५२ आफ १९०१.

: ४ :

तुलुव-वंश

सालुव नरसिंह ने सेनापति नरेश नायक को अपने बाद विजयनगर का संरक्षक बनाया था, इसी कारण से उसके पुत्रों में से इम्मादी को गद्दी पर बैठाया गया। जब तक वह शासन करता रहा (सन् १५०२ ई० तक) नरेश नायक की ही प्रधानता रही। इम्मादी नाम मात्र का शासक रहा। नरेश के लेखों में सम्राट् की महान् पदवियाँ उल्लिखित हैं, जिससे प्रमाणित होता है कि नरेश नायक शक्तिशाली हो गया था। इम्मादी के शासन से जनता असंतुष्ट थी, अतएव अधिक विरोध होने के कारण नरेश ने स्वयं राज्य-प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। नरेश नायक ही तुलुव-वंश का प्रथम शासक था।

प्रारम्भिक अवस्था में नरेश अपने पिता के समान ही विजयनगर के सालुव नरसिंह का सेनापति था। उसने अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की। नन्दी ने 'जैमिनि-भारतम्' तथा 'वाराहपुराण' को नरसिंह तथा उसके सेनापति नरेश को समर्पित किया था। उसमें इसके कार्यों का वर्णन पाया जाता है। नरेश युद्ध-विद्या में बड़ा दक्ष था। सालुव नरसिंह की मृत्यु के पश्चात् १४९३ ई० से १५०५ ई० तक शासन का भार नरेश पर ही रहा[1]। उसकी शक्ति को देख कर ही नरसिंह ने नरेश को राज्य का संरक्षक बनाया था।

नरेश ने अपने बाहुबल से कावेरी के सुदूर दक्षिण के प्रांत पर भी विजय प्राप्त की। वहाँ पर इसने अपना विजयस्तम्भ स्थापित किया[2]। इसका वर्णन निम्न प्रकार से मिलता है।

---

१ कृष्णस्वामी—ऐंशेंट इण्डिया भा० २ पृ० ६१।

२ एपि० कर० भा० ४ पार्ट २।

"कृत्वा श्रीरंगपुरं तदपि निजवले पट्टनं यो वभासे।
कूर्तिं स्तम्भं निकामत्रिभुवनं भवनं स्तूयमानापदानः॥"

नरेश ने गजपतिराय तथा मुसलमान सुल्तान को परास्त किया। इसी कारण इसके लेखों में 'दुष्टरिपुमृगशार्दूल' की पदवी उल्लिखित है। इसने मदुरा के शासक मानभूप को हराया; पांड्य तथा चोल और केरल शासकों से कर ग्रहण किया[1]।

जित्वा गजपतिं रायविरुदं प्राप साहसात्।
× × × ×
प्रतापोद्दामं तुरुष्केन्द्रं युद्धे जित्वा पराक्रमात्।
दुष्टरिपुमृगशार्दूलः इति राजा विरुद अगात्॥
मधुरावल्लभं मानभूपं निर्जित्य संयुगे।
करदी कृत्वा तथा पांड्यचोलकेरलभूपतीन्॥

इस प्रकार राज्य-विस्तार करके नरेश १५०७ ई० तक शासन करता रहा। विद्वानों का मत है कि शक १४२४ में इसका पुत्र वीर नरसिंह उत्तराधिकारी हुआ[2]। न्यूनिज का यह कथन है कि इम्मादी को मार डाला गया, नितांत भ्रममूलक तथा प्रमाण-रहित है। सन् १५०५ ई० के एक लेख से मालूम होता है कि नरेश विजयनगर में शासन कर रहा था। अतएव इससे प्रकट होता है कि प्रायः १५०६ ई० के समीप वीर नरसिंह को राज्य मिला।

तुलुव-वंश का दूसरा शासक वीर नरसिंह था। यह नरेश नायक का पुत्र था और प्रायः १५०५ ई० के बाद राज्य का उत्तराधिकारी हुआ।

वीर नरसिंह

१५०६ ई० के एक लेख में इसके लिए 'श्रीमान् महाराजाधिराजपरमेश्वरभुजबलप्रतापनरसिंहमहाराज' की पदवी प्रयुक्त है, जिससे प्रकट होता है कि वीर नरसिंह स्वतंत्र रूप से

---

१ वही भा० १०।
२ आ० स० रि० १६०७-८ पृ० १७१।

विजयनगर का शासन करता था। १५०८ ई० के एक लेख में गोविन्द के दान का वर्णन मिलता है, पर यह दान वीर नरसिंह की गुण-वृद्धि के लिए दिया गया था। महा-प्रधान सालुव तिम्म उसका योग्य मंत्री था। उसने वीर नरसिंह के राज्य-काल में अत्यन्त नीति पूर्वक कार्य किया। तिम्म के भाई और अन्य सम्बन्धी विजयनगर राज्य में ऊंचे ऊंचे पद पर नियुक्त किए गये थे। न्यूनिज का कथन है कि वीर नरसिंह ६ वर्ष तक राज्य करता रहा। उड़ीसा के राजा तथा बीजापुर के सुल्तान अवसर देखकर विजयनगर पर आक्रमण करने लगे। गजपति ने कई एक प्रधान दुर्गों पर अधिकार कर लिया। ऐसे संकटमय काल में उसके भ्राता कृष्ण-देवराय ने राज्य को आपत्ति से बचा लिया[1]। उसके पराक्रम से तथा युद्ध कुशलता से विजयनगर राज्य एक विशाल साम्राज्य के रूप में पुनः परिवर्तित हो गया। सन् १५०६ में वीर नरसिंह के उत्तराधिकारी कृष्णदेव राय ने शासन अपने हाथ ले लिया।

कृष्णदेवराय

तुलुव-वंश का तीसरा शासक कृष्णदेवराय था। जैसा कहा गया है वीर नरसिंह के पश्चात् सन् १५०६ में यह राज्य-प्रबंध करने लगा।

व्यक्तित्व

हिन्दू तथा मुसलमान बादशाहों में किसी से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। विदेशियों ने कृष्णदेव की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। पेई का कहना है कि कृष्णदेव राय का शरीर अत्यन्त सुन्दर था। राजा वैष्णव धर्म का अनुयायी था, परन्तु धार्मिक सहिष्णुता के कारण शैवों के लिए भी इसने दान दिये। यह संस्कृत तथा तेलुगु का विद्वान् तथा कवि था। इसके दरबार में अनेक कवि रहते थे जिनको "अष्ट दिग्गज" कहा गया है। प्रताप में इसकी विक्रमादित्य से समता की जाती है। कृष्णदेव सर्वप्रिय, न्यायकर्ता तथा व्यवहार-कुशल शासक था।

---

1 कृष्णस्वामी—एंशेंट इंडिया पृ० ९५

कुछ विद्वानों की राय है कि सन् १५१० में कृष्णदेव राय का अभिषेक किया गया[1]। तेलुगु काव्य-ग्रन्थों में इसे राजा भोज कहा गया है। 'कृष्णराज-विजय' नामक महाकाव्य में यह उल्लेख मिलता है कि नरेश नायक ने ही कृष्णदेव को अपना उत्तराधिकारी चुन लिया था। वह २१ वर्ष की आयु में सिंहासन पर बैठा। शासन प्रारम्भ करते ही उसका ध्यान सेना तथा शासन की व्यवस्था की ओर आकर्षित हुआ। कृष्णदेव ने सर्व प्रथम आर्थिक सुधार किया। तत्पश्चात् सेना को बलवान् तथा युद्ध-कुशल बनाने के लिए इसने इसका संगठन किया। सालुव तिम्म ने इसकी बड़ी सहायता की। इसने घुड़सवारों की संख्या बढ़ाकर चौबीस हजार कर दी। प्रत्येक हजार घोड़ों पर यह एक लाख पगोदा (सिक्का) व्यय करता था। इसने दस हजार हाथियों तथा एक लाख पैदल सेना तैयार की।

सर्व प्रथम कृष्णदेव राय ने शासन की बागडोर हाथ में लेते ही अपने प्रांत के सारे नायकों को दबाया। इकेरी, मदुरा आदि के नायक इसके आधीन हो गए और कर देना स्वीकार कर लिया। कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी शक्ति को स्थिर कर लेने पर इसने राज्य के केन्द्रीय प्रांत मैसूर आदि देशों पर आक्रमण किया। गोविन्द सालुव को प्रांत का नायक बना कर वह राजधानी को लौट आया। सिंहासन पर बैठते ही दो वर्ष के अन्दर विजयनगर राज्य में शांति स्थापित हो गई और सब नायकों ने कृष्णदेव राय को अपना सम्राट मान लिया।

सन् १५१३ ई० के प्रारम्भ में ही कृष्णदेव राय ने उड़ीसा के शासक गजपति प्रताप पर आक्रमण किया। एक लेख में वर्णन पाया जाता है कि उड़ीसा के शासक प्रताप का पुत्र वीरभद्र कृष्णदेव राय के आधीन होकर शासन कर रहा था[2]। उसने राजा को कर देना स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि इससे

दूसरी युद्ध-यात्रा

१ जे० आर० ए० एस० १९१५ पृ० ३६४

२ एपि० कर० भा० ६ पृ० १०७

पूर्व कृष्णदेव ने तैलिंगाना को जीतकर १५१५ ई० में उड़ीसा की रानी को कैद कर लिया था। गजपति ने सन्धि की और राजकुमारी का विवाह कृष्णदेव राय से कर दिया। इस युद्ध में उड़ीसा के अधिनायकों ने भी सहायता की थी। विजयनगर की सेना ने सारे राज्य तथा पूर्वी किनारे को रौंद डाला। उदयगिरि और राजमहेन्द्री पर अधिकार कर लिया। कृष्णदेव को असंख्य धन तथा अनेक मूल्यवान् पदार्थ जीत में मिले। गोविन्द सालुव उस प्रांत का नायक नियुक्त किया गया।[1]

इसके पश्चात् उत्तरी भाग में स्थित मुसलमान सुल्तानों से लड़ाई हुई। उस समय बहमनी राज्य पांच भागों में विभक्त हो गया था। अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा, बीदर तथा बरार-ये पाचों रियासतें अपने प्रभुत्व बढ़ाने के लिए एक दूसरे से द्वेष करती थीं। विजयनगर से भी सहायता लेती रहीं। सन् १५२० ई० में कृष्णदेव राय ने एक लाख सेना लेकर बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह पर आक्रमण किया। इसने अपने गुप्तचरों से मुसलमान सेना के मार्ग को समझ लिया। इस युद्ध में पैदल, घुड़सवार, धनुषधारी सिपाही तथा तोपखाना भी सम्मिलित था। राजा की सेना ग्यारह भागों में विभक्त थी। हिन्दू सेना ने रायचूर, मुद्गल तथा आदोनी के दुर्गों को जीत लिया। रायचूर का भाग (कृष्णा-तुंगभद्रा का द्वाब) सदा से विजेताओं के लिए लोभ का विषय था। विजयनगर की सेना ने इसे सत्रह वर्ष तक अधिकार में रक्खा। इस प्रकार कृष्णदेव राय के जीवन काल में मुसलमान सुल्तानों ने आक्रमण करने का साहस नहीं किया। फिरिस्ता के कथनानुसार उसकी मृत्यु, के बाद रायचूर को मुसलमानों ने छीन लिया[2]। रायचूर का युद्ध दक्षिण भारत के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। इसमें मुसलमानों का प्रसिद्ध प्रधान सेनापति सलावत खां पकड़ा गया। ४००० घोड़े, १००० हाथियां ४००, तोपें तथा अन्य

---

१ आ० स० रि० १९०८-९—पृ० १७६

२ ब्रिग—भा० ३ पृ० ६६

सामान जीत में मिले। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि कृष्णदेव राय ने अपनी पुस्तक 'आमुक्त-माल्यम्' में रायचूर के प्रसिद्ध युद्ध का उल्लेख तक नहीं किया है।

कृष्णदेव राय की तीसरी विजय-यात्रा दक्षिण में हुई। अमरावती के एक लेख से ज्ञात होता है[1] कि विजयनगर शासक ने शिवसमुद्रम् को जीत लिया था तथा नेलोर और त्रिचनापल्ली को जीतता हुआ सुदूर दक्षिण रामेश्वरम् तक पहुँच गया था। वहां जाकर इसने विजयोत्सव मनाया तथा अनेक धार्मिक कार्य किए। सन् १५१६–१५२० ई० तक कृष्णदेव राय ने दक्षिण में निवास किया। वहाँ पर इसका समय दान देने तथा नष्ट मंदिरों के जीर्णोद्धार करने में व्यतीत हुआ। धनुषकोटि पहुँच कर इसने तुलादान किया। यज्ञ तथा होम किए। वहाँ पर समस्त सेनापतियों तथा ब्राह्मणों को दान दिया। अपने सभासदों की एक सभा की। अनेक कवियों ने इस विजय-यात्रा को काव्य में लिखा है। तेलुगु भाषा का 'कृष्णदेवराजविजयम्' इसी समय तैयार किया गया था[2]।

इस प्रकार तीर्थस्थान में उत्सव मनाकर कृष्णदेव राजधानी को लौटा और १५३० ई० तक शासन करता रहा। इसका राज्य रामेश्वरम् से लेकर उत्तर में कृष्णा तक तथा पश्चिमी समुद्र से लेकर पूरब में उड़ीसा तक विस्तृत था।

इतने बड़े विशाल राज्य पर कृष्णदेव राय ने १५०६ ई० से १५३० ई० तक राज्य किया। उसी समय पुर्तगाली लोग पश्चिमी किनारे पर बस रहे थे। इनके गवर्नर अलबुकर्क ने विजयनगर राजा के पास एक दूत भेजा तथा बहुत सा सामान भेंट में दिया। उसकी यह प्रार्थना थी कि पश्चिमी किनारे पर पुर्तगाली लोगों को एक किला बनाने की आज्ञा दी जाय। कृष्णदेव ने इसे स्वीकार कर लिया और इससे विजयनगर का व्यापार बहुत बढ़ गया।

---

१ एपि० इण्डि० भा० ७ पृ० १८।

२ कृष्णस्वामी—सोर्सेज़ आफ विजयनगर पृ० ११७।

कृष्णदेवराय का राज्य विस्तार
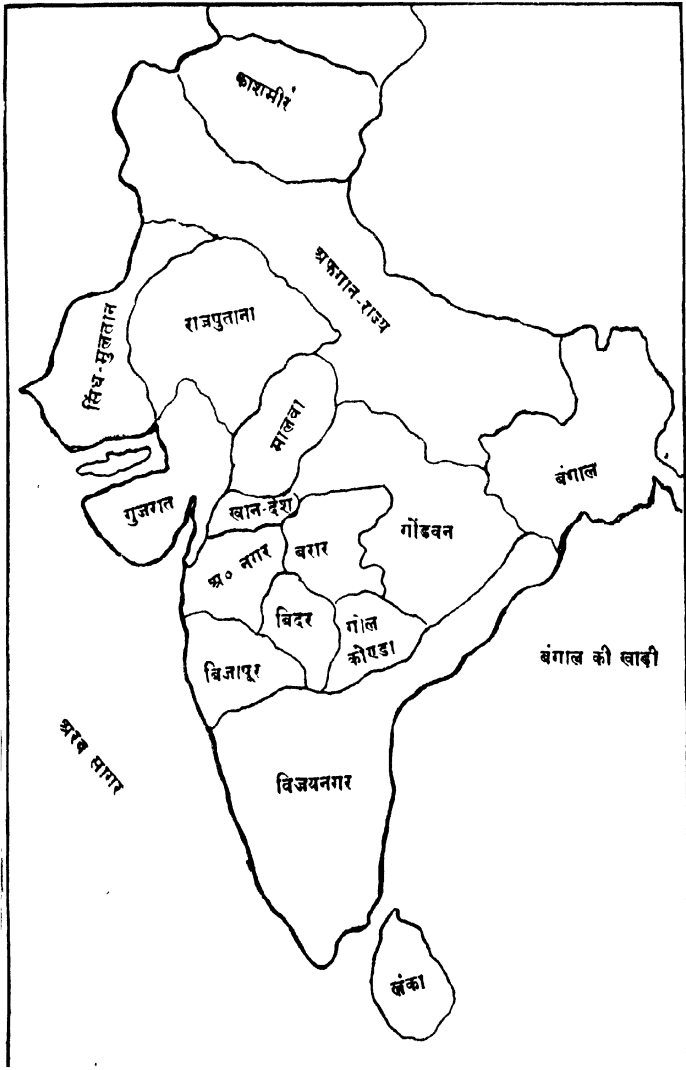
कृष्णदेवराय का शासनकाल विजयनगर के इतिहास में एक महत्वपूर्ण काल था। राजा ने समस्त स्वतंत्र राज्यों को जीत कर साम्राज्य की पहली सीमा के बराबर कर दिया। इसका शासन आदर्श रूप था। कृष्णदेव स्वयं कवि था। इसने 'आमुक्तमाल्यम्' नामक एक पुस्तक राजनीति पर लिखी है। उसके दरबार में 'अष्ट-दिग्गज (महान् पंडित) रहा करते थे[1]। राजा ने स्वयं वैष्णव होते हुए भी शैव मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया। इस प्रकार यह धार्मिक सहिष्णुता के भाव से पूर्ण था। इसने अपनी राजधानी को सुन्दर बनाया। स्वयं बड़ी विशाल अट्टालिकाएँ तैयार करायीं तथा नायकों के लिए भी निवासस्थान बनवाये। इसने एक विशाल वैष्णव मंदिर राजधानी में तैयार कराया। दक्षिण भारत के प्रायः सभी मन्दिरों में 'गोपुरम्' बनवाया। इसने कृषि के लिए तालाब तथा नहरें खुदवाईं। इस प्रकार इसने राज्य को अपने समय में उन्नति के शिखर पर पहुंचाया। उसका मंत्री तिम्म भी एक योग्य सचिव तथा सेनापति था। अप्पाजी भी विद्वान् मन्त्री तथा सच्चा सहायक था। राजा की सहायता उसने सदा की। पुर्तगालियों से सम्बन्ध करने से विजय-नगर में व्यापार की खूब तरक्की हुई। तेलुगु तथा संस्कृत साहित्य की पर्याप्त अभिवृद्धि हुई। अतएव कहा जा सकता है कि कृष्णदेव राय एक महान् शक्तिशाली, नीति कुशल, न्यायप्रिय तथा विद्वान् शासक था। इसके राज्यकाल में विजयनगर की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई।

चरित्र

कृष्णदेव राय की मृत्यु के पश्चात् विजयनगर की अवनति प्रारम्भ हो गई। मुसलमानों ने आक्रमण करना प्रारम्भ किया। इसी संकट की अवस्था में कृष्णदेव के भाई अच्युत को राज्य का कार्य-भार सँभालना पड़ा[2]। अच्युत अत्यन्त निर्बल शासक था। सिंहासन पर बैठते ही राज्य के उत्तरी भाग पर आक्रमण

अच्युत

---

१ मैसूर तथा कूर्ग लेख पृ० ११६।

२ कृष्णस्वामी—सोर्सेज आफ विजयनगर हिस्ट्री पृ० १५८

प्रारम्भ हो गए। बीजापुर के सुल्तान ने रायचूर तथा मुद्गल के प्रांत को जीत लिया। अच्युत उसका सामना न कर सका। हिन्दू सेना हार गई और राजा को नीचा देखना पड़ा। सुल्तान के बाध्य करने पर अच्युत को मुसलमानों को वार्षिक कर देना पड़ा।

अच्युत के समय में उसके बहनोई तिरुमल मंत्री के हाथ में शक्ति थी। राजा उसी के कहने के अनुसार कार्य करता था। सन् १५३० ई० के बाद अच्युत की कमज़ोरी के कारण प्रायः सभी प्रांतों के नायक स्वतंत्र हो गए। सब ने विद्रोह कर दिया। वीर नरसिंह जो एक विश्वासपात्र शासक था, राज्य के मध्य-भाग में शासन करता था। वह विद्रोहियों के साथ ट्रावनकोर की ओर भाग गया। मदुरा के शासक ने कर देने से इन्कार कर दिया। अन्त में नरसिंह के पुत्र विश्वनाथ को शासन प्रबन्ध दिया गया। परन्तु विश्वनाथ भी राज्य का प्रबन्ध सुचारु रूप से करने में असफल रहा। अच्युत ने सामंतों को दबाने के लिए दक्षिणी भाग पर आक्रमण किया तथा श्रीरंगम् पर चढ़ाई की। उसका बहनोई तिरुमल ही सेना का प्रधान था। पांड्य देश (कांची) तक विजयनगर की सेना पहुँच गई। पांड्य देश के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अच्युत से कर दिया। फलस्वरूप शांति स्थापित हो गई। इस युद्ध-यात्रा में अच्युत की सहायता उसके पुत्र वेंकट ने की। मद्रास के एक लेख में इसका वर्णन पाया जाता है[1]।

जैसा ऊपर कहा गया है बीजापुर के सुल्तान ने रायचूर द्वाब पर अधिकार कर लिया था। अच्युत ने अपनी बड़ी सेना लेकर उसी भाग पर आक्रमण किया परन्तु हिन्दू सेना तथा राजा भोग विलास में फँस गए। युद्ध क्षेत्र में ही नाच और गाना होने लगा। मुसलमान सेनापति ने सुअवसर पाकर धावा बोल दिया और राजा को गहरी हार खानी पड़ी।

शासन का समस्त प्रबन्ध अच्युत के बहनोई तिम्म के हाथ में

---

१ मद्रास इपि० रि० सन् १९०० ई०

था। राजा के भाइयों को यह बात बुरी मालूम हुई। राज्य में सब प्रकार से तिम्म की ही प्रधानता थी। परन्तु कृष्णदेव की विधवा रानी अपने जामाता रामराय को चाहती थी। अतः राजा के भाइयों ने सेना तैयार करके राजधानी पर चढ़ाई कर दी। तिम्म ने सबको परास्त किया। अच्युत १५४२ ई० में मर गया। यह परम वैष्णव शासक था। इसने अनेक दान किए। इसकी सभा के राजकवि राजनाथ ने 'अच्युत राया-भ्युदयम्' नामक पुस्तक की रचना की है। इससे इसके जीवन की वार्ता मालूम होती है। अच्युत की मृत्यु के पश्चात् तिम्म चाहता था कि अच्युत के वंश को समाप्त कर दे। एक लेख में ऐसा वर्णन मिलता है कि कृष्ण-देवराय ने अच्युत के पुत्र वेंकट को उत्तराधिकारी चुन लिया था[1]। परन्तु उसकी अवस्था कम होने तिम्म राज-वंश को नष्ट करना चाहता था। वेंकट एक विद्वान् व्यक्ति था[2]। वह तिम्म के अधिकार में था। अतः अच्युत की विदुषी स्त्री वरददेवी ने बीजापुर के सुल्तान आदिल-शाह को वेंकट को बचाने के लिए लिखा। अच्युत के उत्तराधिकारी सदा-शिव के एक लेख से इस बात की पुष्टि होती है कि तिम्म राज-वंश को समाप्त करने पर कमर कस के बैठा था। परन्तु आदिलशाह ने रानी की प्रार्थना स्वीकार कर ली और तिम्म के ऊपर चढ़ाई कर दी। तिम्म इस बात को सुन कर बहुत क्रोधित हुआ। प्रजा तथा सभी सरदार आदिलशाह की ओर थे। तिम्म ने क्रोध के कारण अनेक सरदारों की आँखें निकलवा-ली, घोड़ो के पैरों की नसें कटवा दीं, हाथियों को अन्धा कर दिया और सारे कोष को नष्ट कर दिया[3]। फिरिस्ता का कहना है कि तिम्म ने आदिल-शाह को पचास लाख रुपये तथा सैकड़ों सुन्दर हाथियों को घूस में दिया। सुल्तान विजयनगर में प्रवेश कर के भी घूस के कारण वापस चला गया।

---

१ एपि० कर० भा० ६

२ एपि० इण्डिका, भा० ६। सेवेल- पृ० १२

३ एपि० इं० भा० ४

तिम्म ने आक्रमण के भय से मुक्त होकर अच्युत के पुत्र वेंकट की हत्या करवा दी[१]। इस प्रकार तिम्म का प्रभाव पुनः स्थापित हो गया। प्रजा को पुनः अत्यन्त कष्ट होने लगा। तिम्म चाहता था कि तुलुव-वंश में कोई जीवित न रहे। परन्तु रामराय ने तिम्म के अत्याचार को नष्ट कर तथा उसे गद्दी से हटा कर सदाशिव (अच्युत के भतीजे) को राज्य दिया।

सदाशिव को सिंहासन पर बैठाने का विवरण तामिल-साहित्य में विशद रूप में मिलता है[२]। तिम्म के अत्याचार से प्रजा त्रस्त थी। वेंकट की हत्या से और सुल्तान के आक्रमण का भय टल जाने से तिम्म का अत्याचार बढ़ने लगा। अतएव कृष्णदेव राय के जामाता रामराय ने राजधानी पर चढ़ाई कर दी और दुष्ट तिम्म का दमन कर विजयनगर में शांति स्थापित की। तामिल-साहित्य में किये गये वर्णन की पुष्टि रामराय के एक लेख से होती है। उसमें रामराय को कर्नाटक (विजयनगर) का संरक्षक बतलाया गया है[३]।

रामराय ने विजयनगर को जीतकर तुलुव-वंश के अंतिम शासक सदाशिव को सिंहासन पर बैठाया। एक कवि ने लिखा है कि राज्य के

सदाशिव

मिलते समय सदाशिव की अवस्था तेरह वर्ष की थी, अतएव वह शक्ति-रहित था[४]। सदाशिव तिरुपति नगर में युवराज बनाया गया और विजयनगर में वह सिंहासन पर बैठा[५]। सदाशिव के एक लेख में यह उल्लेख मिलता है कि रामराय तथा अन्य मन्त्रियों ने मिलकर सदाशिव को गद्दी पर बैठाया था[६]। सदाशिव के

---

१ आ० स० रि० १६००–१।

२ कृष्णस्वामी—सोरसेज पृ० २२४

३ एपि० कर० भा० ५

४ सोरसेज पृ० १६०

५ वही पृ० १५८

६ एपि० इण्डिका भा० १४

अभिषेक का वर्णन 'वसुचरितम्' नामक काव्य में मिलता है[1]। उसमें उसकी उपाधि 'वीरप्रतापवीरसदाशिवरायदेव' लिखी मिलती है। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि रामराय ने बड़े समारोह के साथ सदाशिव का अभिषेक किया। सदाशिव कृष्णदेव राय की तृतीय पत्नी से उत्पन्न हुआ था। उसी के जामाता रामराय ने विजयनगर में शांति स्थापित करने तथा अपना प्रभुत्व स्थिर करने के लिए सदाशिव को राज्य-शासन दिया।

'रामराय-चरितम्' नामक ग्रन्थ में वर्णन मिलता है कि उसने अनेक किले जीते। लेखों में वह सदा सदाशिव का बहनोई कहा गया है[2]। न्यूनिज का कथन है कि रामराय अच्युत के समय से ही शासन प्रबंध में अपनी सम्मति देता था परन्तु सदाशिव को सिंहासन पर बैठा कर स्वयं साम्राज्य का शासन करने लगा[3]। चिक्कराय वंशावली में भी यही वर्णन मिलता है कि वास्तविक शक्ति रामराय के हाथों में थी[4]। समस्त मुसलमान ऐतिहासिकों ने इसी बात की पुष्टि की है। सन् १५४७ ई० के एक लेख में उपर्युक्त बातें इस प्रकार लिखी गई हैं कि 'महा मण्डलेश्वर रामराय की संरक्षता में सदाशिव विजयनगर का राजा था[5]।"

विदेशी यात्रियों ने वर्णन किया है कि १५५२ ई० में रामराय ने सदाशिव को कैद कर लिया। वर्ष में केवल एक बार वह प्रजा को दिखलाया जाता था। परन्तु किसी भी लेख से इसकी पुष्टि नहीं होती। अतएव इससे यही तात्पर्य निकाला जा सकता है कि सदाशिव रामराय के हाथों में कठ-पुतली के समान था। कई लेखों में सदाशिव तथा रामराय के दान देने का वर्णन मिलता है[6]। कुछ लेख ऐसे भी प्राप्त हैं जिनमें

---

१ सोरसेज पृ० २१६

२ एपि० इ० भा० ४ पृ० ३

३ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३६७

४ सोरसेज पृ० ३०२

५ बटरवर्थ—नेलोर इन्सकृप्शन भा० ३

६ एपि० कर० भा० ४

रामराय तथा सदाशिव दोनों की वंशावली का उल्लेख पाया जाता है[१]। इन प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रामराय ही वास्तविक रूप में शासक था। परन्तु आरम्भ में सदाशिव को हटाकर स्वयं राजा बनने की बात उसने न सोची और पर्याप्त समय तक संरक्षक के रूप में सभी राज्य-प्रबंध करता रहा। इस प्रकार १५७० ई० तक सदाशिव नाममात्र का शासक रहा। यद्यपि रामराय के लेखों में १५६३ ई० से उसके लिये सम्राट की पदवी प्रयुक्त मिलती है और विजयनगर के शासक सदाशिव का नामोल्लेख भी नहीं मिलता, तो भी यह कहा जा सकता है कि सदाशिव तथा रामराय के जीवन में इतना घनिष्ट सम्बन्ध था कि एक का जीवन-चरित दूसरे की जीवन कथा से पृथक नहीं किया जा सकता। अतएव सदाशिव के जीवन का इतिहास यहां न देकर रामराय के साथ लिखा जायेगा।

१ एपि० इं० भाग १४

: ५ :

आरविदु-वंश

तुलुव-वंश के पश्चात् विजयनगर के शासन का भार आरविदु-वंश पर पड़ा। तुलुव-वंश का अंतिम राजा सदाशिव सिंहासन पर बैठा था परन्तु वास्तव में रामराय ही उसका सारा राज्य-प्रबंध करता था। यह लिखा जा चुका है कि सदाशिव तथा रामराय का जीवन काल प्रायः साथ ही समाप्त हो गया। सदाशिव के राज्य काल में रामराय ने अपना जीवन व्यतीत किया। यद्यपि वह गद्दी पर नहीं बैठा परन्तु साम्राज्य का वास्तविक शासक वही था। अतः सच देखा जाय तो आरविदु-वंश का प्रारम्भ सदाशिव के अभिषेक से ही प्रारम्भ होता है। रामराय इस वंश का प्रथम ऐतिहासिक शासक था।

रामराय

रामराय के लेखों से ज्ञात होता है कि वह कृष्णदेव राय के मंत्री श्रीरंग का पुत्र था। उसके लेखों में 'महामण्डलेश्वररामरायपुत्रश्रीरंग-देव महाराज' मिलता है। फिरिस्ता का कथन है कि सर्व प्रथम रामराय गोलकुण्डा के सुल्तान कुतुब-शाह के एक जिले का शासक था। बीजापुर के आदिलशाह ने इसे बुरी तरह से वहाँ से निकलवा दिया, अतः प्रतिष्ठा-रहित होकर दुखपूर्वक रामराय विजयनगर को लौटा। कृष्णदेव राय ने इसे योग्य तथा कार्य कुशल देखकर अपनी पुत्री ब्याह दी और इसे तामिल देश का नायक नियुक्त किया। उसी समय से रामराय योग्यता पूर्वक विजयनगर राज्य के अन्तर्गत शासन करने लगा। अच्युत की मृत्यु के पश्चात् वेंकट के समय में विजयनगर का मंत्री तिम्म उस वंश को नष्ट करना चाहता था। प्रजा संकट में थी और अत्याचार से पीड़ित थी। अतएव रामराय ने विजय-नगर पर चढ़ाई की, दुष्ट राजा का दमन किया और तुलुव-वंश के अंतिम

राजा सदाशिव को सिंहासन पर बैठाया (जिसका वर्णन पिछले पृष्ठो में किया जा चुका है) । रामराय चाहता तो विजयनगर के समस्त राज्य का स्वामी बन जाता, परन्तु प्रजा को शांत करने के लिए तथा आरविदु-वंश की प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए रामराय ने सदाशिव को ही राजा बनाया । यद्यपि लेखों में तुलुव-वंश के साथ, रामराय का भी वंश उल्लिखित मिलता है और वह सदा सदाशिव का बहनोई लिखा गया है,[1] परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह स्वयं राजा बन गया । 'नरपतिविजयम्' नामक काव्य में भी यही लिखा मिलता है कि रामराय से कृष्णदेवराय की पुत्री तिरुमल्वाविका ब्याही गई थी[2] । रामराय के पांच पुत्र—वेंकट, श्रीरंग आदि–तथा दो कन्याएं पैदा हुई थीं । रामराय के दो भ्राता थे । तिरुमल नायक भ्राता से कृष्णदेवराय की चिन्नदेवी से उत्पन्न पुत्री ब्याही थी । उसके भी चार पुत्र थे । दूसरे भ्राता का नाम वेंकट था । उसने अपने जीवन में दो ब्याह किए । उसके दो पुत्र थे[3] । मंगल दान पत्र में वेंकट की समता लक्ष्मण से बतलाई गई है[4] । और रामराय की उपमा रामचन्द्र से दी गई है ।

साहित्यिक प्रमाणों तथा लेखों के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रारम्भ में सदाशिव के लिए, संरक्षक के रूप में, रामराय विजयनगर साम्राज्य का सारा कार्य सम्पादन करता था[5] । यही कारण है कि एक लेख में सदाशिव और रामराय की पुण्य-वृद्धि के लिए किये गये दान का वर्णन मिलता है[6] तो दूसरे लेख में इन दोनों के वंश-वृक्ष का उल्लेख पाया जाता है[6] । कुछ लोगों का मत है कि रामराय ने तेरह वर्ष

---

१ एपि० इं० भा ४ पृ० ३. । २ कृष्णस्वामी—सोरसेज पृ० १७८

३ सोरसेज आफ विजयनगर पृ० २२२ ।

४ रंगाचार्य—भा० १ पृ० ५ ।

५ चिक्कराय-वंशावली; वटरवर्थ—नेलोर की प्रशस्ति ।

६ एपि० कर० भा० ४ ।

तक सदाशिव को कारावास में रक्खा। तत्पश्चात् स्वयं राजा बन गया। परन्तु यह कथन प्रमाण-रहित है। यदि रामराय का स्वयं राजा बनाने का विचार होता तो वह प्रारम्भ में ही सदाशिव को हटा कर शासक बन जाता।

कुछ काल के पश्चात् रामराय ने राजकीय पदवियां धारण कीं[1]। वेंकट के मंगल-दानपत्र में यह उल्लेख मिलता है कि वेंकट रामराय का अधिनायक था। राजा सदाशिव का उसमें उल्लेख नहीं पाया जाता[2]। इसका तात्पर्य यह है कि रामराय राज्य के लाभ के लिए सदाशिव को हटाकर स्वयं राजा बन बैठा। रामराय कृष्णदेवराय का जामाता था और आरम्भ से ही वास्तव में वही राजा था, इसलिए किसी ने उसका विरोध नहीं किया। देवराय के एक ताम्रपत्र से पता चलता है कि सन् १५६२ ई० में रामराय विजयनगर का सम्राट था[3]। इसके बाद के अन्य लेखों में रामराय के लिए "राजाधिराजः, राजपरमेश्वरवीरप्रतापमहाराजः, रामदेवरायः" की पदवी मिलती है[4]। अतः १५६२ से सदाशिव नाममात्र का भी शासक न रहा। वास्तव में यही समय तुलुव-वंश का अंतिम काल और आरविदु-वंश का प्रारम्भिक समय था।

फिरिस्ता का कहना है कि रामराय ने सम्राट् होते हुए ही अपने समस्त शत्रुओं को परास्त किया[5]। इसके लेखों से ज्ञात है कि रामराय ने सब शत्रुओं को मार डाला[6]। 'शिव-तत्त्वरत्नाकर' नामक पुस्तक से इसकी पुष्टि होती है कि राजा ने पर्वतीय नरेशों को परास्त किया[7] और उनसे कर ग्रहण किया। उसका राज्य

विदेशी-नीति

१ एपि. इं० भा० १४। २ वही।
३ रंगाचार्य—भाग २ पृ० १६८। ४ एपि० कर० भाग १२
५ वही भाग ४, ७। ६ ब्रिग-भाग ३ पृ० ३८१
७ एपि० कर० भा० १४, एपि० इण्डिका भाग ३

समस्त दक्षिणी भाग में विस्तृत हो गया। लंका के राजा ने भी रामराय की आधीनता स्वीकार की। पुर्तगालियों के साथ विजयनगर का पर्याप्त व्यापारिक सम्बन्ध था। बीजापुर के युसुफअली शाह ने गोवा पर अधिकार कर लिया था। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् रामराय ने पुर्तगालियों को गोवा को वापिस लेने में बहुत सहायता दी। गोवा के गवर्नर अलबुकर्क ने एक दूत भेजा[1]। विजयनगर से भी एक दूत भेजा गया। पुर्तगाली रामराय के मित्र बन गये।

इसके पश्चात् रामराय के समय में पुर्तगाली लोगों ने जल सेना द्वारा तिरुपति के वैष्णव मंदिर पर आक्रमण किया। वहां सोना तथा असंख्य धन था। विजयनगर की जलसेना का प्रधान तिमोजा था। इसी के कारण पुर्तगाली जलसेना की लड़ाई में सफल न हो सके। अन्त में दोनों में सन्धि हो गई। विजयनगर के दूत का गोवा में शाही स्वागत किया गया और निम्न लिखित शर्तों पर सन्धि-पत्र लिखा गयाः—

(१) विजयनगर तथा पुर्तगाली लोग आपस में मित्र हैं तथा एक दूसरे की सहायता करते रहेंगे।

(२) विजयनगर का शासक गोवा में सारे अरबी घोड़ों को खरीदेगा।

(३) दोनों राज्यों में निर्विघ्न व्यापार होता रहेगा।

(४) एक शासक दूसरे का माल खरीदेगा।

(५) पुर्तगाली लोग लोहा तथा अन्य धातुओं को विजयनगर के बन्दरगाह पर ले आवेंगे और पुर्तगाली उसे अवश्य खरीदेंगे।

(६) विजयनगर के कपड़े पुर्तगाली खरीदेंगे तथा इसके बदले में वे लोग ताँबा, मूंगा, पारा तथा चीन देश का रेशम देंगे।

(७) विजयनगर का राजा किसी भी मुसलमानी जहाज़ को बन्दरगाह पर ठहरने न देगा। यदि उनके जहाज़ आवे तो पकड़ कर पुर्तगालियों को दे देगा।

---

१ दानवेर—पोर्चुगीज भा० १ पृ० १६३

(८) आदिलशाह दोनों का शत्रु समझा जायेगा।

यह सन्धि-पत्र सन् १५४७ ई० में लिखा गया। पुर्तगाली गवर्नर ने घोड़े, कपड़े तथा अन्य कीमती सामान भेंट रूप में विजयनगर को भेजा। परन्तु इस सन्धि-पत्र का बहुत दिनों तक पालन नहीं किया गया। फलस्वरूप रामराय ने पुर्तगालियों के नये शहर पर आक्रमण कर दिया। सेना उसका सामना न कर सकी। पुर्तगाली लोग भाग गये और सदाशिव की सेना ने शहर पर अधिकार कर लिया।

सदाशिव के शासन काल के प्रारम्भ में ही रामराय ने राज्य की शक्ति को अपने हाथ में रखना चाहा। अतः कभी एक मुसलमानी राज्य की सहायता करता था तो कभी दूसरे की सहायता कर तीसरे को परास्त करता था। वह शक्ति का संलतुन (balance of power) सदा बनाये रखना चाहता था। सर्व प्रथम वेंकट ने बीजापुर के सुल्तान पर चढ़ाई की। उसने रायचूर के दुर्ग को ले लिया और भीमा के किनारे शत्रु को परास्त किया[1]। दूसरे दिन ही मुसलमानी सेना ने हिन्दू कैम्प पर धावा कर दिया। वेंकट युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। विजयनगर का सारा धन मुसलमानों के हाथ लगा। आक्रमणकारी सुल्तान के सेनापति आसद खाँ को घूस देकर लौटा दिया गया। इस बीच में मुसलमान राजा आपस में लड़ते रहे। रामराय भी समय समय पर पाचों बहमनी रियासतों की सहायता करता रहा। सन् १५५२ ई० में सदाशिव ने इब्राहिम नामक व्यक्ति को शरण दी। रामराय ने राजा को सलाह से (सदाशिव के शासन-काल में) गोलकुण्डा के नवाब कुतुबशाह तथा बीजापुर के आदिलशाह को अहमदनगर पर चढ़ाई करने के लिए सहायता की। तीन ओर से आक्रमण किया गया। सुल्तान निजामशाह पकड़ लिया गया और उसकी राजधानी को हिन्दू सेना ने नष्ट कर दिया। फिरिश्ता का कहना है कि विजयनगर की सेना ने मसजिदें गिरा

मुसलमानों से युद्ध

---

१ सोर्सेज़ पृ० २२४।

दीं और उसमें मूर्तियां स्थापित कीं। सारे महल को जला दिया गया। बाल, स्त्री, वृद्धों को मारा गया। इस प्रकार अहमदनगर बिल्कुल नष्ट कर दिया गया[१]। इस अत्याचार से मुसलमान प्रजा त्रस्त हो गई। समस्त मुसलमान रियासतों में धर्म पर अत्याचार व कुठाराघात होने से क्षोभ पैदा हो गया। सब ने हिन्दू सेना के व्यवहार को बुरा माना। इसके पश्चात् गोलकुण्डा के सुल्तान तथा रामराय में मित्रता न रही। बीजापुर पर भी रामराय के सेनापतियों ने चढ़ाई की और वहां बहुत हानि पहुँचाई। और रायचूर का किला जीत लिया।

तालिकोट का युद्ध

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि अहमदनगर में मुसलमान धर्म पर कुठाराघात होने से समस्त बहमनी रियासतें एक हो गईं। बीजापुर के सेनापति मुस्तफा खां ने मुसलमानी राज्यों का एक संघ तैयार करने का विचार किया। अतः उसने बीजापुर तथा अहमदनगर में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कराया। सदाशिव ने गोलकुण्डा से लगभग सारा राज्य मांगा था। परन्तु मुसलमानों के संगठित हो जाने से यह मांग पूरी न हो सकी। बीजापुर ने रायचूर तथा मुद्गल दुर्गों को वापस लेलिया। यह सूचना पाकर रामराय ने समस्त नायकों की सेना एकत्रित की। रामराय के भ्राताओं, तिरुमल तथा वेंकट ने एक विशाल सेना लेकर कृष्णा नदी के किनारे डेरा डाला। विजयनगर की सेना में ३ लाख पैदल, ३४००० घोड़े, १५०० हाथियाँ तथा हल्की तोपें थीं। इसके अतिरिक्त दस मील की दूरी पर प्रायः इससे तीन गुनी फौज सुरक्षित रक्खी गई थीं। हिन्दू सेना में तिरुमल, बेंकट, सदाशिव तथा रामराय प्रधान थे। मुसलमानों की भी फौज लाखों की संख्या में थी। उनके पास युद्धक्षेत्र में प्रलय मचाने वाली भयंकर तोपें भी थीं। हुसेनशाह, अली-आदिल, इब्राहीम तथा वहिदखां मुसलमानी सेना के संचालक थे। कृष्णा के किनारे दोनों सेनाएं डेरा डाले पड़ी थीं। मुसलमानी सेना ने रात को

---

१ ब्रिग—भा० ३ पृ० १२०–१२६।

कृष्णा को पार कर लिया और सदाशिव के कैम्प की ओर चलीं। दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हो गई। सत्तासी वर्ष की आयु में भी रामराय ने अपनी सेना को प्रोत्साहित करने के लिए एक व्याख्यान दिया। वेंकट ने बायीं ओर से बीजापुर की सेना पर धावा किया। रामराय केन्द्र में था। तिरुमल शत्रुओं पर विजयी हुआ। रामराय ने निज़ाम की सेना को पीछे हटाया और सदाशिव ने जीत की घोषणा कर दी। विजय के उपलक्ष में सेनापतियों को इनाम देने का वादा किया गया परन्तु विजयनगर-शासक इस जीत को अधिक समय तक स्थिर रख न सके और युद्ध का रुख बदल गया। निजाम के सेनापति रुम्मी खां के पास तांबे के बहुत पैसे थे। युद्ध के समय उन्हीं को भर कर उसने तोपें छोड़ी। इस कारण विजयनगर की सेना में व्यग्रता छा गयी। सेना में घबराहट पैदा हो गयी। विजयनगर के दो मुसलमान सेनापतियों ने राजा को धोखा दिया। प्रत्येक सेनापति सत्तर २ हजार सेना के साथ अपने धर्मावलम्बी बहमनी सुल्तान की सेना से मिल गये। इसलिए विजयनगर की सेना में भगदड़ मच गई। रामराय इस बुरी स्थिति को संभालना चाहता था, लेकिन वह घायल हो गया और पकड़ लिया गया। निजामशाह ने राम-राय को मार डाला। यह युद्ध सन् १५६५ ई० में हुआ था। इस युद्ध के स्थान के निश्चय करने में विद्वानों में मतभेद था। परन्तु अब यह स्थिर हो गया कि वह स्थान तालिकोट ही है[1]। १५६८ ई० के एक लेख में यह उल्लेख मिलता है कि तालिकोट के युद्ध में रामराय मार डाला गया[2]। सदाशिव भी भागता हुआ पकड़ा गया। एक महावत ने राजा को हुसेनशाह के सन्मुख उपस्थित किया। सुल्तान ने राजा को शीघ्र मार डाला। मृत राजा के सिर को भाले पर रखकर सब को दिखलाया गया। वेंकट १५० मील की दूरी पर पेनुगोंड़ा भग गया और तिरुमल

---

१ भा० इति० संशोधक मण्डल पत्रिका भाग ४ पृ० ७२

२ एपि० कर० भाग ११

अनेगोड़ी में बीजापुर के आधीनस्थ होकर कार्य करने लगा । विजयी शत्रुओं ने द्वाब पर अधिकार कर लिया । इस युद्ध से विजयनगर की शक्ति नष्ट हो गई ।

हार के कारण

विजयनगर की सेना के परास्त होने के कई कारण थे । प्रथम तो मुसलमानी घुड़सवार योग्य सैनिक थे । (२) पैदल सिपाही सेना के काम में दक्ष थे । (३) तोपखाना उनके पास विजयनगर से बढ़ कर था और (४) मुसलमान सेनापतियों ने विजयनगर राजा को धोखा दिया तथा विश्वाघासत किया ।

अत्याचार और लूट

सेवेल का कथन है कि मुसलमानी सेना ने विजयनगर राज्य में प्रवेश करके राजधानी को नष्ट कर दिया । ५५० हाथियों पर लाद कर विजयनगर से अतुल धन मुसलमान लूट कर ले गये [१] । उन्होंने नागरिकों को कत्ल किया और मंदिरों तथा राजमहलों को नष्ट कर दिया । संसार के इतिहास में ऐसी अत्याचार पूर्ण घटना सुनी नहीं गई है । जीत के फलस्वरूप मुसलमानों को लड़ाई का सामान, जवाहिरात तथा असंख्य धन मिला । फिरिस्ता ने लिखा है कि प्रत्येक सिपाही लूट के धन से धनवान् हो गया । राजधानी के सुन्दर भवन, विशाल अट्टालिकाएँ तथा भव्य मन्दिर नष्ट कर दिये गए । मुसलमानों की सेना छः मास तक नगर में पड़ी रही और सिपाही लूट-मार करते रहे । नगर में विट्ठल स्वामी, कृष्णदेव, अच्युत आदि के मन्दिर ध्वंस किये गए । मुसलमानों के लौट जाने के पश्चात् तिरुमल अपनी राजधानी को लौटा [२] और स्वतंत्र रूप से शासन आरम्भ किया ।

रामराय एक न्यायपरायण, साहसी तथा शक्तिशाली राजा था ।

---

१ ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २०८

२ हेरास—आरविदु डा० पृ० २२८ ।

उसने आदर्श रीति से शासन किया। वह दयावान् होते हुए भी शत्रुओं के लिए कठोर था। उसके गुण उसके लेखों में उल्लिखित हैं[1]। साहित्य की पुस्तकों में वर्णन मिलता है कि रामराय ने 'रत्नकुटी' नामक एक मंदिर तैयार कराया था। वह सदा ध्यान में लगा रहता था ; वह दान देता तथा साहित्य चर्चा में जीवन व्यतीत किया करता था[2]। वह संगीत से भी प्रेम रखता था तथा स्वयं वीणा बजाया करता था। उसने अपने समय में साहित्यिक तथा कला की उन्नति की। इस प्रकार शस्त्र तथा शास्त्र की चिन्ता में जीवन बिताते हुए नव्वे वर्ष की आयु में रामराय ने संसार से प्रयाण किया।

चरित्र

तालिकोट के युद्ध का प्रभाव दक्षिण भारत पर अत्यधिक पड़ा। जैसा अत्याचार मुसलमानी सेना ने विजयनगर साम्राज्य तथा राजधानी में की वैसा भयंकर विनाश, लूट और अत्याचार की बातें संसार के किसी युद्ध में सुनने को नहीं मिलतीं। इस भयंकर पराजय के पश्चात् कोई भी हिन्दू शासक पुनः विशाल साम्राज्य के निर्माण का सपना तक न देख पाया। यद्यपि कुछ समय के पश्चात् महाराष्ट्र में शिवाजी ने हिन्दू राज्य स्थापित किया परन्तु विजयनगर की महत्ता के सामने इसकी कोई गणना न थी। हिन्दू साम्राज्य के पतन से हिन्दू सस्कृति नष्ट होने लगी। राजाओं के निर्मित कलापूर्ण विशाल मन्दिर व महल अब देखने को न रहे। कला की दृष्टि से दक्षिण भारतीय मन्दिरों को महत्व पूर्ण स्थान दिया गया था परन्तु अब वे बातें न रहीं। विजयनगर ने पुर्तगाली लोगों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किया था। पुर्तगाली लोगों के निश्चित बाजार थे, परन्तु सब व्यापार नष्ट कर दिया गया और विदेशियों का व्यापार समाप्त हो गया। विदेशियों को भी इस अशांतिमय वातावरण से लाभ हुआ और वे विभिन्न स्थानों पर अपना राज्य स्थिर करने लगे। विजयनगर साम्राज्य के नष्ट होने से भारतीय संस्कृति की बड़ी क्षति हुई।

युद्ध का प्रभाव

---

१ एपि० कर० भा० ५। २ सोर्सेज पृ० १९०।

ऊपर कहा गया है कि तालिकोट के युद्ध के बाद विजयनगार के शासकों की स्थिति डावांडोल हो गई। उनका जीवन स्थिर न रहा। राजधानी की महत्ता, वैभव तथा प्रधानता नष्ट हो गई।

तिरुमल

यवन सेना महीनों के लूटमार के बाद विजयनगर को छोड़ कर वापस चली गई। जितना हो सका राज्य को उन्होंने लूटा और नष्ट किया। इस महान् युद्ध के एक वर्ष के बाद अर्थात् सन् १५६६ ई० में तिरुमल ने मौका देख कर विजयनगर लौटने का विचार किया। उसी समय बीजापुर तथा अहमद-नगर के राज्यों में झगड़ा शुरू हो गया। अतएव सुअवसर पाकर तिरुमल ने अपनी स्थिति संभाली और राज्य को पुनः शक्तिशाली बना लिया। अहमदनगर के सुल्तान ने बीजापुर के विरुद्ध विजयनगर के राजा तिरुमल से सहायता मांगी और कुतुबशाह तथा निजाम शाह ने बीजापुर के विरुद्ध तिरुमल से सहायता की प्रार्थना की। फिरस्ता ने लिखा है कि तिरुमल ने राज्य को स्थिर करने के बाद सुल्तानों को यथाशक्ति सहायता दी[1]। कहने का तात्पर्य यह है कि तिरुमल ने आरविदु-वंश के राज्य को पुनः स्थिर तथा दृढ़ बनाया। उसका कोई भी सहायक न था। उसने स्वयं कार्यभार को संभाला और शासन प्रारम्भ किया। हेरास का कथन है कि तिरुमल ने युद्ध में सदाशिव को मार डाला और स्वतंत्र रूप से शासन करने लगा। उसका भाई वेंकट, जो पहले चन्द्रगिरि-प्रांत का नायक था, उसका मंत्री हो गया सदाशिव के समय में भी वेंकट प्रांत का गवर्नर था[2]। सन् १५६७ ई० से तिरुमल विजयनगर राज्य का शासन करने लगा। एक लेखक ने लिखा है कि मुसलमानों के आक्रमण के भय से उसने पेनुगोंडा को अपनी राज-धानी बनाई[3]। पुर्तगाली लेखक फ्रेडरिक ने भी यही लिखा है कि तिरुमल ने

---

१ ब्रिग—भा० ३ पृ० ४१८।

२ आ० स० रि० १६११–१२

३ सोर्सेज़ आफ विजयनगर पृ० ३०२।

अपनी नई राजधानी बनाई जो पुराने नगर से आठ दिन के रास्ते पर थी। प्रायः १५० मील की दूरी पर यह नगर स्थित था। बीजापुर के सुल्तान अली आदिलशाह का डर सदा बना रहता था परन्तु राजधानी बदलने से यह भय जाता रहा। विजयनगर के समस्त किले नष्ट कर दिये गये थे। राजधानी के हट जाने से यह एक छोटा ग्राम हो गया। एक लेख में उल्लेख मिलता है कि राजधानी के परिवर्तन से विजयनगर में भग्नावेश रह गए थे[1]।

इस उथल-पुथल के समय में विजयनगर का राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। बीजापुर ने उत्तरी भाग पर सन् १५६८ में अधिकार कर लिया[2]। गोलकुण्डा ने पूर्वी भाग (उडीसा की ओर) का थोड़ा हिस्सा जीता लिया। शेष राज्य तिरुमल के अधिकार में ही रहा। लेखों में इस बात का प्रमाण मिलता है कि तिरुमल का राज्य भाईयों में विभक्त न हुआ। वे उसके सहायक के रूप में शासन करते रहे तथा तिरुमल को आदर की दृष्टि से देखते रहे।[3] राजा के पास पैदल, घोड़े तथा हाथियों की एक सेना भी थी। कुछ प्रात के गवर्नरों ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। उसी समय तिरुमल राज्य में यात्रा के लिए निकला। कुछ विद्वानों के कथनानुसार उस समय तक सदाशिव भी जीवित था और यात्रा में राजा के संग रहा[4]। उस विजय-यात्रा में कुछ प्रात के गवर्नर भी सम्मिलित थे।

सन् १५६९ में पेनुगोंडा में राजा का राज्याभिषेक किया गया। यह स्थान राज्य के केन्द्र में था। गमराय यहाँ का नायक रह चुका था। उसके राजकवि भट्टमूर्ति ने उसके अभिषेक का वर्णन करते हुए लिखा है कि तिरुमल अपनी पत्नी के साथ सिंहासन पर बैठा था। सन् १५७१

---

१ विग–फिरिस्ता भा० ३ पृ० १३४

२ ए० इं० भा० १६ पृ० २५७.

३ एपि० इं० भा० ९ पृ० ३४१। ४ एपि० कर० भा० १२

के एक लेख में तिरुमल की पदवी 'महाराजाधिराज' उल्लिखित है'।[1] दूसरे लेख में वर्णन मिलता है कि तिरुमल पेनुगोंडा पर शासन करता था जो पूर्व काल से ही विजयनगर के अधिकार में था[2]। ये सब उल्लेख सिद्ध करते हैं कि आरविदु-वंश में सर्व प्रथम तिरुमल का ही राज्याभिषेक हुआ और इस प्रकार वास्तव में वही आरविदु-वंश का प्रथम शासक कहा जा सकता है। सिंहासन पर बैठने के बाद तिरुमल ने उड़ीसा तथा वारंगल का बहुत सा भाग जीत लिया[3]। फ्रेडरिक का कहना है कि उसने अपने राज्य में सभी विद्रोहियों को दबाया, शत्रुओं को परास्त किया तथा राज्य में शांति स्थापित की।

तिरुमल के चार पुत्र—रघुनाथ, श्रीरंग, राम तथा वेंकट थे। रघुनाथ बाल्यावस्था में ही मर गया। अतएव तिरुमल ने समस्त राज्य को तीन भागों में विभक्त किया और प्रत्येक पुत्र को उसका अधिपति बनाया[4]। लेखों में उल्लिखित बातों की पुष्टि 'वसु-चरितं' नामक ग्रन्थ से होती है। उसके लेखक का कहना है कि राजा ने श्रीरंग को अपना युवराज घोषित किया। श्रीरंग ने पिता की बहुत सहायता की और कई एक नये दुर्गों को जीता[5]। श्रीरंग ने राज्य के योग्य मंत्री नायडू के साथ बीजापुर, अहमदनगर तथा बरार की सेना को परास्त किया।

इस प्रकार शासन करते हुए तिरुमल सन् १५७२ ई० में संसार से चल बसा। उसका जीवन सदा कष्टमय रहा। उसे सुल्तानों की चढ़ाई का सदा भय बना रहा। अपने को शक्तिहीन समझकर ही तिरुमल ने पहले ही से अपनी राजधानी बदल दी थी। यह राजा बड़ा दानवीर था। और ब्राह्मणों तथा विद्वानों को इसने बहुत दान दिया[6]। तालिकोट के युद्ध के बाद तिरुमल पूर्ण रूप से साम्राज्य को सम्हाल न सका। उत्तरी

---

१ ए० कर० भा० ८। २ वही—भा० १२

३ एपि० कर० भाग १०। ४ सेवेल—वही भा० २ पृ० १८८

५ एपि० इंडि० भा० १६ पृ० ३१। ६ ए० कर० भा० ५ पृ० २७

भाग उसके हाथों से निकल गया। उसके आधीन केवल तीन ही प्रांतों के नायक थे। कहने का तात्पर्य यह है कि तिरुमल राज्य के प्राचीन वैभव को लाने में असमर्थ रहा।

श्रीरंग प्रथम

श्रीरंग अपने पिता तिरुमल के जीवन काल में युवराज घोषित किया जा चुका था। पिता की मृत्यु के पश्चात् सन् १५७२ ई० में श्रीरंग सिंहासन पर बैठा। कई लेखों में इसके लिए 'श्रीमद् राजाधिराज राजपरमेश्वर श्रीवीरप्रतापश्रीरंगरायदेवमहाराजः,' की महान् पदवी का उल्लेख पाया जाता है। श्रीरंग के शासन-प्रबन्ध हाथ में लेते ही राज्य में विद्रोह फैल गया। विद्रोही समझते थे कि श्रीरंग में शक्ति नहीं है। पश्चिमी तथा दक्षिणी भाग में विद्रोहियों की संख्या बढ़ गई। श्रीरंग ने उनको परास्त किया और उनके अतुल धन पर अधिकार कर लिया। शत्रुओं के धन का उपभोग स्वयं न कर, राजा ने प्राप्त सम्पत्ति को गरीबों में विभक्त कर देना ही समुचित समझा और वैसा ही किया।

मुसलमानी रियासतों ने श्रीरंग को बहुत कष्ट पहुँचाया। बीजापुर के अली आदिलशाह ने कनारा के शासक शंकरनायक पर आक्रमण किया। भय के कारण उस प्रातके सभी नायकों ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली और वार्षिक कर देने लगे। परन्तु इससे आदिलशाह को सन्तोष न हुआ। उसने मुस्तफा खां नामक सेनापति के साथ विजयनगर की राजधानी पेनुगोंडा पर धावा कर दिया[1]। श्रीरंग स्वयं मुकाबिला न कर सका। अतएव उसने गोलकुण्डा के सुल्तान कुतुबशाह से सहायता के लिए प्रार्थना की। कुतुबशाह ने विजयनगर की सहायता के लिए अपनी सेना भेजी। आदिलशाह हार कर बीजापुर लौट गया। सन् १५७६ ई० में बीजापुर के सुल्तान ने दुबारा पेनुगोंडा पर आक्रमण किया। इस बार युद्ध में श्रीरंग पराजित किया गया और मुसलमानी सेना ने उसे कैद कर

१ ब्रिग—फिरिस्ता भाग ३ पृ० १४१।

लिया। बीजापुर की रियासत में पेनुगोंडा का उत्तरी भाग मिला लिया गया। यह भाग उस समय से मुसलमानों के हाथ में ही रहा। विजयनगर शासक उसको वापस न ले सके। विजयनगर से असंख्य धन लेने के बाद सुल्तान ने श्रीरंग को मुक्त कर दिया। गोलकुण्डा ने भी उसका साथ छोड़ दिया। अतः श्रीरंग अत्यन्त शक्ति-हीन तथा सहायक-रहित हो गया। नायक लोगों ने भी विद्रोह खड़ा कर दिया। कुछ समय के बाद श्रीरंग ने अपनी स्थिति सँभाली। उसने विद्रोही नायकों तथा गोलकुण्डा की सम्मिलित सेना को परास्त किया। तेलुगु काव्य-ग्रन्थ 'लक्ष्मी-विलास' नरपति-विजयम्' में उपर्युक्त युद्ध का वर्णन मिलता है। हेरास का मत है कि गोलकुण्डा की सेना ने कृष्णा नदी को पार कर उदयगिरि पर चढ़ाई की। उस प्रान्त के सारे भाग पर सुल्तान का अधिकार हो गया। हिन्दू सेना ने वीरता के साथ मुसलमानों का सामना किया परन्तु असफल रहे। तेलुगु प्रान्त सदा के लिए विजयनगर राज्य से निकल गया। सन् १४५० में आदिलशाह के मरने पर, अहमदनगर में चांदबीबी की संरक्षता में इब्राहिम राज्य करने लगा। चाँदबीबी ने अपने सेनापति को विजयनगर के शंकर नायक पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। मुसलमानी सेना ने विजय प्राप्त की। शंकर उसके अधीन हो गया। इस प्रकार श्रीरंग के जीवन काल में ही मुसलमानों ने चारों तरफ से आक्रमण कर, विजयनगर राज्य के विभिन्न भागों को जीत लिया और सदा के लिए अपने राज्य में मिला लिया।

श्रीरंग अपनी शक्ति भर प्रयत्न करता रहा परन्तु मुसलमानों का सामना न कर सका। उनके बढ़ाव को रोकने की शक्ति विजयनगर शासक में न रही। उस समय तक कर्नूल जिले के समीपवर्ती देश में ही श्रीरंग का राज्य सीमित रहा। यह राजा परम वैष्णव था। इसने विष्णु मन्दिरों के लिए बहुत दाम किये। इसकी मृत्यु १५८५ ई० में हुई। श्रीरंग को कोई पुत्र न था, अतः राज्य का भार इसके भ्राता वेंकट को सौंपा गया।

श्रीवेंकटपतिदेव

श्रीरंग की मृत्यु पश्चात् राज्य का प्रबंध श्रीवेंकटपतिदेवराय के हाथ में आया। श्रीरंग के कोई पुत्र न होने के कारण समस्त मंत्रियों ने उसके भ्राता वेंकट को ही विजयनगर राज्य का शासक बनाया। लेखों में इसके लिए 'श्रीमन् महाराजाधिराज परमेश्वर श्री वीर प्रताप वेंकटपतिदेव महाराज' की उपाधि मिलती है[1]। परिवार में कोई भी व्यक्ति उसके समान योग्य न था। लेखों में उसे सम्राट्, मुसलमानों को भय देनेवाला तथा न्यायप्रिय राजा कहा गया है। फिरिस्ता ने लिखा है कि श्री वेंकट एक प्रतापी राजा था और चन्द्रगिरि नामक स्थान से विजयनगर राज्य का शासन करता था[2]। परन्तु सन् १५८७ के लेख से ज्ञात होता है कि वेंकट की राजधानी प्राचीन पेनुगोंडा ही थी[3]। दूसरे लेख से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है[4]। परन्तु सेवेल का मत है कि वेंकट पेनुगोडा को छोड़ कर चन्द्रगिरि चला आया था और उसी नगर को उसने अपनी राजधानी बनाई थी[5]।

विजयनगर के नायकों की यह धारणा थी कि "श्री वेंकट ने ही सदाशिव को मार डाला है। अतएव क्षोभ के कारण उन्होंने वेंकट का विरोध किया और वार्षिक कर देना बंद कर दिया। सर्व प्रथम मदुरा तथा जिञ्जी के नायकों ने ऐसा विरोध किया। शासक होते ही वेंकट ने नायक शासकों को दबाया और राज्य में शांति स्थापित की[6]। इस बात की पुष्टि अन्य लेखों तथा साहित्यिक

---

१ बटरवर्थ--नेलोर लेख भाग १ पृ० १६४

२ व्रिग—भाग ३ पृ० ४५६

३ एपि० कर० भाग ७

४ वही--भाग १२

५ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० १५०

६ मंगल दानपत्र; बटरवर्थ-भा० १ पृ० ४६

प्रमाणों से होती है। एक लेख में वर्णन मिलता है कि श्री वेंकट ने अपने मंत्री अनन्त के साथ नायकों को परास्त किया और मार डाला। उसने उड़ीसा पर आक्रमण करके कटक के दुर्ग को ध्वंस कर दिया[१]। 'चारु-चन्द्रोदयम्' में भी अनन्त मंत्री के साथ राजा के युद्ध में विजय का वर्णन मिलता है[२]। इस प्रकार प्रायः समस्त विरोधी लोगों का नाश हो गया। सारे नायकों ने श्री वेंकट पतिदेव की अधीनता स्वीकार कर ली और कर देने लगे। तंजौर के नायक रघुनाथ ने वेंकट की बहुत सहायता की। राजा ने भी उसकी सहायता को स्वीकार करते हुए जनता में उसकी बड़ी प्रशंसा की[३]। कई वर्षों तक यह विद्रोह अथवा गृह-युद्ध चलता रहा, परन्तु अंत में सब शांत हो गए। होनवर की रानी ने ज्यों ही विरोध किया त्यों हीं श्री वेंकट ने जलसेना भेजकर उसके किलों को नष्ट कर दिया।

नायकों को दबाकर श्रीवेंकट को अब मुसलमानों से युद्ध करना पड़ा। सर्वप्रथम श्रीवेंकट ने पेनुगोंडा से हटाकर उदयगिरि को राजधानी बनाया। यह स्थान अत्यन्त सुन्दर था। सालुव नरसिंह ने यहां एक विशाल दुर्ग तैयार कराया था। कृष्णदेवराय तथा अच्युतराय को भी यह स्थान प्रिय था और वे यहां आकर रहा करते थे। अतएव श्री वेंकट ने हितकर समझकर राजधानी को बदल दिया। इसने अपनी रानी के साथ बड़े समारोह के साथ नये नगर में प्रवेश किया। उस जलूस में हाथियों, घोड़ों तथा मनुष्यों का अपूर्व जमघट था। राजा वहां स्वर्ण-भवन में रहने लगा। सब सामन्त तथा नायक वहां आते थे और सब सम्राट् को भेंट देते थे।

श्री वेंकट ने बहमनी रियासत—गोलकुण्डा—पर चढ़ाई करदी। इसका

---

१ मद्रास इपि० रिपो० १८१५-१६

२ कृष्णस्वामी—सोरसेज़ पृ० २४१

३ वही—— पृ० २८५

कारण यह था कि कुतुबशाह ने राजा के पेनुगोंडा छोड़ने के बाद नगर पर आक्रमण कर दिया था। चन्द्रगिरि में स्थिर होने के बाद ही विजयनगर-शासक ने चढ़ाई की[1]। इस युद्ध में वेंकट के मंत्री गोबिन्दराज तथा सेनापति जगदेवराय ने भाग लिया था। राजकुमार रघुनाथ ने भी राजा की यथाशक्ति सहायता की। बर्षा ऋतु के कारण गोलकुण्डा का शासक हार गया[2]। बरसात के कारण कृष्णा में बाढ़ आ गई अतः मुसलमानों को रण-कौशल दिखाने का कोई मौका न मिल सका। श्री वेंकट के कई लेखों में इस विजय का उल्लेख पाया जाता है[3]। इस विजय के कारण उदयगिरि में श्री वेंकट का शासन दृढ़ रूप से हो गया। बीजापुर के सुल्तान ने पुनः कर्नाट (उत्तरी भाग) प्रांत पर आक्रमण किया। वेंकट ने पुर्तगाली सेनापति की अधीनता में एक जनसेना बीजापुर के सुल्तान पर चढ़ाई के लिए भेजी। मुसलमान परास्त होकर भाग गए और उनका सारा सामान पकड़ लिया गया। उस प्रात (पश्चिमी कनारा) के सभी नायकों ने वेंकट की अधीनता स्वीकार करली। उधर स्थलपर चढ़ाई करने वाली सेना के अधिकारी (सेनापति) को वेंकट ने घूस देकर वापस लौटा दिया। इस प्रकार १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही श्री वेंकट मुसलमानी आक्रमण से मुक्त हो गया। इसका एक मुख्य कारण यह भी था कि मुग़ल सम्राट अकबर के और अहमद नगर की चांद बीबी के बीच युद्ध होरहा था, अतएव बहमनी की सब रियासतें अकबर के डर से त्रस्त थीं। अकबर ने विजय-नगर शासक के पास एक राजदूत भेजकर शुभकामना प्रकट की। श्री वेंकट ने उस राजदूत का स्वागत किया। सम्राट को बहुत सा धन भेंट रूप में दिया और उसका मार्ग-व्यय देकर वापस लौटा दिया। ऐसी परिस्थिति

---

१ एपि० कर० भाग १२। फिरिस्ता भाग ३ पृ० ४५४

२ सोर्सेज़ पृ० २८५

३ एपि० इं० भा० १६ पृ० २६७। एपि० कर० भा० ७.

में बहमनी के सुल्तानों का, विजयनगर के राजा से युद्ध करने का, साहस जाता रहा।

श्री वेंकटपति देवराय का राज्य सुदूर दक्षिण से लेकर उड़ीसा अर्थात् कारोमण्डल के किनारे तक फैला हुआ था। सुशासन के लिए राज्य को कई भागों में विभक्त किया गया था। दक्षिण में चोल और पांड्य को मिलाकर एक प्रांत बनाया गया था। तामिल देश का अधिपति कृष्णप्पा नायक था। वह एक योग्य, गुणवान् तथा शिवभक्त व्यक्ति था। वेंकट की आज्ञानुसार त्रिचनापल्ली तथा कांची के विद्रोह को दबाया था। उसने विष्णु तथा शिव के विशाल मन्दिर बनवाए [1]। उसके पुत्र वीरप्पा ने भी अत्यन्त सुन्दर एक विशाल मन्दिर तैयार कराया जिसकी समता नहीं की जा सकती। उसके बनवाए हुए महल भी कला के एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं। वेंकट का भाई राम उत्तरी-पश्चिमी भाग का नायक नियुक्त किया गया था। उसकी मृत्यु से बाद वेंकटैय्या नामक व्यक्ति कनारी प्रात का शासक बनाया गया।

श्रीवेंकटपतिदेव के पास अनेक योग्य मन्त्री थे जिनका वर्णन 'चन्द्रभान-चरित' तथा 'चारु-चन्द्रोदयम्' में मिलता है [2]। उपराज एक योग्य प्रधान सेनापति था [3]। वह परम वैष्णव था। वैष्णव साधु ताताचार्य का प्रभाव उस पर बहुत पड़ा। उसने वैष्णव भक्तों के लिए अनेक ग्राम दान में दिए। नई राजधानी उदयगिरि में वेंकटेश्वर का सुन्दर मन्दिर बनवाया। प्रत्येक वर्ष वह दुर्गा पूजा के समय उत्सव मनाया करता था। और भगवान् की रथयात्रा निकाला करता था। राजा सन् १६१४ ई० तक शासक करता रहा। उसकी मृत्यु हो जाने पर वह सुगन्धित द्रव्यों (घृत, चन्दन आदि) के साथ जलाया गया। उसी समय उसकी रानियाँ

---

१ ए० ई० भा० ६ पृ० ३४१।

२ सोर्सेज़ पृ० २४१, २२७।

३ आ० स० रि० १६११-१२ पृ० १८५।

भी समस्त मूल्यवान् आभूषण तथा वस्त्र पहन कर ऊंची वेदी पर से चिता में कूद गईं और आग में जल कर सती हो गईं [1]।

श्री वेंकटपति देवराय का सम्बन्ध पुर्तगालिकों से विशेष रूप से था। इतना गहरा सम्बन्ध इससे अन्य किसी विजयनगर-शासका का न था।

विदेशियों से सम्बन्ध

सन् १६०० ई० के पश्चात् पुर्तगाली विजयनगर की राजधानी चन्द्रगिरि में रहने लगे। वे सदा राजा को कर दिया करते थे और माल पर चुंगी भी देने में कभी आनाकानी नहीं करते थे पुर्तगालियों के अधिकारी भी चन्द्रगिरि में निवास करने लगे। विदेशियों से मित्रता बढ़ाने के लिए गोवा में वेंकट ने एक राजदूत भेजा। पुर्तगाली विजयनगर दरबार से सम्बन्ध बढ़ाना चाहते थे। क्योंकि उनको मुगल सम्राट् अकबर से भय बना रहता था। श्री वेंकट के दरबार में दुभाषिये भी थे जो पुर्तगालियों के पत्र-व्यवहार को राजा को समझाया करते थे। कुछ समय के बाद धार्मिक मतभेद के कारण हिन्दुओं और पुर्तगालियों में झगड़ा हो गया। राजधानी में युद्ध प्रारम्भ हो गया। हिन्दुओं ने पुर्तगाली सेनापति को मार डाला। अतएव पुर्तगालियों ने नगर में आग लगा दी। वेंकट बहुत अप्रसन्न हो गया। पुर्तगालियों ने क्षमा प्रार्थना की और भेंट देकर राजा को शात किया। पुर्तगाल के बादशाह ने भी विजयनगर शासक से प्रार्थना की कि वह गोवा के गवर्नर की सहायता करे तथा पुर्तगालियों पर दया रक्खे। सन् १६१३ ई. में कर न देने के कारण विजयनगर तथा पुर्तगालियों में पुनः घोर संग्राम आरम्भ हो गया। परास्त होने पर पुर्तगाली सन्धि की प्रार्थना करने लगे। राजा की आज्ञा की वजह से सभी विदेशी कैद कर लिए गये। वेंकट की मृत्यु के पश्चात् ही पुर्तगालियों से सन्धि हो गई। उस संधि में यह शर्त (नियम) रक्खा गया कि पुर्तगाली धर्म का प्रचार नगर में न करेंगे। इस प्रकार पुर्तगालियों से झगड़ा समाप्त हुआ।

---

1 हेरास आ० डा० पृ० ४०८।

राजा में धार्मिक सहिष्णुता थी। पादरी लोग (जेसुइट्) लोग इसके दरबार में रहा करते थे। राजधानी में एक मिशन स्थापित करने के लिए

धार्मिक सहिष्णुता

उन्होंने आज्ञा मागी। उदार हृदय राजा वेंकट ने चन्द्रगिरि में चर्च तैयार करने का व्यय देना स्वीकार कर लिया। उसने वादा किया कि जितने ईसाई-पादरी राजधानी में रहेगें उसका भोजन खर्च भी राजकीय कोष से मिला करेगा। राजा ने गिरजाघर बनाने के लिए दो गांव दिये। वेंकट जेसुइट्स लोगों का मित्र बन गया। राजधानी में पादरियों के व्याख्यान 'ईश्वर की एकता' पर हुआ करता था। महल के समीप के एक भवन में ईसाई रहा करते थे। परन्तु सहिष्णुता का यह व्यवहार बहुत समय तक न रह सका। राजा का ईसाई मत की ओर विशेष प्रेम देख कर हिन्दू जलने लगे। उन्होंने प्रयत्न किया कि राजा अपने वैष्णव धर्म के प्रभाव में रहे। ईसाई लोग भी अपने मत का प्रचार जोरों से कर रहे थे इस बात की शिकायत राजा के कानों तक पहुँचने लगी। आखिरकार वेंकट पर अपने धर्मावलम्बियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। एक ब्राह्मण के कथनानुसार वेंकट ने ईसाईयों से प्रेम करना कम कर दिया। थोड़े समय में धार्मिक वादाविवाद के बाद झगड़े होने लगे। इस झगड़ों को मिटाने के लिए राजा ने पादरी लोगों को राजधानी से हटाना उचित समझा। अतः पादरी लोगों को चन्द्रगिरि छोड़ना पड़ा।

श्री वेंकट पतिदेव को चित्रकला से बहुत प्रेम था। उसका विश्वास था कि भारतीय चित्रकला यूरोप की चित्रकला से अधिक सुन्दर तथा

चरित्र

महत्त्व-पूर्ण है। अतः चन्द्रगिरि में यूरोप के चित्रकार बुलाये गये थे। वे राजधानी में रहा करते थे और राजा को चित्र बनाकर दिखलाया करते थे। राजा ने भी चित्र तैयार कराने के लिए बहुत रुपयों का रंग खरीदा था। वेंकट का अंतिम जीवन सुख-पूर्वक व्यतीत न हुआ। उसकी कई पत्नियाँ थी जिनकी आज्ञा प्रधान मानी जाती थी राजा की आज्ञा महत्त्व हीन थी। राजाको कोई पुत्र न

था अतएव उसकी रानी ब्राह्मण के एक नवजात शिशु को अपना पुत्र घोषित करना चाहती थी। परन्तु तिरुमल तथा श्रीरग गद्दी का मालिक अपने को समझते थे।

श्रीरंग सुन्दर तथा योग्य होने के कारण युवराज नियुक्त किया गया[1]। सन् १६१४ में वेंकट की मृत्यु के पश्चात् रंग द्वितीय नियमतः विजयनगर का शासक बनाया गया और उसको राजसी वस्त्र और आभूषण पहनाये गए।

श्रीवेंकट एक शक्तिशाली तथा ईश्वर-भक्त शासक था[2]। उसकी कीर्ति चारों ओर व्याप्त थी। वह न्याय के साथ २६ वर्ष तक शासन करता रहा[3]। उसके राज्य में प्रजा सुखी थी। उसकी विदेशी नीति से राज्य को बहुत लाभ हुआ। पुर्तगाली और डच लोगों के व्यापारिक सम्बन्ध से राज्य में सम्पत्ति की वृद्धि हुई। राजा विद्वान् तथा दानी था। कुछ लोगों ने उसके ऊपर सदाशिव के मारने का दोष अवश्य लगाया है परन्तु इसमें सत्यता कम मालूम पड़ती है। इसके अतिरिक्त श्रीवेंकट एक आदर्श शासक था।

श्रीरंग द्वितीय के शासक बनने के कारण सारी प्रजा उससे अप्रसन्न थी। इस कारण राज्य में अशांति तथा गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया।

श्रीरंग द्वितीय

बहमनी रियासतों ने राज्य के उत्तरी भाग पर अधिकार कर लिया। दक्षिण में नायकों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। अतः विजयनगर राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और आरविदु-वंश के अंत के साथ ही साथ विजयनगर साम्राज्य का भी सदा के लिए लोप हो गया। इस प्रकार इस साम्राज्य की ऐतिहासिक वार्ता यहीं समाप्त हो जाती है।

मैसूर-प्रांत के जेगुवी के नायक जग्ग ने राजा के समस्त परिवार को

---

१ सोर्लेज़ पृ० २१३। २ एपि० इं० भा० ३ पृ० २५२

३ एपि० इं० भा० १६ पृ० ३१६

मार डाला। रघुनाथ नायक ने राजा की सहायता की और श्रीरंग को किसी प्रकार बचा लिया। श्रीरंग द्वितीय थोड़े समय तक चन्द्रगिरि पर शासन करता रहा। बीजापुर की तरफ से आक्रमण कर शाह जी (छत्रपति शिवाजी के पिता) ने जिञ्जी के दुर्ग को जीत लिया। गोलकुण्डा की ओर से मीर जुमला ने पूर्वी भाग पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार कृष्णा तथा पलार नदी के मध्य भाग में युद्ध होने लगा। मीरजुमला उस भाग पर स्वयं शासन करने लगा। अतः राजमहेन्द्री के दक्षिण तथा मंगलोर तक का प्रांत मुसलमानों के हाथ में चला गया। श्रीरंग ने कोशिश कि सब नायकों को मिलाकर यवनों को परास्त किया जाय, परन्तु किसी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया और इस प्रकार उसका प्रयास निष्फल रहा। गोलकुण्डा तथा बीजापुर की सेना ने वेलोर में श्रीरंग को घेर लिया। अपनी जान बचाने के लिए श्रीरंग मैसूर प्रांत के इकेरी के शासक शिवप्पा नायक के यहाँ भाग गया[1]। राज्य के अधिक भाग पर तेजी के साथ शाहजी का अधिकार हो गया। उस समय इकेरी तथा मदुरा में दो प्रधान नायक थे। दुर्भाग्यवश शक्ति बढ़ाने की इच्छा से दोनों आपस में लड़ते रहे। उनमें स्वार्थ तथा ईर्ष्या की मात्रा अधिक बढ़ गई थी। वे समझते थे कि एक दूसरे को दबा कर, पुनः शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित कर सकता है। शत्रुओं के आक्रमण का ध्यान उन्हें न था। विजयनगर की दुर्दशा पर उन्हें तनिक भी दया न आई। विजयनगर के पराजित शासक की सहायता की भावना उनमें न थी। परन्तु उनकी सम्राट् बनने की इच्छा जाती रही और विजयनगर के साथ ही उनका भी नाम संसार से मिट गया।

विजयनगर-साम्राज्य का अन्त

यदि इन सब बातों पर ध्यान दिया जाय तो यह ज्ञात होता है कि

---

१ इंगलिश फैक्टरी इन इंडिया पृ० २४.

विजयनगर राज्य के नष्ट होने का मुख्य कारण शासकों की निर्बलता ही थी।

नाश के कारण विजयनगर के अंतिम नरेशों में राज्य-कार्य को चलाने की निपुणता न थी। नायक स्वतंत्र होने लगे थे। मैसूर प्रांत का नायक स्वतंत्र हो गया। मदुरा तथा तंजोर के सर्व-प्रथम नायकों ने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया। इस प्रकार नायकों का महत्त्व बढ़ गया और विजयनगर राज्य के केन्द्रीय शासक का प्रभाव मिटने लगा। मुसलमानों का आक्रमण बढ़ता ही गया। शाहजी तथा मीर जुमला ने अन्त में राजधानी को भी अपने अधिकार में कर लिया। शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति के सामने सबको झुकना पड़ा। इस प्रकार विजयनगर राज्य का अंत हो गया और उस के स्थान पर मराठा-राज्य की स्थापना हुई।

आरविदु–वंश–वृक्ष

रामराय
|
तिरुमल
|
श्रीरंग प्रथम
|
श्रीवेंकटपतिदेव
|
श्रीरंग द्वितीय
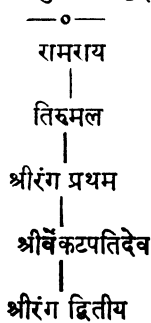
: ६ :

विजयनगर की शासन-प्रणाली

विजयनगर-सम्राज्य की शासन-प्रणाली आदर्श थी । प्राचीन भारत में प्रचलित राजकीय सिद्धान्तों को लेकर विजयनगर के राजाओं ने शासन किया । उस समय प्रजातंत्र प्रणाली का नाम भी न था । अतएव समयानुकूल हरिहर तथा बुक्क ने अपना साम्राज्य स्थापित कर भारतीय आदर्श को ध्यान में रख कर विजयनगर में शासन प्रारम्भ किया । राजा ही समय का बनाने वाला होता है[1] अतएव विजयनगर में भी शासक के अनुकूल शासन-प्रणाली प्रचलित थी । शास्त्रकारों ने इसी बात को विभिन्न शब्दों में सब के सामने उपस्थित किया है । राजा ही समाज की प्रगति को बदलने वाला होता है । उसी की आज्ञानुसार रीति-रिवाज प्रचलित किये जाते हैं । वह युगका प्रवर्तक होता है, अतएव वह पाप तथा पुण्य का भागी होता है । महाभारत में वर्णित—

राजा माता पिता चैव, राजा कुलवतां कुलम् ।
राजा सत्यं च धर्मं च राजा हितकरो नृणाम् ॥ (शां० पर्व अ० ६९)

राजा के गुण विजयनगर राजाओं के शासन-युग में सब को सत्य प्रतीत हुए । पराशर-संहिता की टीका में माधवाचार्य ने आचारखण्ड में इसी मत की पुष्टि की है । संगम-वंश का शासन इसी नीति को लेकर प्रारम्भ किया गया और साम्राज्य की स्थापना हुई । राजनाथ ने सालुव नरसिंह के विषय में लिखा है कि—

"वर्णाश्रमाणां अवनक्रमेण, धर्मे स्थिरीकृत्य पदैश्चतुर्भिः ।
कलिं पुनर्यैः कृतमद्भिः उर्व्यां, कालस्य कर्ता नृप इत्यदर्शि" ॥

---

1 राजा कालस्य कारणम् ।

कृष्णदेवराय का शासन धर्म की रक्षा के लिए प्रसिद्ध था। प्रजा तथा वर्णाश्रम-धर्म की रक्षा तथा धर्म का पालन करना उसके राज्य की विशेषता थी[1]। कहने का तात्पर्य यह है कि विजयनगर की शासन-प्रणाली प्राचीन भारतीय-प्रणाली का अनुसरण कर कार्यान्वित की गई थी।

शुक्राचार्य का कहना है कि शासक प्रजा के सेवक के रूप में पैदा किये गए थे। शासन के व्यय के लिए कर ग्रहण करना और प्रजा का पालन उनका मुख्य कार्य था[2]। राजा में प्रजा की भक्ति इस कारण उत्पन्न होती है कि वह शक्तिशाली तथा धर्म-पालक होता है। राजा के वंश में उत्पत्ति ही के कारण वह प्रजा का हृदय सम्राट् नहीं हो सकता। भारत में यूरोप की भांति 'ईश्वर-प्रदत्त-शासनाधिकार' की महत्ता कभी न थी। शुक्र के अनुसार राजा और प्रजा का संबंध पारस्परिक धर्म-पालन का था। शुक्र के समान ही पराशर-स्मृति की टीका में माधवाचार्य ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं।

क्षत्रियो हि प्रजां रक्षन् शस्त्रपाणिः प्रदण्डवान्।
निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्॥
पुष्पं पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारमे न यथाऽङ्गारकारकः॥

(आचारखण्ड अ० 1 पृ० 60)

इसी विचार को लेकर माधवाचार्य ने विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना में सहायता की। कृष्णदेवराय ने स्वयं अपनी पुस्तक आमुक्तमाल्यम् (श्लोक २८५) में इसी बात को दुहराया है कि प्रजापति ने राजा को अनेक कार्यों के पालन करने के लिए संसार में उत्पन्न किया है। प्रजा के कष्टों का निवारण तथा शत्रुओं से उसकी रक्षा का कार्य

---

1 ज० इ० हिस्ट्री भा० 4 पृ० 74

2 स्वभागभृत्या दास्यत्वे, प्रजानां च नृपः कृतः। शुक्रनीतिः १।१८७
प्रजानां पालनं कार्यं, नीतिपूर्वं नृपेण हि। वही १।३१३

प्रधान बतलाया गया है। शास्त्रों में शासक (१) प्रजा का रक्षक (२) दण्ड-नीति को धारण करने वाला (३) नीति का पालक (४) न्यायपूर्ण दण्ड विधान करने वाला (५) शत्रु नाशक और (६) कर का ग्रहण कर्त्ता बतलाया गया है [1]। इसके अतिरिक्त उसे स्वधर्म का भी पालन करना चाहिए। कृष्णदेवराय के मतानुसार यदि राजा को उपर्युक्त बातों के पालन करने में कठिनाई हो तो वह भगवान् विष्णु की शरण में जाकर धर्म के अनुकूल उसका निवारण करे। राजा को स्वेच्छाचारी न बनना चाहिए। प्राचीन काल में इन समस्त नियमों के अनुसार शासन का भार राजा तथा उसके सहायक मन्त्रियों में विभाजित किया गया था। शुक्र ने शासक के सात अंगों वर्णन किया हैं, जिनके सहयोग से ही आदर्श रीति से शासन किया जा सकता है। इन अंगों के नाम निम्नलिखित है- [2] (१) राजा (२) मंत्री (३) मित्र (४) कोष (५) राज्य-विस्तार (६) दुर्ग तथा (७) सेना।

विजयनगर के सम्राटों ने प्राचीन प्रणाली के अनुसार अपना शासन प्रबंध प्रारम्भ किया। मध्ययुग में मुसलमानों के आक्रमण को रोककर और यदा-कदा स्वतंत्र होने की घोषणा करने वाले नायकों को परास्त करते हुए, इन राजाओं ने प्रजा को प्राचीन-भारतीय-सभ्यता का पाठ पढ़ाया। विजयनगर के शासकों ने राज्य-प्रबंध को केन्द्रीभूत रखना समुचित समझा अतएव साम्राज्य के प्रबंध को निम्न प्रकार चार भागों में विभक्त कियाः—

(१) केन्द्रीय शासन
(२) प्रांतीय शासन
(३) अधीनस्थ-राज्य-शासन
(४) ग्राम-प्रबंध

---

१ गौतम—११।२० ; शुक्र-नीति १।२।४४१

२ स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च।
सप्तांगमुच्यते राज्यं, तत्र मूर्धा नृपः स्मृतः। शुक्र नीति १।६१

केन्द्रीय-शासन को कार्य की अधिकता से अनेक योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता थी। अतएव मंत्रीगण तथा महाप्रधान और अन्यकर्मचारी केन्द्र का कार्य करते थे। प्रांतों की विशालता के कारण उनको राज्य का नाम दिया गया था। साम्राज्य के अन्तर्गत राज्य का अर्थ प्रांतों से ही था। आधीनस्थ राजा गृह कार्यों में स्वतन्त्र थे, परन्तु वाह्य-नीति साम्राज्य से सम्बद्ध होती थी। प्रांत से छोटा 'मण्डल' होता था। इससे छोटा भाग 'नाडू' अथवा ग्राम के नाम से उल्लिखित है। ग्राम का प्रबंध प्राचीन समय की तरह स्वतंत्र रूप से चलता था। विजयनगर-राजाओं ने इसमें हस्तक्षेप नहीं किया। परन्तु उन्होंने ग्रामों के शासन में सुधार किये जिससे ग्रामों की स्थिति पहले से अच्छी हो गई।

केन्द्रीय-शासन

विजयनगर की शासन-प्रणाली का पता राजाओं के लेख तथा विदेशियों के द्वारा उल्लिखित विवरणों से लगता है। न्यूनिज का कथन है कि राजा के पास 'मत्री-मण्डल' था जिसकी सहायता से वह शासन करता था। सेवेल ने उसके सभाभवन तथा मंत्रीगण का उल्लेख किया है[1]। फिरिस्ता के कथनानुसार राजा अपने प्रतिष्ठित राजकर्मचारियों की सहायता से शासन-प्रबंध करता था[2]। शास्त्रों में वर्णित परिपाटी के अनुसार ही मंत्रियों की नियुक्ति की जाती थी। बिना मंत्री के शासन सुचारु रूप से नहीं चल सकता था। अच्छे मंत्री का प्रभाव शासक पर पर्याप्त मात्रा में पड़ता है। शुक्र का कथन है कार्य-कुशलता, आचरण तथा गुण ही मंत्रियों की नियुक्ति में विचारणीय प्रश्न होते हैं। वंश-परम्परा पर विशेष ध्यान न देना चाहिए।[3] कृष्णदेवराय ने भी 'आमुक्त-

---

१ ए फारगाटेन इम्पायर पृ० १२०।

२ ब्रिग—दि राइज़ आफ मुसलिम्स भा० २ पृ० ४३०।

३ मन्त्री तु नीतिकुशलः, पंडितो धर्मतत्त्ववित्।
लोकशास्त्रनयज्ञस्तु, प्राड्विवाकः स्मृतः सदा॥
शुक्रनीति २। ८४।

माल्यम्' में वर्णन किया है कि असत्य भाषण करने वाला, धर्म से न डरने वाला तथा प्रजा को कष्ट देने वाला व्यक्ति मंत्री न बनाया जाय। इस प्रकार मंत्रियों की सहायता से विजयनगर राजाओं ने शासन किया।

मन्त्री किसी विशेष जाति का व्यक्ति नहीं होता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य-वंश का व्यक्ति मन्त्री-पद पर नियुक्त किया जाता था। प्रधान-मन्त्री से मन्त्रणा करके राजा अन्य अधिकारियों की नियुक्ति करता था। जो व्यक्ति सुचारु रूप से शासन करता था उसके परिवार के अन्य व्यक्तियों को भी राज्य के किसी पद पर नियुक्त किया जाता था। एक लेख में वंशपरम्परागतमन्त्रीपद का वर्णन मिलता है। मन्त्री के मासिक वेतन ग्रहण करने का उल्लेख नहीं पाया जाता। उनको अधिकतर भूमि दी जाती थी। सन् १४१६ में रामचन्द्र को वेतन के बदले ग्राम दिया गया था। शासक के कितने मन्त्री थे, यह कहना कठिन है। इनकी संख्या निश्चित न थी। हरिहर के कई एक मन्त्री थे। वे योग्य व्यक्ति तथा कार्य कुशल थे। इनमे सायण, इरुगप्प, दण्डनाथ तथा मुदप्प मुख्य थे। इन सब में सायणाचार्य तथा उनके भ्राता माधवाचार्य विजयनगर साम्राज्य के सबसे प्रसिद्ध मन्त्री हुए हैं। न्यूनिज़ का कथन है कि देवराय द्वितीय के अनेक योग्य मन्त्री थे। कृष्णदेवराय के अप्पाजी, कोण्डमारु तथा व्यासराय नामक प्रसिद्ध मन्त्री थे। इन मन्त्रियों में से प्रधान को महाप्रधान या प्रधान-मन्त्री कहा जाता था। सायणाचार्य ने 'सुभाषित-सुधानिधि' की पुष्पिका में कम्पण के महाप्रधान होने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार 'माधवीया धातुवृत्ति' की पुष्पिका में सायण को महामंत्री कहा गया है। यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि प्रधान-मन्त्री, महाप्रधान अथवा महामन्त्री के कौन कौन से विशिष्ट कार्य थे। परन्तु यह सत्य है कि मन्त्रियों में प्रधान का विशेष स्थान अवश्य था। बुक्कराय के राज्यकाल में कई महाप्रधानों के नाम मिलते हैं जिनके पदग्रहण की अवधि प्रायः निश्चित थी और यह पांच वर्ष की प्रतीत होती है। लेखों में बुक्क के महाप्रधानों के नाम निम्नलिखित हैं—

(१) महाप्रधान —	धन्नायक	श० सं० १२८२ से १२८७ तक[1]
(२) ,,	वसेय	,, ,, १२८५ ,, १२६० ,,[2]
(३) ,,	गोयरस	,, ,, १२८८ ,, १२६३ ,,[3]

आरविदु-वंश के कुमार तिरुमलराय सदाशिव के महाप्रधान थे। उस समय महाप्रधान को एक सहायक (Personal Assistant) भी मिलता था जो उभय-प्रधान के नाम से विख्यात था[4]। उस काल में केन्द्रीय शासन में कार्य की अधिकता के कारण मंत्रियों की संख्या भी अधिक रहती थी। साम्राज्य के प्रत्येक विभाग केन्द्रीभूत थे। विजयनगर-सम्राटों ने शासन के सुप्रबंध के लिए, प्रजा-हित के लिए, तत्कालीन मुसलमान राजाओं के आक्रमण को रोकने के लिए और आन्तरिक विभिन्न झगड़ों तथा कठिनाइयों को दूर करने के लिए शासन को केन्द्रीभूत रखना उचित समझा। प्रथम तो स्वयं संगम के वंशज महामण्डलेश्वर कहे जाते थे परन्तु कुछ समय के बाद उन्होंने 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। ये शासक मंत्रियों तथा अन्य राजकर्मचारियों की सहायता से राज्य-प्रबंध करते रहे। केन्द्र के अन्य मंत्रियों का विशिष्ट कार्य ज्ञात नहीं है, परन्तु अन्य कर्मचारी पृथक् पृथक् कार्य करते रहे।

इस प्रकार राज्य-प्रबंध के लिए एक राज-सभा थी, जिसका प्रधान स्वयं राजा हुआ करता था और उसकी सहायता के लिए (१) प्रधान-

मन्त्रिमण्डल

मंत्री (२) प्रांतीय सूबेदार (३) सेनापति (४) राजगुरु तथा (५) कविगण नियुक्त किये जाते थे। प्रत्येक व्यक्ति की सहायता के लिए पृथक्-पृथक् छोटे कर्मचारी नियुक्त थे। इस राज-सभा के सदस्यो का चुनाव शासक पर ही निर्भर रहता था।

---

१ इपि० कलेक्शन १६०१ नं० १३२

२ इपि० करना० भा० ४ पृ० ११३

३ एपि० कले० १६०१ नं० १२६,

४ आर्क० सर्वे० रि० १६०८–६ पृ० १८४

इनके चुनाव में प्रजा का कोई हाथ न था। स्थानीय नगर अथवा राजधानी के प्रबंध के लिए पुलिस का एक उच्च अधिकारी होता था जो राजसभा का सदस्य माना जाता था[१]। प्रधान-मंत्री का कार्य सबसे महत्त्वपूर्ण था। उसके कार्यालय को 'रायस' कहा जाता था। कार्यालय का मंत्री एक विद्वान् पुरुष होता था। लेखों में वेंकट को प्रसिद्ध विद्वान्, यजुर्वेद का ज्ञाता तथा आपस्तम्ब सूत्र का विशेषज्ञ बतलाया गया है[२]। कृष्णस्वामी के मतानुसार रायस (कार्यालय) का पत्र-व्यवहार उसी मंत्री के ऊपर छोड़ दिया जाता था[३]। वही व्यक्ति कभी-कभी साधारण कार्यालय (General secretariat) का प्रधान अथवा 'सकलाधिपति' भी कहलाता था। उस कार्यालय में अनेक 'कर्णिक' या लेखक भी वर्तमान थे[४]। कुछ व्यक्ति (कार्यकर्त्ता) सर्व साधारण प्रबंध व्यापार तथा कुछ राजकीय शासन को खुदवाने के कार्य में व्यस्त रहते थे[५]। इसके अतिरिक्त कोषाध्यक्ष राजमहल के आय-व्यय लिखने के लिए नियुक्त किये गए थे। उसी विभाग में भाट, पान लाने वाला, पंचागकर्त्ता, खुदाई करने वाला, लेख-निर्माता तथा शासनाचार्य भी महामन्त्री के अधीन होकर अपना कार्य सम्पादन करते रहे[६]।

राजगुरु का स्थान विजयनगर के इतिहास में महत्वपूर्ण समझा जाता था। वैदिक काल के अनुसार राजगुरु को पुरोहित कहा जा सकता है। प्राचीन काल का पुरोहित केवल धार्मिक-कार्य में लगा रहता था, परन्तु विजयनगर राज्य में राजगुरु महाप्रधान का भी कार्य करता था। क्रियाशक्ति तथा विद्यातीर्थ स्वामी का नाम महाप्रधान के रूप में मिलता है।

---

१ डा० ईश्वरीप्रसाद—मिडिवल इंडिया पृ० ४३६

२ एपि० इंडि० भा० ३ पृ० १५१

३ सोर्सेज आफ विजयनगर हिस्ट्री पृ० २३०

४ मैसूर आर्क० रिपो० १६२० पृ० ३७

५ एपि० कर० भा० ५ पृ० ११ ६ एपि० कर० भा० ८ पृ० १२६

उनके कथनानुसार शासन का प्रबंध किया जाता था तथा राज्य की नीति स्थिर की जाती थी[1]। राजगुरु को दान सम्बन्धी कार्य सौंपा गया था। संगम द्वितीय के मार्गदर्शक उसके राजगुरु ही थे[2]। राजगुरु के उच्च स्थान को तत्कालीन बड़े-बड़े विद्वानों ने सुशोभित किया है। नरसिंहाचार्य देवराय द्वितीय के तथा रंगनाथ दीक्षित कृष्णदेव राय के राजगुरु थे। रामराय के राजगुरु तातार्चार्य थे जो रामानुज के वंशज थे और सकल-शास्त्र के ज्ञाता थे। राज-सभा के अन्य सदस्य अपने विभाग के अधिष्ठाता थे। उनका वर्णन उनके विभाग के साथ पृथक्-पृथक् किया जायेगा।

न्याय विभाग

राजशासन में दण्ड की बड़ी प्रधानता होती है। संसार के अच्छे कार्य दण्ड ही के कारण चलते हैं। शास्त्रकारों का कहना है कि दण्ड ही नियम है[3]। दण्ड के द्वारा ही राज्य में सुख व शांति है। मनु ने भी लिखा है कि:—

दण्डस्य हि भयात् सर्वे जगद्भोगाय कल्पते। (मनु ७।२२)

अतएव दण्ड निर्णायक नियुक्त करते समय विद्वान् व शास्त्रज्ञ व्यक्ति का ही चुनाव करना चाहिए। परन्तु शुक्र प्राचीन प्रणाली से भिन्न अपना मत व्यक्त करते हैं। उनके कथनानुसार सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनैतिक विषय को जानने वाले व्यक्ति को न्यायसभा का प्रधान बनाना चाहिए[4]। मध्ययुग के नीतिकार शुक्र के कथनानुसार ही विजयनगर शासकों ने न्याय का कार्य सेनापति को सौंप दिया। कृष्णदेवराय ने 'आमुक्तमाल्यम्' में इसी विचार का समर्थन किया है। उनका कहना है कि दण्ड से ही समाज का सुधार होता है। अतएव प्रकृति, गुण व दोष तथा काल पर

---

१ **गोपीनाथराव—मधुराविजयम् भूमिका** पृ० १७

२ **एपि० इंडि०** ३ पृ० ३३

३ **शु०नी०** ४।२।६२; **गौतम** ११।२८; **अर्थ० शा०** १।४।६

४ **शु० नी०** ४।२।८३

विचार करने वाले व्यक्ति को न्याय का कार्य करना चाहिए।[१] ईरानी यात्री अब्दुररज़्ज़ाक का कहना है कि विजयनगर में राजा ने सेनापति को दण्ड-नायक का पद दे रक्खा था। सब प्रजा को अधिकार था कि अपने मुकदमे की अपील सम्राट् तक करें। कृष्णदेवराय ने तो यहां तक निश्चय किया था कि अभियुक्त अपने मुकदमे की राजा के यहाँ तीन बार तक अपील कर सकता है।[२]

राजा स्वयं प्रधान न्यायाधीश की तरह कार्य करता था। 'रामराय-चरित' में वर्णन मिलता है कि प्रत्येक व्यक्ति को राजा के पास अपील करने का अधिकार था। राजा स्वयं या विद्वान् ब्राह्मणों की सहायता से न्याय किया करता था[३]। दीवानी तथा फौजदारी के लिए पृथक्-पृथक् न्यायालय वर्तमान थे। दीवानी के मुकदमे का प्राचीन शास्त्रों के अनुकूल निर्णय किया जाता था। भूमि के मामलों को राजा के द्वारा नियुक्त राजकर्मचारी स्थानीय पंचायत की सहायता से तय करता था[४]। शासक जब स्वयं भ्रमण में जाते थे तो उन झगड़ों का निपटारा किया करते थे। भूमि सम्बन्धी निर्णय सदा केन्द्रीय सरकार से नियुक्त व्यक्ति के सामने किया जाता था।

फौजदारी के मामले में दोषी को कठोर दण्ड दिया जाता था। दण्ड तीन प्रकार के होते थे। (१) जुर्माना, (२) दिव्य (Ordeal) तथा (३) मृत्यु[५]। चोरी, व्यभिचार तथा मन्दिरों के आभूषण के चुराने में जुर्माना किया जाता था। सन् १४४३ ई० में देवराय द्वितीय के शासन काल में फौजदारी के मामले में प्रायश्चित करने का दण्ड दिया गया था। एक लेख में सेठीकार को जुर्माना किया गया था कि वे अमुक संख्या में द्रव्य

---

१ जन० इंडि० हिस्ट्री भा० ४ पृ० १११ श्लोक २७७

२ ,, ,, ,, ,, श्लोक २४३

३ मिडिवल इंडिया पृ० ४३४। ४ एपि० कर० भा० ८ पृ० २०६.

५ एपि० कर० भा० ४ पृ० १३।

अथवा भेड़ों को मन्दिर में दान करें जिसकी आय से देवता की पूजा की जाय। इस सेठी का अपराध यह था कि उसने अपनी जाति के दो श्रेष्ठ व्यक्तियों को मार डाला था[1]। इतने कठोर अपराध के लिए कितना साधारण दण्ड था। परन्तु इस प्रकार के दण्ड बहुत कम मिलते हैं। विजयनगर के राज्य में चोरी करने तथा व्यभिचार के लिए कठोर दण्ड का विधान था। चोरी करने वाले के हाथ पैर काट लिये जाते थे। मन्दिर में चोरी करने वाले पुजारी को धर्मशासन (कोर्ट) के सामने हाथी के पैर के नीचे कुचल डालने का विधान था। कभी-कभी अपराधी पुजारी को दिव्य-विधान कराया जाता था। धर्म-शासन के सामने गर्म लाल लोहा उसके हाथ में दिया जाता था अथवा गर्म घी में हाथ रखने की आज्ञा दी जाती थी[2]। वर्तमान काल तक विजयनगर के खँडहरों में प्रस्तर खण्डों पर मनुष्य हाथी के पैर से कुचलते हुए दिखलाये गए हैं[3]। देश-द्रोही को फांसी दी जाती थी। न्यूनिज कहता है कि देवराय द्वितीय के विरोध में जिन लोगों ने षडयन्त्र में भाग लिया था, उनको आग में जला दिया गया और उनके परिवार को नष्ट कर दिया गया[4]। यद्यपि राजा सबसे बड़ा न्यायकर्त्ता था, परन्तु नियम का विधान ब्राह्मणों के हाथ में रहा। शास्त्रकारों ने अनेक दिव्य सोधन (Ordeals) का उल्लेख किया है[5] जिनका प्रयोग यदा-कदा विजयनगर राज्य में किया जाता था। कर्नाटक तथा तामिल देश में न्याय-सभा शूद्रों को द्रव्य का दण्ड (जुर्माना) दिया करती थी। कभी-कभी विशेष मुकदमों को विशेष न्यायालय के सन्मुख उपस्थित किया जाता था

---

१ एपि० रिपो० १६२८ पृ० ६१।

२ एपि० कर० भा० ३ पृ० ४७।

३ सालातोर—विजयनगर हिस्ट्री भा० १ पृ० ३६०।

४ इलियट—हिस्ट्री आफ इण्डिया भा० ४ पृ० ११६।

५ शु० नी० ४।५।२; वृ० उप० १०।५।३१; छा० उप० ७।१।३

और राजा स्वयं वहां वर्तमान रहता था। यदि सरकारी नौकर प्रजा पर अत्याचार करते तो उनको मृत्यु-दण्ड दिया जाता था[1]। राजा धार्मिक झगड़ों को भी शांतिपूर्वक तय किया करता था। बुक्कराय का जैन तथा वैष्णव धर्मावलम्बियों के झगड़े का निर्णय करना प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार विजनगर राज्य में, न्याय विभाग सेनापति के आधीन होते हुए भी, किसी प्रकार का अन्याय नहीं होता था। राजा स्वयं देखरेख करता था तथा प्रत्येक प्रकार के झगड़े का समुचित रूप से तत्सम्बन्धी नियमानुकूल निर्णय करता था। प्रत्येक प्रजा को राजा तक पहुँचने में कोई कठिनाई न थी। राज-कर्मचारी को कठोर दण्ड देने का विधान था, अतएव प्रत्येक कार्य न्याय-पूर्वक होता था।

सेना विभाग

विजयनगर के राजाओं को बहमनी के मुसलमान शासकों से सदा युद्ध करना पड़ता था, अतएव अपने राज्य की रक्षा के लिए शासकों ने विशाल सेना का संगठन किया था। उत्तरी तथा दक्षिणी सीमा पर सदा युद्ध होते रहते थे। यही कारण है कि विजयनगर का सैनिक बल असंख्य रखा जाता था। सेना की संख्या के विषय में विदेशी यात्रियों का वर्णन एक-सा नहीं मिलता। फिरिस्ता का कथन है कि मुहम्मदशाह से युद्ध करते समय विजयनगर के पास एक लाख पैदल, तीस हजार घुड़सवार तथा कई हजार हाथी मौजूद थे[2]। अब्दुर रज्जाक के अनुसार विजयनगर के शासक ११ लाख पैदल, ५ लाख घुड़सवार, और १ हजार हाथी अपनी सेना में रखते थे। देवराय द्वितीय के पास बासठ हजार धनुषधारी, अस्सी हजार घुड़सवार और दो लाख पैदल सिपाही थे[3]। रायचूर द्वाब के युद्ध में विजयनगर के शासक कृष्ण-देव राय के पास असंख्य सेना थी। 'कृष्णदेवराय-विजयम्' के अनुसार

---

१ सालातोर वही भा० १ पृ० ३८३।

२ ब्रिग—दि राइज आफ मुसलमान्स पृ० ३०६

३ इलियट—हिस्ट्री आफ इंडिया ४। पृ० १०५

राजा के पास ६ लाख पैदल, ६६ हज़ार घुड़सवार और २ हजार हाथी वर्तमान थे[1]। विदेशी विजयनगर की अतुल सेना को देखकर आश्चर्य-चकित हो जाते थे। तालिकोट के महासमर में ६ लाख पैदल सिपाही, ४५ हजार घुड़सवार, २ हजार हाथियों, १५ हजार धनुषधारी तथा हर एक प्रकार के तोपखाना काम कर रहे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि विजयनगर का सैनिक-बल असंख्य था।

सेना को कई भागों में बांटा गया था। (१) पैदल (२) घुड़सवार (३) हाथी (४) धनुषधारी और (५) तोपखाना (जिसमें रथ भी सम्मिलित थे)। सन् १४४३ के लेख में 'हस्ती अश्वरथपदाति बलम्' का वर्णन मिलता है[2]। पर आगे चलकर धनुषधारी सैनिकों का रखना अनिवार्य समझ कर उनको भी पैदल में सम्मिलित किया गया[3]। रथ में तोपखाना भी शामिल था। इतनी बड़ी सेना के सामान की तैयारी करने के लिए एक पृथक् विभाग था। उसके द्वारा सैनिकों के भोजन तथा वस्त्र का प्रबंध किया जाता था। इसकी तुलना आधुनिक 'कमसेरियट विभाग' से की जा सकती है। शुक्र का कथन है कि सेना में तोपखाना के साथ साथ बैल तथा ऊँटों की भी आवश्यकता होती थी[4]। इन सब का वर्णन हरिहर द्वितीय के एक लेख में मिलता है। उस लेख में ६ विभागों का उल्लेख मिलता है। (१) पैदल (२) घुड़सवार (३) हाथी (४) तोपखाना (जिसमें रथ सम्मिलित था) (५) ऊंट तथा (६) बैल[5]। पैदल सेना में तुर्क, तेलगु, पांड्य तथा होयसल जाति के लोग नियुक्त किये जाते थे। सिपाहियों को सरकारी भोजनालय

---

१ कृष्णदेवराय-चरितम् पृ० १३१

२ एपि० कर० भा० ८ पृ० १०३.

३ ब्रिग—दि राइज आफ मुसलमान्स भा० २ पृ० ४३२

४ शु० नी० भाग ४ ७। १। ४१

५ वहरवर्थ—नेलोर लेख भा० १ पृ० ४

से भोजन मिलता था जिसमें अन्न के साथ मांस भी सम्मिलित था। वस्त्रों में मखमल या रेशमी का व्यवहार किया जाता था। जब सिपाही शत्रुओं पर आक्रमण करते थे तो 'गोविन्द' 'गोविन्द' की जोशपूर्ण आवाज करते थे। यह उनका सामारिक नारा (वार-स्लोगन) था।

घुड़सवारों के लिए भी भोजन तथा वस्त्र का प्रबंध होता था। सैनिकों के अतिरिक्त घोड़ों को भी वस्त्र से सुसज्जित किया जाता था। विजयनगर के राजा अरब से घोड़े मंगाया करते थे। इस व्यापार में पुर्तगाली बहुत लाभ उठाते थे। राजा घोड़ों के लिए प्रत्येक-वर्ष लाखों रुपया खर्च करते थे। घोड़े पर्याप्त मूल्य में खरीदे जाते और उनपर मुहर लगादी जाती थी। हाथियों का भी युद्ध में उपयोग किया जाता था। उनको भी वस्त्र तथा गहनों से विभूषित किया जाता था।

तोपखाना तथा विरुद का प्रयोग, मुसलमानों से भी पहले विजयनगर के शासक करते रहे।[1] शुक्र ने भी बारूद के प्रयोग का वर्णन किया है [2]। विदेशी राजदूतों का कथन है कि तालिकोट में तीन हजार तोपें तथा रायचूर की चढ़ाई में एक हजार तोपें प्रयुक्त की गई थीं [3]। विजयनगर के एक लेख में भी बारूद के द्वारा एक व्यक्ति की मृत्यु का वर्णन मिलता है[4]। लड़ाई में मुसलमान धनुषधारी बड़ी कुशलता से लड़ते थे। फिरिस्ता-ने वर्णन किया है कि युद्ध में परास्त होने पर देवराय द्वितीय ने अपनी सेना में धनुष चलाने वाले सैनिकों की कमी को पूरा करने के लिए हज़ारों मुसलमान धनुषधारी सैनिकों को नियुक्त किया। उन लोगों ने कुछ ही दिनों में हिन्दू पैदल सेना को धनुष-बाण चलाना सिखलाया और इस प्रकार साठ हज़ार धनुषधारी हिन्दू सैनिक तैयार हो गए। देवराय ने

---

१ शु० नी–२।२।३६३

२ सेवेल–ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३२८

३ एपि० कर० भा० ८ पृ० १०४

४ रंगाचार्य-इ०ए०भा०६३ पृ० १६१

सैंकड़ों तुर्की घुड़सवार अपनी सेना में भरती किये [1]। मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए नगर में उनके रहने के लिए एक विशेष स्थान निश्चित कर दिया गया। उन्होंने वहां मसजिदें बनाईं। उनके लिए बकरे तथा कबूतर के मांस का प्रबंध किया गया। राजा अपने सिंहासन के पास कुरान शरीफ रखता था। इस प्रकार विजयनगर के पास बीस हजार मुसलमान सैनिक थे।

विजयनगर नरेशों के पास जलसेना का भी एक बेड़ा था जो पश्चिमी तथा पूर्वी भाग (मलाबार तथा कारोमण्डल तट) में रहा करता था। दोनों तटों पर स्थित कुल साठ बन्दरगाह थे, जहां इनके जहाज रहा करते थे। वेंकट पतिदेव द्वितीय के समय में पुर्तगालियों से कारोमण्डल तट पर झगड़ा भी हुआ था। परन्तु उन्होंने वेंकटपतिदेव से सन्धि कर ली। इस प्रकार स्थल सेना के अतिरिक्त शक्तिशाली जलसेना भी विजयनगर के पास थी।

राजा प्रत्येक वर्ष राम-नवमी तथा विजया-दशमी के समय सेना का निरीक्षण किया करता था। सेना बाहर खड़ी की जाती थी। यदि सेना

गुप्त चर

को आक्रमण करने बाहर जाना होता था तो राजा उसी समय घोषणा कर देता था। राजा कृष्णदेव राय तो मुसलमानी सेना के मार्ग का पता लगाकर अपने आक्रमण-मार्ग का निर्णय करता था। सेना में गुप्तचर भी वर्तमान थे जो शत्रुओं की चाल का पता लगाया करते थे। ब्राह्मण सदा सेना के साथ रहा करता था। यदि समय पड़ता तो सैनिकों को नाना प्रकार की वीरता की बातें सुनाकर जोश दिलाया करता था [2]। नगाड़े के बजने के साथ युद्ध किया करता था तथा सेना 'गोविन्द', 'गोविन्द' के नारे लगाया करती थी। राजा सैनिकों को युद्धक्षेत्र में जाते समय स्वयं पान का बीड़ा खिलाता था।

---

१ ब्रिग—फिरिश्ता, एपि० कर० भा० ३ भूमिका पृ० १३

२ सेवेल—वही पृ० १११

यह प्रथा केवल दक्षिण भारत में थी और इसकी बड़ी महत्ता मानी जाती थी[1]।

सेना जहाँ जाती थी वहाँ कैम्प खड़े किये जाते तथा नगर बसाया जाता था। कैम्प चारों तरफ से घिरा रहता था। पहरेदार नियुक्त रहते थे। ब्राह्मण सेना की विजय के लिए पूजा करता था। धोबी और नाई सभी मौजूद रहते थे। नगर के अन्दर बाजार लगा रहता था। भोजन सामग्री तथा कपड़ा आदि सब सामान मिलता था। इस प्रकार एक विशाल नगर तैयार हो जाता था। वहां पर प्रत्येक सैनिक का नाम पुस्तिका में लिखा रहता था[2]। उनको प्रत्येक चौथे मास वेतन दिया जाता था[3]। उन्हें किसी प्रकार की भूमि नहीं दी जाती थी।

सेना का विभाग एक सेनापति के आधीन रहता था[4]। केन्द्रीय शासक के पास सभी विभाग थे तथा सेना की अधिकता के कारण प्रत्येक प्रांतीय शासक को केन्द्रीय सरकार की तरह सेना रखने का अधिकार था। तोपखाने केन्द्र तथा प्रांत में भी वर्तमान थे। कोई भी ऐसा विभाग न था जो प्रांतीय शासक की सेना में न पाया जाता हो। यह समस्त सेना केन्द्रीय शासक की आज्ञानुसार काम करती थी तथा युद्ध के समय राजा की सहायता किया करती थी। रणक्षेत्र में मार्ग तैयार करने का भी एक विभाग था[5] जिसकी वर्तमान काल के सैपर्स तथा माइनर्स से तुलना की जा सकती है। जब राजा विजय करके लौटता था तो विजय का उत्सव बड़े समारोह से मनाया जाता था। शासक ब्राह्मणों तथा सेना के अधिकारियों को इनाम बांटता था। मुसलमानों पर विजय प्राप्त करने पर

---

१ राइस—मैसूर तथा कूर्ग लेख पृ० १७१

२ बारबोसा पृ० ६१

३ इलियट—हिस्ट्री भाग ४ पृ० १०६

४ एपि० कर० भा० ११ पृ० ८७

५ एपि० इंडि० भाग १६ पृ० १३३

हिन्दू सेना मसजिदों को गिराती और शत्रुओं को मार डालती थी। फिरिस्ता का कहना है कि हिन्दुओं ने मसजिद गिराने के साथ-साथ स्त्री व बच्चों का भी बध किया। परन्तु जिस समय मुसलमान विजयी होते तो उनका बर्ताव भी कम कठोर न रहता था। मुसलमानों ने भी एक बार में सत्तर सत्तर हज़ार हिन्दुओं को मार डाला। विजयनगर के नरेशों में कृष्णदेवराय ही ऐसा शासक था जिसने उड़ीसा के राजा पर विजय प्राप्त करके भी दया का भाव रक्खा और प्रजा पर कठोरता का व्यवहार नहीं किया। राजनीतिक चाल के कारण विजयनगर के नरेशों ने हजारों मुसलमान सैनिकों और घुड़सवारों को सेना में नियुक्त किया था। रामराय की सेना में एबिसिनिया के निवासी अनेक मुसलमान भी छोटे-छोटे सेनापति के पद पर नियुक्त किये गए थे। परन्तु मुसलमानी सेना ने तालिकोट के रण-क्षेत्र में अपने स्वामी विजयनगर-शासक का साथ छोड़ दिया और बहमनी राजाओं से जा मिली। उसी समय से सेना में मुसलमानों की नियुक्ति बन्द कर दी गई।

विजयनगर की केन्द्रीय राजसभा ने नगर के प्रबन्ध के लिए पुलिस विभाग का निर्माण किया था। पुलिस का एक बड़ा अधिकारी होता था जो नगर में शांति की स्थापना करता तथा बुरे कामों को करने से जनता को रोकता था। उसकी सहायता के लिए गुप्त रीति से काम करने वाले गुप्तचर (C. I. D.) भी होते थे जो उस अधिकारी को सूचना दिया करते थे[1]। इसके अतिरिक्त प्रांत तथा ग्रामों में भी रक्षा के निमित्त सुचारू रूप से पुलिस कार्य करती थी।

पुलिस विभाग

हिन्दू-शास्त्रों में राजनीति के अन्तर्गत अर्थ की बड़ी महिमा बतलायी गई है। महाभारत में तो अर्थ पर ही राष्ट्र की स्थिति

---

१ इलियट—हिस्ट्री भा० ४ पृ० १११।

अवलम्बित बतलाई गई है[१]। स्मृतिकारों ने अर्थ को ही राष्ट्र का मूल घोषित किया है[२]। तात्पर्य यह है कि धर्म की रक्षा, देश की रक्षा तथा राष्ट्र के संचालन के लिए अर्थ की नितांत आवश्यकता है। अतएव कोश को पूर्ण करने तथा राज्य के सुप्रबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि राजा प्रजा पर कर (टैक्स) लगावे। विजयनगर के शासकों ने अपने समय में प्राचीन-शास्त्रीय-प्रणाली के अनुसार कार्य किया तथा अपने पूर्वगामी शासक होयसल नरेशों के द्वारा प्रचलित शैली पर भी चलने का प्रयत्न किया। दक्षिणी भाग में चोल राजाओं के चलाए हुए नियम तथा कर्नाटक में होयसलों के नियमों का पालन किया जाता था। तत्कालीन स्मृतिकार शुक्र ने उल्लेख किया है कि अर्थ-विभाग केन्द्रीय सभा के अधीन था। उस विभाग के लिए सुमन्त (अर्थ-सचिव) तथा अमात्य नियुक्त किये गये थे जिनका प्रधान कार्य कर—ग्रहण करना था। सुमन्त समस्त कार्यों का निरीक्षण करता था तथा अमात्य केवल कर की वसूली पर ध्यान देता था[३]। विजयनगर राज्य में निम्नलिखित प्रकार से आय हुआ करती थीः—

आय

(१) **भूमि करः**—प्रत्येक राष्ट्र को राज्य की समस्त आय का अधिकांश भाग भूमि कर के ही रूप में प्राप्त होता है। परन्तु कर-ग्रहण की मात्रा एक-सी नहीं होती थी। प्राचीन-शास्त्रों में धान्य का 'षष्ठांश' ग्रहण करने का उल्लेख पाया जाता है। माधवाचार्य ने 'पराशर-माधवीय' के आचार-खण्ड में धान्य का छठा भाग लेने का उल्लेख किया है। अतः यह बात सिद्ध होती है कि विजयनगर राज्य में धान्य का छठा भाग

---

१ शां० पर्व १३३; घोषाल—हिन्दू पोलिटिकल थ्योरी पृ० २०४।

२ अर्थ शा० २।८।६६; शु० नी० ४।२।२।
(कोशमूलो बलं स्मृतम्)

३ शु० नी० ४।२।१

ही प्रजा से कर के रूप में ग्रहण किया जाता था [1]। तामिल देश में यह कर कुछ कम था और धान्य का सातवाँ भाग ही वसूल किया जाता था [2]। भूमि के अनुसार राजा भूमि-कर निश्चित करता था। यदि भूमि वन्ध्या होती थी और किसी व्यक्ति ने उसे नए ढंग से आबाद किया तो राजा उस भूमि के लिए दो वर्ष तक लगान न लेता था। इसके अतिरिक्त यदि उस भूमि की सिंचाई नदी या नहर से की जाती, तो सरकारी लगान छठें भाग से बढ़ाकर चौथाई कर दिया जाता था [3]। इस प्रकार भूमि-कर एक निश्चित कर न था। समयानुकूल भूमि-कर में परिवर्तन हुआ करता था।

भूमि-माप

प्रत्येक वर्ष पृथ्वी का माप होता था [4]। ज़मीन के मापने वाले लट्ठे की लम्बाई ३४ फीट थी।[5] समस्त भूमि को (१) वंध्या (२) उर्वरा तथा (३) बाग वाली इन तीन पृथक् भागों में विभक्त किया गया था। प्रत्येक भाग की सीमा निर्धारित की जाती थी। सीमा पर वामन प्रस्तर या लोकेश्वर प्रस्तर स्थिर किया जाता था [6]। यह भूमि का माप अर्थ-विभाग के अधिकारी के पास रजिस्टर में लिख दिया जाता था।

राज्य में जो व्यक्ति लगातार तीन वर्ष तक भूमि कर नहीं देता था उसकी भूमि राजा की हो जाती थी [7]। जो व्यक्ति बिना सूचना के

---

१ राज्ञे दत्वा षड्भागम्—
पराशर २।१७ (आचार—खण्ड १ पृ० २७०)

२ एपि० कर० भा० ४ पृ० १२३

३ शु० नी० २।२।२२७.

४ सालातोर—विजयनगर हिस्ट्री भा० १ पृ० १६७

५ एपि० रिपोर्ट १६१६ पृ० १४१

६ एपि० कर० भा० ४ पृ० ४७

७ एपि० रिपोर्ट १८६९ पृ० १

अपना निवासस्थान छोड़ देता था उसकी भूमि भी राजकीय सम्पत्ति हो जाती थी[1]। ऐसी भूमि को राजा स्थानीय ग्राम-सभा को दे देता था जो भूमि के विक्रय का प्रबंध करती थी। मध्यस्थ रखकर, समस्त लोगों के सामने उस भूमि का विक्रय किया जाता था। समय के भाव के अनुकूल जमीन बेंची जाती थी। यह विक्रय का कार्य देवता के मंदिर या नदी-किनारे सम्पादन किया जाता था[2]। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर ज़मीन को बंधक रख सकते थे। जिस कागज पर इसकी रजिष्ट्री की जाती थी उस पत्र को 'भोग्य-पत्र' कहा जाता था[3]। परन्तु राजा से पुरस्कार में प्राप्त भूमि को न तो कोई बंधक रख सकता था और न बेंच सकता था[4]। इस राजकीय नियम के पालन न करने पर उस व्यक्ति को दण्ड दिया जाता था और वह भूमि मंदिर के व्यय के लिए दे दी जाती थी।

भूमि-विक्रय

विजयनगर के शासकों ने खेती में सुधार करने के निमित्त अनेक उपाय किये। ज़मीन की सिंचाई के लिए प्रायः सभी राजाओं, प्रांतीय गवर्नरों तथा स्थानीय संस्थाओं ने कुंआ, तालाब तथा नहरों को बनवाया व सिंचाई का प्रबंध किया[5]। कावेरी नदी की बाढ़ से खेतों की सीमा नष्ट होजाने के बाद, राजा ने पुनः सीमा निर्धारित की। उसी की आज्ञा से नहरों में भरी हुई मिट्टी निकाली गई[6]। लेखों में वर्णन मिलता है कि वेंकट द्वितीय तथा उसके मंत्री ने नहरों के प्रयोग के लिए प्रजा को

---

१ एपि० रि० १६१० पृ० ६२

२ एपि० कर० भा० ६ पृ० ६६

३ एपि० कर० भा० ३ पृ० ३३

४ एपि० रिपोर्ट १६१६ पृ० १४०

५ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३६५

६ नं० ४२२ आफ १६१२

उत्साहित किया[1] । विजयनगर के आधीनस्थ नायकों ने भी तालाब तथा कुंए खुदवाए जिससे दक्षिणी आरकाट में खेती की उन्नति होने लगी[2] । गंगदेवी ने 'मदुराविजयम्' में वर्णन किया है कि उसके पति कम्पणराय ने कावेरी नदी में बांध बँधवाये । इससे अनाज की उत्पत्ति कई गुनी बढ़ गई । कृष्णदेव ने एक ऐसी नहर तैयार कराई थी जिसमें कई एक फाटक थे तथा एक हजार व्यक्ति उसकी रक्षा के लिए नियुक्त किये गए थे । विजयनगर के राजा इस कार्य को लोकोपकार समझते थे[3] । इतना ही नहीं विजयनगर के शासकों ने भूमि की उन्नति के लिए लोगों को रुपया दिया, जिससे प्रजा जानवर खरीदती थी और नहर तथा तालाब तैयार करती थी । शासक विदेश से मनुष्यों को किसी विशेष स्थान (भूमि) पर निवास करने के लिए आमंत्रित करता था । खेती के लिए रुपया अथवा बीज पेशगी (अग्रिम) रूप में दिये जाते थे[4] । इसके अतिरिक्त स्थानीय संस्थायें भूमि की सुचारू रूप से जुताई के लिए जनता को रुपया कर्ज दिया करती थीं[5] ।

भूमि-कर की वसूली के लिए एक निश्चित मार्ग था । एक रजिस्टर तैयार किया जाता था जिसमें भूमि का नाम तथा लगान (कर) लिखा रहता था । लगान सिक्के तथा सामग्री (धान्य) के भी रूप में लिया जाता था[6] । विजयनगर राज्य में कर के लिए प्रजा सोना या हीरा सरकारी कोष में जमा करती थी । पुर्तगाली पेई का कथन है कि कोषाध्यक्ष उस सोने तथा

१ ए० इ० भा० ३८, पृ० ६७

२ नं० ३८८ आफ १६१२

३ राइस—मैसूर लेख भूमिका पृ० १३२ । एपि० कर० भा० ११ पृ० ३८.

४ राइस—मैसर गजेटियर भा० १ पृ० ४८०

५ एपि० कर० भा० ४ पृ० ४१

६ सा० इ० इ० भा० १ पृ० ८०

हीरा को सुरक्षित रखता था[१] । शासक के तोशखाने का निजी कोषाध्यक्ष होता था । भूमि–कर राजकीय कोषाध्यक्ष के पास एकत्रित किया जाता था[२] । कभी-कभी शासक सारे झंझटों से पृथक् रहने के लिए जमीन को ठेके पर दिया करते थे[३] । ठेके को 'गुत्तर' कहते थे । राज को उस व्यक्ति से निश्चित कर मिलता था । उस ठेके में केवल भूमि–कर ही सम्मिलित रहता था । इसके अतिरिक्त जंगलों से भी आय होती थी[४] । भूमि-कर के अतिरिक्त विजयनगर के राजा अन्य कर भी ग्रहण करते थे जो होयसल राज्य में प्रचलित थे । लेखों में भी इन करों का वर्णन मिलता है । इन करों का निम्न-लिखित श्रेणी में विभाग किया जा सकता है ।

(२) दूसरा कर चुङ्गी से मिलता था जो नगर के फाटक पर वसूल किया जाता था । उस समय पूर्वी अफ्रीका, अरब तथा योरप आदि देशों से व्यापार प्रचुर मात्रा में होता था । पुर्तगाली तथा अरब वाले घोड़ों का व्यापार सदा करते थे जिनकी यहां अत्यन्त आवश्यकता भी थी[५] । उन्हीं लोगों से बन्दरगाह पर चुङ्गी (Import duty) वसूल की जाती थी । बाहर जाने वाले सामान पर भी कर (Export duty) लिया जाता था । राज्य के बाजारों में बिकने वाली सामग्री पर और प्रत्येक दूकानदार या व्यापारी से एक दूसरे प्रकार का भी कर वसूल किया जाता था[६] । उस अधिकारी-

---

१ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २८२

२ एपि० कर० भा० ८ पृ० १०३

३ सालातोर-हिस्ट्री भा० १ पृ० २०७

४ एपि० रिपोर्ट १९१५ पृ० १०७; १९१३ पृ० १२२

५ एपि० कर० भा० ४ पृ० ११८ ।

६ ,, ,, भा० ३ पृ० १४७ ।

मुकंड-अधिकारी (Custom officer)[1] को राजा की ओर से रसीद देने का अधिकार दिया गया था[2]।

(३) तीसरे प्रकार का कर पशुओं पर लगाया गया था। बाज़ार में पशु बेचने वाले को कर देना पड़ता था[3]। प्रत्येक व्यक्ति को राजकीय चरागाह में पशु भेजने के कारण टैक्स देना पड़ता था[4]। उसमें अधिकतर भेड़, बैल तथा अन्य जानवर चरा करते थे।

(४) राज्यभर में जितने जंगल या वृक्ष होते थे उन पर एक प्रकार का कर लगाया जाता था। सम्भवतः वह कर वृक्षों के फल के प्रयोग करने वाले को देना पड़ता था[5]।

(५) विजयनगर राज्य में शराब की बिक्री से भी आबकारी का कर वसूल किया जाता था।

(६) राज्य भर में जितने कपड़े, तेल या शक्कर के कारखाने वर्तमान थे, उन पर अत्यधिक टैक्स (कर) लगाया गया था[6]। जो सामान तैयार होता वही व्यापारी के हाथ बेचा जाता था।

(७) राज्य में काम करने वाले कुछ ऐसे कारीगर थे जिनकी आय का लेखा देखकर कर लगाया जाता था। उनमें नाई, धोबी, कसाई, अंडा बेचने वाले, पान वाले, कुम्हार, सुनार, बढ़ई, वेश्या आदि पर कर लगाया

---

१ एपि० कर० भा० ६ पृ० १६।

२ वटरवर्थ—नेलोर लेख भा० २ पृ० ६५२
एपि० कर० भा० ५ पृ० ६६६।

३ एपि० इंडि० भा० १७ पृ० ११२।

४ ,, ,, ,, १८ पृ० १३६।

५ एपि. इण्डि. भा. १८ पृ० १३६।

६ एपि. कर. भा. ४ पृ. १०३ ; एपि. कर. भा. ३ पृ. १६७;
वही भा. १० पृ. २६२।

गया था[1]। विजयनगर में विवाह के समय भी प्रजा को राजा के लिए उपहार देना पड़ता था, जो अनिवार्य था। इसलिए लेखों में उसका विवाह-कर के नाम से उल्लेख पाया जाता है[2]। आश्चर्य की बात तो यह है कि विजयनगर राज्य में कोई भी व्यक्ति भिक्षा नहीं मांग सकता था। यदि भिक्षा मांगते वह देखा जाता तो जुर्माने के रूप में उस व्यक्ति से रुपया वसूल किया जाता था।[3]

(८) कुछ अन्य प्रकार के भी कर थे जो अनिवार्य रूप से वसूल नहीं किये जाते थे, जैसे मछली मारना अथवा समुद्र से मोती निकलना[4]। राजा इन दोनों कामों का ठेका दे दिया करता था और सारा रुपया पेशगी ही वसूल कर लिया जाता था[5]। समुद्र के किनारे नमक बनाने वालों से भी कर वसूल किया जाता था।

विजयनगर के शासकों को इन करों के अतिरिक्त उनके अधीनस्थ शासक (नायकों) से भी प्रत्येक वर्ष कुछ रुपया कर रूप में मिला करता था। इसके अतिरिक्त प्रातीय अधिकारी प्रत्येक वर्ष केन्द्रीय सरकार को एक निश्चित रूप में भेंट दिया करते थे[6]। यद्यपि अन्य मामलों में वे स्वतंत्र थे परन्तु कर के मामले में परतंत्र थे। इसके अतिरिक्त दण्ड से जो द्रव्य मिलता था, वह भी राजकीय आय-वृद्धि करने का एक मार्ग था। इन समस्त मार्गों से असंख्य द्रव्य कर के रूप में ग्रहण किया जाता था।

इस विशाल साम्राज्य का व्यय भी इसकी आय के अनुकूल ही था।

---

१ इलियट हिस्ट्री भा. ४ पृ. १११।

२ एपि, कर. भा. ४ पृ. ११८ : वही भा. ७ पृ. १४।

३ नं. १ देखिये।

४ एपि० इ० भा० १७ पृ० ११२

५ एपि० कर० भा० ६ पृ० ६८

६ मौरलैंड—ए ग्रेरियन सिस्टम आफ मुसलिम इंडिया पृ० १०
सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २८०

विजयनगर की महत्ता को देख कर समस्त विदेशी दांतों तले अंगुली दबाते थे। राजा तथा महल की शान शौकत की कहीं समानता नहीं दिखलाई पड़ती थी। मकानों, सभा-भवनों तथा मंदिरों की सजावट अवर्णनीय थी[1]। आय का प्रायः तीसरा भाग राजकीय महलों तथा आराम की सामग्रियों में व्यय किया जाता था। सब से अधिक व्यय सेना में होता था। असंख्य सिपाहियों के वेतन, भोजन, वस्त्र तथा इनाम आदि को मिला कर आय का आधा भाग व्यय हो जाता था। उस काल में मुसलमानों से युद्ध करने के लिए यह आवश्यक भी था। केन्द्र के अतिरिक्त प्रांतीय स्थानों में सेना रखने का व्यय केन्द्रीय सरकार को ही देना पड़ता था। इस प्रकार सेना में ही सब से अधिक व्यय होता था। विजयनगर राज्य में कभी कभी किसानों की अवस्था बुरी हो जाने पर लगान माफ कर दिया जाता था। किसी स्थान पर कर की अधिकता के कारण जनता उस स्थान को छोड़ने लगती थी[2]। लेखों में उल्लेख मिलता है कि राजा इस बात बात को सुनकर स्वयं वहां जाता था और टैक्स माफ कर देता था[3]। तिरुमल का नाम इस सम्बन्ध में लिया जा सकता है। लड़ाई में हर्जाना देने के लिए जनता से रुपया वसूल करने का कभी विचार किया जाता था, परन्तु जनता के विरोध करने से राजा उस नीति को काम में नहीं लाता था। अच्युत के ऐसे प्रशंसनीय कार्य करने का उल्लेख पाया जाता है। विदेशियों का कहना है कि दक्षिण में नायकों के राज्य में ऐसी बातें अधिक हुआ करती थीं[4]। परन्तु विजयनगर के शासक उसे दूर करने में सदा उद्यत रहते थे। सारी बातों को सोचकर, कुछ दिनों के बाद ऐसी आज्ञा

व्यय

---

१ ईश्वरीप्रसाद—मिडिवल इंडिया-पृ० ४४५

२ एपि० कर० भा० ११ पृ० ७१

३ सन् १९२६ नं० ३४०

४ नेलसन—मदुरा भा० ३ पृ० १४६-५१

जारी की गई कि केन्द्रीय सरकार से बिना पूछे कोई नायक किसी प्रकार वृथा कर नहीं लगा सकता। इन शासकों को कई बातों का ध्यान रखना पड़ता था। प्रथम तो विजयनगर नरेश धार्मिक वातावरण को देखकर उस स्थान विशेष को कर से मुक्त कर देते थे धार्मिक जनता पर कर लगाना अनुचित समझा जाता था। राजनैतिक अवस्था के अनुसार भी ऐसा करना पड़ता था। जो देश नये जीते जाते थे उन पर कर का लगाना समुचित न समझ उन्हें कर से मुक्त कर दिया जाता था। आर्थिक स्थिति को देखते हुए कर न वसूल करने की आज्ञा निकाल दी जाती थी, अथवा कभी न कभी सामाजिक विचारों को ध्यान में रखकर ऐसी आज्ञा देनी पड़ती थी। जनता को राजा अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। वह प्रजा पर सदा दया का भाव रखता था। कभी-कभी जीत से लौटने पर राजा खुशी में कर माफ कर दिया करता था। विजयनगर के शासक साधारणतया प्रसन्न होकर भी कर माफ कर दिया करते थे जिसके अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। कृष्णदेवराय ने अपने समय में विवाह कर को माफ कर दिया था तभी से यह कर सदा के लिए बंद हो गया[1]। रामराय ने मंगल नामक नाई से प्रसन्न होकर, उस के आग्रह से, नाई जाति को कर से मुक्तकर दिया था[2]। देवराय द्वितीय ने भी ऐसे करों को हटा दिया था। यहाँ तक कि सदाशिव ने सारे राज्य में यह घोषणा कर दी कि नाई तथा वैद्य लोगों से किसी प्रकार का कर न लिया जाय[3]। मदारियों तथा नट लोगों को कर नहीं देना पड़ता था[4]। जो ब्राह्मण विद्वान् होता था उसे

१ मद्रास इपि० रिपोर्ट १६०६ पृ० १०२

२ एपि० कर० भा० ६। वटरवर्थ—भा० २ पृ० ६६४: एपि० रि० १६१८ पृ० १६३

३ रंगा चार्य—भा० १ पृ० ६३८। आ० स० रि० १६०८-६ पृ० १६८

४ एपि० कर० भा० ११

अन्य कर न देना पड़ता था परन्तु भूमि-कर उसे अवश्य देना पड़ता जो मंदिर के कार्य के लिए दे दिया जाता था [1]।

विजयनगर राज्य में दान की बहुत बड़ी महत्ता समझी जाती थी। विशाल मंदिरों का निर्माण कर उनका दैनिक सभी व्यय राज-कोश से दिया जाता था। परन्तु यह व्यय प्रत्येक मास में नहीं देना पड़ता था। उस व्यय को स्थानीय संस्थाओं के अग्रहार-दान तथा भूमि-कर से दिया जाता था। कृष्णदेवराय विजय से लौटकर विजित स्थान से प्राप्त भूमि-कर को मंदिर के व्यय के लिए दे दिया करता था। पूर्वी किनारे की अधिक भूमि का कर शिव तथा विष्णु मंदिर में व्यय किया जाता था [2]। मंदिरों में दीप जलाने के लिए घृत की आवश्यकता थी, अतएव गायों की दशा सुधारने तथा भेड़ों की उन्नति के लिए भेडिहारों तथा ग्वालों को कर से मुक्त कर दिया गया था [3]। इन सब के अतिरिक्त विजयनगर के खजाने से कभी-कभी बहमनी के मुसलमान शासकों को युद्ध का हर्जाना देना पड़ता था। जब कभी हिन्दू-शासक परास्त हो जाते तो उनको संधि में असंख्य द्रव्य देना पड़ता था [4]। सन् १३६८ ई० में जब रायचूर के दाब में युद्ध हुआ तो हरिहर द्वितीय ने सेनापति फीरुज खां को चालीस लाख रुपया घूस देकर वापस लौटा दिया और इस प्रकार लड़ाई शांत हो गई [5]। इस प्रकार विजयनगर का असंख्य धन नाना प्रकार से व्यय होता था। समय-समय पर व्यय की अधिकता से अनियमित कर भी लगाया जाता था।

---

१ एपि० इंडिका भा० ७ पृ० १७-२२; मैसूर आर्कि० रिपो० १६१८ पृ० ४१

२ मा० स० रि० १६०८-६ पृ० १८१

३ एपि कर० भा० १० पृ० १५२। एपि० इंडि० भा० ६ पृ० ३३१

४ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ३६२

५ वही-पृ० ३८६

विजयनगर के शासक केवल राजधानी में बैठकर ही संतुष्ट न हो जाते थे, पर जाड़े के दिनों वे राज्य में यात्रा किया करते थे। स्थानीय संस्थाओं के द्वारा वे जनता के सदा सम्पर्क में रहते थे। किसी व्यक्ति को राजा तक पहुंचने में कठिनाई न होती थी। इस दौड़े में शासक प्रजा पर कर्मचारियों द्वारा किये गए अत्याचार पर विचार करता था। सदाशिव राय जब दौरे में निकलता तो न्याय के कार्य को भी देखा करता था [१]। यदि किसी कर्मचारी ने अन्याय किया तो उसे प्राण-दण्ड मिलता था [२]। जब कभी किसी स्थान में जनता में विद्रोह फैलता तो शासक स्वयं वहां जाकर प्रजा की कठिनाई पर विचार करता तथा सारे कर माफ कर दिया करता था [३]। धार्मिक विचार को ध्यान में रखकर विजयनगर शासक सदा यात्रा किया करते थे। दान-पत्रों से इस बात की पुष्टि होती है। राजा अनेक बार राज्य में भ्रमण किया करता था ताकि प्रजा में शाति बनी रहे।

राजकीय-निरीक्षण

विजयनगर राज्य अपनी विशिष्ठ वाह्य-नीति के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है। विजयनगर राज्य में सिंहासन के लिए भी झगड़े होते रहे। एक शासक की मृत्यु के पश्चात् दूसरे व्यक्ति को अधिकार मिल जाता था। बस, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत चरितार्थ होती थी। बुक्क द्वितीय के बाद झगड़े का आरम्भ हुआ। सदाशिव के समय में भी वही बात हुई। मदुरा के नायक, तिनवेली के पाड्य लोगों ने तथा पुर्तगाली लोगों ने गृह-युद्ध की आग बढ़ाई थी परन्तु रामराय ने उसे शान्त कर दिया [४]। इन सब बातों को ध्यान में रख कर, विजयनगर के शासकगण अपने-अपने राज्यकाल में राजकुमार

वाह्य-नीति

---

१ नं० २ आफ १६२३

२ सालातोर—हिस्ट्री भा० १ पृ० ३८३

३ नं० ३४० आफ १२६; नं० २११ आफ १६१२,

४ एस. के. ऐयंगर–नायक पृ० १६ भूमिका

को प्रांत का अधिपति नियुक्त करते थे[1]। दूसरी बात यह थी कि शासकगण मिलकर शासन करते थे। संगम के पाचों पुत्रों ने मिलकर राजकार्य सँभाला। देवराय द्वितीय ने विजय के साथ मिलकर शासन का कार्य किया। कृष्णदेवराय ने भी कुछ समय के लिए अपने पुत्र तिरुमल को राज्य-प्रबंध में सम्मिलित किया था। प्राचीन-भारतीय-पद्धति का पालन करते हुए, वृद्धावस्था में, विजयनगर के शासक राज्य-सिंहासन अपने उत्तराधिकारी के लिए छोड़ दिया करते थे। तिरुमल का नाम 'गीत-गोविन्द' में उल्लिखित है। इस राजा ने वानप्रस्थ, अवस्था में सिंहासन छोड़ दिया था[2]। तंजोर के अच्युत नायक ने भी अपने पुत्र रघुनाथ नायक के लिए ऐसा ही किया[3]। अपने सम्बन्धियों को प्रसन्न करने के लिए विजयनगर शासकों ने पर्याप्त प्रयत्न किया और राज्य में ऊँचे पद देकर उन्हें सन्तुष्ट किया। जैसा ऊपर बतलाया गया है कि राजा का राज्य में भ्रमण का भी प्रभाव होता था। प्रजा की बात स्वयं सुनने से शासक की शुभ-चिन्ता का प्रमाण मिलता था और प्रजा संतुष्ट हो जाती थी। यही कारण है कि होयसल नरेशों के हट जाने तथा संगम के द्वारा राज्य-प्राप्ति के समय किसी प्रकार का विद्रोह नहीं हुआ। शांति-पूर्वक राज्य-परिवर्तन हो गया, क्योंकि प्रजा को विश्वास था कि इस परिवर्तन से लाभ ही होगा।

हिन्दू-मुस्लिम मेल

राजनैतिक चाल के कारण ही विजयनगर शासकों ने स्वयं वैष्णव होते हुए भी मुसलमानों से सदा प्रेम का बर्ताव रक्खा। ईरानी दूत अब्दुर-रज्ज़ाक ने लिखा है कि राजा की ओर से उसे भोजन (अन्न तथा मांस) की सामग्री मिला करती

१ शु. नी-२।२।२६, एपि-कर० भा० ५ पृ० २३२
कृष्णस्वामी-सोर्सेज आफ विजयनगर; वसु—चरितम् पृ० २१७
२ आ० सर्वे० रि० १९११-१२ पृ० १८१
३ हेरास—आरविदु डाइनेस्टी पृ० ३९९

थी[1]। राजा प्रत्येक दूसरे दिन उसे बुलाता तथा कई एक प्रश्न पूछा करता था। देवराय द्वितीय, कृष्णदेवराय तथा रामराय के समय में मुसलमानों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया जाता था। बिदाई के समय दूतों को रेशमी वस्त्र भी मिलते थे[2]। पुर्तगाली दूत को भी ज़री के काम किये हुए सामान दिये गए थे। देवराय द्वितीय के समय में भयंकर झगड़ा हो जाने से मुसलमान शासक को प्रायः तीस लाख रुपया हर्ज़ाना में देना पड़ा। फिरिस्ता का कहना है कि विभिन्न जातियों में वैवाहिक-सम्बन्ध भी विजयनगर में होते थे[3]। इसके कथनानुसार यह भी प्रकट होता है कि मुसलमान राजा विजयनगर के शासकों की शरण में आते तथा सहायता मांगा करते थे[4]। मुसलमान धनुषधारी तथा तुर्की घुड़सवारों को हिन्दू नरेशों द्वारा अपनी सेना में भरती किया जाना इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि दोनों जातियों में घनिष्ठ प्रेम था[5]। अली आदिलशाह ने भी हिन्दुओं को अपनी सेना में रखा था। विजयनगर में अम्बर खाँ सेनापति के पद पर कार्य करता था और उसको पुरस्कार में एक ग्राम दिया गया था[6]। यही नहीं रामराय ने भी अनेक मुसलमान सेनापति नियुक्त किये थे[7]। मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए विजयनगर के राजाओं ने उनकी संस्थाओं को दान दिया। नरसिंह ने एक दरगाह के लिए एक गांव दान में दिया था[8]। राजा अपने कोश से मसजिदें बनवाने के लिए रुपया दिया

---

१ इलियट—हिस्ट्री भा. ४ पृ. ११३।

२ सेवेल—वही पृ. ३५२।

३ ब्रिग—दि राइज़ आफ मुसलमान्स भा. २ पृ. ३६३।

४ ब्रिग—फिरिस्ता भा. ३ पृ. १०३।

५ एपि. कर. भा ३ भूमिका. पृ. २३।

६ सेवेल—ए फा. इम्पा. पृ. १८६।

७ एपि. कर. भा. ८ पृ. १६२।

८ एपि. रिपोर्ट. १६११ पृ. ८८।

करता[1]। उनको शहर में निवास करने के लिए एक पृथक् स्थान दे दिया गया था। मुसलमानों ने वहां मसजिदें बनाईं। विजयनगर के तेलुगु कवि गंगाधर मन्त्री ने अपनी पुस्तक गोलकुण्डा के नवाब इब्राहिम मलिक को समपूर्ण की थी[2]। ये सारी बातें इस बात को प्रमाणित करती हैं कि विजयनगर-शासनकाल में हिन्दू-मुसलमानों में मेल था और दोनों शांति-पूर्वक जीवन बिताया करते थे। शासक-गण मेल पैदा करने के लिए अनेक उपायों को काम में लाते थे।

प्रांतीय शासन

विजयनगर साम्राज्य को प्रबंध की सुगमता के लिए कई प्रांतों में विभक्त किया गया था। विदेशी यात्रियों ने विजयनगर के विस्तार का वर्णन भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। अब्दुर रज्ज़ाक का कथन है कि विजयनगर-राज्य लंका से गुलबर्गा तक फैला हुआ था[3]। कृष्णदेव राय समस्त दक्षिणी-भारत पर शासन करता था[4]। अच्युत राय पश्चिमी तथा पूर्वी समुद्र तक शासन करता था[5]। मनुची का कहना है कि विजयनगर राज्य नर्मदा नदी के दक्षिण में विस्तृत था। राज्य का वास्तविक विस्तार जो कुछ भी हो परन्तु यह निर्विवाद है कि विजयनगर साम्राज्य प्रारम्भ ही से प्रांतों में विभक्त था। कृष्णदेव राय के समय में प्रान्तों की विशालता के कारण उन्हें राज्य का नाम दिया गया था[6]। न्यूनिज ने बतलाया है कि समस्त राज्य दो सौ भागों में विभक्त था[7]। परन्तु इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। प्रान्तों की संख्या न्यून थी। उनके अन्तर्गत 'नाडु' की संख्या

---

१ नं. ५३८ आफ १९१७। २ आ. स. रि. १९०८-९ पृ. १९८।

३ इलियट—हिस्ट्री भा० ४ पृ० १०५

४ सेवेल—ए फार० इम्पा० पृ० १७८

५ वही पृ० ३८४

६ एपि० कर० भा० ८ पृ० १२

७ सेवेल—वही पृ० ३८९.

अधिक हो सकती है जिसका उल्लेख न्यूनिज ने किया है। इन राज्यों में उदयगिरि राज्य, पेनुगोंडा राज्य, अरग राज्य, मूलवापी राज्य, मले राज्य, तुलु राज्य आदि के नाम लेखों में मिलते हैं। चिक्कराय-वंशावली में भी इन राज्यों का नाम मिलता हैं। जैसा बतलाया गया है कि इन प्रांतों के अधिपति राजकुमार हुआ करते थे या राजा के सम्बन्धियों को नायक (प्रांत का गवर्नर) का पद दिया जाता था। राजा कुछ अन्य व्यक्तियों को भी नायक का पद दिया करता था[1]। ये नायक अपने प्रान्तीय शासन के कार्य में परम स्वतंत्र होते थे[2]। इनको प्रांतों में, विजयनगर के शासक के समान ही अधिकार प्राप्त थे। केन्द्रीय-सरकार को नायक भूमि कर का तीसरा भाग दिया करते थे और दो तिहाई भाग अपने प्रांत के लिए सुरक्षित रखते थे[3]। नायक के आधीन अमर-नायक या पट्ट-नायक नियुक्त किये जाते जो 'नाडू' या जिले का प्रबंध करते थे। उनको भी भूमि दी जाती थी ताकि वे अपना कार्य सुचारु रूप से कर सकें[4] और अर्थोपार्जन की चिन्ता में न फंसे रहें।

नायक अपने प्रांत के भीतर सब कार्य सम्पन्न करते थे। केन्द्रीय-सरकार के लिए उनको एक सेना रखनी पड़ती थी जो युद्ध के समय सम्राट् की सहायता करती थी। न्याय का कार्य करने और कर वसूल करने के लिए उनके पास अन्य कई कर्मचारी होते थे। नायक स्वयं दान दिया करता था, मन्दिर निर्माण कराता था तथा कृषि की उन्नति के लिए नहरें खुदवाता था। वह स्थानीय संस्थाओं के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता था। विजयनगर के शासक वर्ष में एक बार दरबार किया करते थे, उसी समय

---

१ आर्के० सर्वे० रिपोर्ट० १९०७-८ पृ० २३७

२ ईश्वरीप्रसाद--मिडिवल इंडिया पृ० ४४२

३ वही ,, ,,

४ मैसूर आर्के० रिपोर्ट १९१३ पृ० ४८; एपि० कर० भा० १०; पृ० १६४; मैसर--लेख पृ० ३८

नायक लोगों के भूमि कर का हिसाब होता था तथा अन्य आवश्यक कार्यों पर उनकी सलाह ली जाती थी। जब राजा यात्रा करने जाता था, उस समय भी नायकों की सारी कठिनाइयों को वह सुना करता था। एक नायक की शासन-अवधि प्रायः पांच वर्ष की होती थी[1]। लेखों से ज्ञात होता है कि नायक का पद वंशपरम्परागत होता था[2]। नायकों को 'मण्डलेश्वर' की भी पदवी दी जाती थी। संगम के पुत्र पहले 'मण्डलेश्वर' का कार्य करते थे। रामराय भी पहले अरग राज्य का नायक था[3]। सदाशिव केलेड़ीगल का नायक बनाया गया था। तालिकोट के युद्ध के पश्चात् नायक स्वाधीन होने लगे और वे राजा (केन्द्रीय सरकार) की पर्वाह न कर 'राजाधिराज-राजपरमेश्वरवीरप्रतापश्री देवमहाराज' की महान् पदवी धारण करने लगे[4]। इससे प्रतीत होता है कि तालिकोट के बाद नायकों ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और वे प्रांतों के स्वाधीन शासक-कर्ता बन गए।

ग्राम-शासन

प्रांतीय नायकों को अधिकार था कि 'नाडू' तथा ग्राम के सुप्रबंध के लिए अधिकारी व्यक्ति को नियुक्त करें। नाडू के अधिकारी का कार्य केवल निरीक्षण का होता था[5]। उसका कोई विशेष कार्य न था। वह समस्त ग्रामों के कार्य का निरीक्षण किया करता था। ग्राम के प्रबन्ध के लिए एक अधिपति नियुक्त किया जाता था जिसका पद वंशक्रमागत होता था[6]। प्रांत का गवर्नर कार्यकर्ता को नियुक्त करता था[7]। ग्राम की व्यवस्था के लिए एक सभा होती थी जिसके सभासदों की संख्या निश्चित न थी। उस सभा की सहायता से गांव के सभी कार्य सम्पन्न किये जाते थे। ज़मीन के झगडे को तय करना, दण्ड देना, गांव

---

१ एपि. कर. भा. ८ पृ. १२। २ वही भा. ७ पृ. २७।
३ वही भा. ८ पृ. १८४। ४ वही भा. ८ पृ. १२६।
५ ए. इंडि. भा. १४ पृ. ३१३। ६ एपि. कर. भा. १२ पृ. ६२।
७ वही भा. ६ पृ. ४३।

के कर्मचारियों को नियुक्त करना तथा रक्षा का प्रबन्ध आदि कार्य सभा किया करती थी। जैसा पहले बतलाया गया है कि लगातार तीन वर्ष तक भूमि-कर न देने वाले आदमी की भूमि राजकीय सम्पत्ति हो जाती थी। राजा उस भूमि को ग्राम-सभा को दे देता था। सभा उसे नीलाम किया करती या बेंच देती थी। यह आय गांव के प्रबन्ध के लिए व्यय की जाती थी। जुर्माने के रूप में मिला रुपया मन्दिर के लिए दे दिया जाता था। गांव के अधिकारी कभी-कभी दूसरे व्यक्ति को भी रुपया उधार दिया करते थे जिससे गांव में तालाब, कुआँ अथवा नहर तैयार की जाती थी। गांव कई प्रकार के होते ने। कुछ गांव तो मन्दिर की पूजा के निमित्त दे दिये जाते थे, जिनको 'देवदेय' ग्राम कहते थे। कुछ गांव ब्राह्मणों को दिया जाता था, जो 'अग्रहार' के नाम से पुकारा जाता था तथा कुछ ग्राम सेनापति को वेतन के रूप में दे दिया जाता था। इन ग्रामों का प्रबन्ध किसी व्यक्ति या समिति द्वारा किया जाता था। 'देवदेय' या 'अग्रहार' ग्राम में सब प्रकार के कर वसूल करने का अधिकार उसके स्वामी को दिया जाता था, परन्तु राजकीय भूमि-कर परोपकार के कार्य में व्यय किया जाता था। उस ग्राम में लगान बढ़ाने या 'विष्टी' लगाने का अधिकार ग्राम-सभा को न होता था[१]। उस ग्राम के निवासी पुलिस कर से भी मुक्त कर दिये जाते थे[२]।

ग्राम की ज़मीन की सीमा निर्धारित करने का अच्छा प्रबन्ध था। भूमि या खेतों के किनारे पर पेड़ लगा दिये जाते थे। सीमा पर वामन की मूर्त्ति रख दी जाती थी[३] या प्रस्तर पर सूर्य तथा चन्द्रमा की आकृति बना दी जाती थी[४]। कृष्णदेव राय के समय में गरुड़-मूर्ति सीमा पर स्थापित की जाती थी[५]।

---

१ एपि० रि० १९१५। २ मैसूर आर्के० रि० १९२३ पृ० ७४

३ नेलोर का लेख भा० ३ पृ० १४७; भा० १ पृ० ११७

४ वही पृ० ५। ५ ज० बं० एशि० सो० भा० १२ पृ० ३६६

गाँव का प्रबन्ध करने के लिए मुख्यतः तीन कार्यकर्ता नियुक्त किये जाते थे--(१) लेखक (२) पुलिस (३) आयगर। पुलिस को 'कायस' तथा लेखक को 'सभोग' का नाम दिया गया था[1]। इनके अतिरिक्त ग्राम में ज्योतिषी, गौड़, पुरोहित, बेगार, आदि लोगों की भी सहायता ली जाती थी।

गांव की सभा का अन्य कार्यों के अतिरिक्त भूमि-रक्षा का भी महत्त्वपूर्ण काम था। शासक ज़मीन को दान में दिया करता था। वह भूमि ग्राम-सभा की देख-रेख में रहती थी। कर वसूल करके उसको उचित प्रकार से व्यय करने का कार्य ग्राम-सभा करती थी। जब भूमि दान की जाती तो उस का पूरा ब्यौरा ग्राम के रजिस्टर में लिखा जाता था[2]। उस भूमि का पूर्व इतिहास, भूमि की प्रकृति, जोतने वाले कृषक का नाम, और भूमि का माप आदि लिखा जाता था। तत्पश्चात् शासक के प्रतिनिधि, गाँव के मुखिया तथा गवाहों के सामने वह ज़मीन नीलाम की जाती या बेची जाती थी। भूमि को बेंचने के बाद खरीदने वाले का नाम, गवाहों के हस्ताक्षर, लगान की दर आदि बातों को लिखकर प्रांत के नायक के पास स्वीकारार्थ भेज दिया जाता था[3]। यदि किसी मंदिर के लिए भूमि दी जाती तो नायक के कार्यालय में उसका लेखा रहता था। ग्राम-सभा को ज़मीन इस शर्त पर दी जाती थी कि उसका दसवाँ भाग राजा को दिया जायेगा और शेष कर मंदिर तथा तालाब के निर्माण में व्यय किया जायेगा[4]। ग्राम-संस्था सब बातों का वार्षिक विवरण शासक के पास भेजा करती थी।

विजयनगर की शासन-प्रणाली का वर्णन सामंतों के विवरण के बिना

---

१ एपि० रिपो० १९१६ पृ० १४३। वही १९१४ पृ० ८९

२ नं० ५४४ आफ १९११

३ मैसूर आर्क० रि० १९११ पृ० ६०

४ एपि० कर० भा० ५ भूमिका पृ० ३

पूरा नहीं कहा जा सकता। ये नायक साम्राज्य की उन्नत दशा में राजभक्त थे परन्तु विजयनगर के शक्ति हीन होते ही इन नायकों ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इन में तंजौर, तिनेवर्ली, मदुरा तथा इकेरी के नायक-गण प्रधान थे। सर्व प्रथम नायक शासक के द्वारा नियुक्त किये जाते थे। परन्तु समयान्तर में उनका पद वंशानुगत हो गया। उनके विद्रोही होने पर शासक दण्ड दिया करता था। रामराय ने अपने पुत्र विट्ठल को भेज कर विश्वनाथ नायक की सहायता से ट्रावनकोर राजा को परास्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु संधि हो गई। मदुरा के नायकों ने पुर्तगाली लोगों से सन्धि कर के मित्रता स्थापित कर ली। नायकों ने अपना सिक्का चलाया। तात्पर्य यह है कि गृह तथा वाह्य नीति में नायक परम स्वतंत्र हो गए थे और उन्होंने विजयनगर से सम्बन्ध तोड़ दिया था।

सामंत

—o—

: ७ :

साहित्य का विकास

किसी देश के साहित्य की उन्नति उस देश के निवासियों की विचार-धारा और उनके जीवन के विकास की द्योतिका होती है। साहित्य जीवन का दर्पण है, अतः किसी देश या राष्ट्र की संस्कृति उसके साहित्य से जानी जाती है। विजयनगर-कालीन साहित्य इतना विशाल तथा विभिन्न प्रकार का है कि उसका विवेचन करना दक्षिण-भारत के सम्पूर्ण साहित्य और धार्मिक जीवन का इतिहास लिखना है। भारतवर्ष में धर्म तथा साहित्य का इतना घनिष्ट सम्पर्क रहा है, जिसकी समता संसार के इतिहास में नहीं मिल सकती। एक के इतिहास को समझने के लिए दूसरे का वृत्तांत जानना आवश्यक हो जाता है। विजयनगर काल में शैवों, वैष्णवों तथा जैनियों ने अपने अपने धर्म के प्रचार के लिए ग्रंथ लिखे। इन्होंने इन ग्रन्थों में अपने धर्म की पुष्टि की और विरोधी मत का खण्डन किया। इसके अतिरिक्त राजा, मंत्री तथा प्रजा ने भी साहित्य के भण्डार को बढ़ाया। राजा शासक होने के अतिरिक्त लेखक भी थे। राजाओं ने विद्वानों की सहायता की और दान द्वारा उनको प्रोत्साहन दिया। ये राजा कवियों के आश्रय-दाता ही नहीं थे, बल्कि स्वयं कवि और लेखक थे। इस प्रकार साहित्य की उन्नति इस काल में पूर्ण रूप से हुई।

विजयनगर कालीन साहित्य को जानने के लिए तत्कालीन समस्त साहित्य—कन्नड़, तेलुगु और तामिल की वृद्धि का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। उस समय दक्षिण में कन्नड़, तेलुगु तथा संस्कृत-भाषा में ग्रंथ लिखे गये। इस प्रकार इन तीनों भाषाओं के साहित्य की प्रचुर वृद्धि इस समय में हुई।

कन्नड़-साहित्य की उन्नति

विजयनगर से पूर्व होयसल-वंश के राजा वीर बल्लाल तृतीय के समय में कन्नड़-साहित्य का विकास आरम्भ हो गया था। राजा ने कन्नड़ कवियों को आश्रय दिया। बल्लाल के समय में भरतस्वामी नामक विद्वान् वर्तमान थे जिन्होंने 'सामवेद-संहिता' पर भाष्य लिखा। विद्याचक्रवर्ती नामक साहित्य के मर्मज्ञ ने 'काव्य-प्रकाश' पर टीका लिखी तथा 'रुक्मिणी-कल्याण' नामक काव्य-ग्रंथ की रचना की। इस राजा के राज्य में कन्नड़-भाषा की विशेष उन्नति हुई। धर्म प्रचार के लिए जैन कवियों ने देशी भाषा कन्नड़ को अपनाया। इन लोगों ने संस्कृत छंदों का समावेश देशी छंदों के स्थान पर किया। धर्म के प्रचार की बुद्धि से जैन, शैव तथा ब्राह्मण धर्मावलम्बियों ने कन्नड़ भाषा को खूब अपनाया। पम्पा, बाहुबली आदि जैन कवियों को इस भाषा में अधिक सरलता मालूम होती थी। अतएव इन्होंने धर्मनाथ (पन्द्रहवें तीर्थंकर) की जीवनी चम्पू-शैली में लिखी। नेमिनाथ का चरित प्रायः बहुतों ने लिखा। मधुर एक प्रसिद्ध जैन कवि था जो हरिहर के मंत्री के दरबार में रहता था। विजयनगर में रत्नाकर सब से बड़ा जैन कवि हो गया है। उसने दस हजार छंद कन्नड़ भाषा में लिखे। उनमें आदिनाथ के पुत्र भरत का वर्णन किया गया है तथा संसार की अनेक बातो का वर्णन करते हुए विशेषतया योग का विवरण प्रस्तुत किया गया है। जनता में जैन-धर्म में विश्वास पैदा करने के लिए तरह-तरह की कहानियाँ लिखी गईं। सन् १४२४ के समीप भास्कर ने 'जीवनधर-चरित्र' नामक ग्रंथ लिखा। कल्याण-कीर्ति का 'ज्ञान-चन्द्राभ्युदयम्' नामक पुस्तक प्रसिद्ध है। विद्यानन्द तथा यशकीर्ति आदि जैन पंडितों ने कन्नड़ भाषा में अनेक ग्रंथों पर टिप्पणी लिखी।

जैनियों की तरह वीर-शैवों ने भी कन्नड़ को अपनाया। सन् १३३६ ई० से लेकर १५६५ ई० के लगभग दो शैव केन्द्रों में साहित्यिक कार्य होता रहा। शिव-पुराण से कथानक लेकर कन्नड़ में कहानियाँ लिखी गईं। वीर-भद्र तथा मल्लिकार्जुन के लिखे ग्रंथ उल्लेखनीय हैं, जिनमें

भगवान् शिव की कृपा, स्वर्ग तथा नरक की बातों का वर्णन किया गया है। हरिहर ने 'लिङ्ग-पुराण' से शैव साधुओं का जीवन-चरित जनता के लिए देशी भाषा में लिखा था। चामरस लिखित 'प्रभु-लिङ्ग-लीला' नामक पुस्तक वीर-शैवों का प्रसिद्ध ग्रंथ माना जाता है। विजयनगर राज्य से सम्बन्धित शैवों में देवराज, रामेन्द्र तथा चन्द्र ने देशी भाषा में कवितायें लिखीं। कई एक खण्ड-काव्य कन्नड़ भाषा में लिखे पाए जाते है। 'रामनाथ-विलास' तथा 'राजेन्द्र-विजय' नामक कन्नड़ भाषा के काव्य-ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। धर्म के प्रचारार्थ शैवों ने अनेक रचनाओं पर टिप्पणियाँ लिखीं। जहा तक उनका वश चला पुराण-विज्ञान (Mythology) को भी उन्होंने अछूता न छोड़ा और उस विषय की पुस्तकें भी कन्नड़ में लिखी गईं। वीर-शैवो ने नया तरीका निकाला। बासव का अनुकरण जनता ने खूब किया। प्राचीन चम्पू काव्य लिखने का ढंग जाता रहा। जैनियों ने वैराग्य तथा शैवो ने भक्ति का खूब प्रचार किया। भक्तों ने तथा भ्रमण करने वाले भाटों ने कन्नड़ भाषा में गाना गाया और जनता में जागर्ति पैदा की।

वैष्णव-साधुओं का हाथ कन्नड़ साहित्य की वृद्धि में कुछ कम न था। हिन्दू-धर्म के तीनों प्रधान ग्रंथ-रामायण, महाभारत तथा भागवत के विषय को लेकर कन्नड़ में वैष्णव साधुओं ने पुस्तकों की रचना की। ने ग्रन्थ भावानुवाद के रूप में जनता के सामने रखे गये। सुकुमार भारती ने महाभारत का अनुवाद कन्नड़ में किया। कुमार वाल्मीकि ने रामायण लिखी। नारायण कवि ने भागवत का भावानुवाद किया। सदानन्द योगी ने काव्य लिखा। इसके अतिरिक्त वैष्णवों ने कहानियाँ भी लिखीं। भगवन्-नाम-कीर्तन के अनेक पद्य कन्नड़ में पाये जाते हैं। श्रीपाद, पुरन्दर तथा कनकदास प्रसिद्ध कीर्तन करने वाले हो गए हैं। वर्तमान समय में भी उनके गीत कर्नाटक में रेडियो पर या ग्रामोफोन द्वारा गाए जाते हैं। इन लोगों ने संगीत में एक नई शैली निकाली जो 'कर्नाटक शैली' के नाम से पुकारी जाती है।

धार्मिक-साहित्य के अतिरिक्त लौकिक-ज्ञान की भी पुस्तकें कन्नड़ में पाई जाती हैं। उस समय अन्य व्यक्तियों ने अलंकार, ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयों पर कन्नड़ में पुस्तकें लिखीं। हरिहर के शासन-काल में मंगराज ने अपनी पुस्तक में विष, उसका प्रभाव तथा विष-नाशक पदार्थों-का वर्णन किया है। दण्डी रचित "काव्यादर्श" का अनुवाद माधव ने 'माधवालंकार' नामक ग्रंथ में किया है। इस प्रकार विजयनगर-काल में कन्नड़ साहित्य की वृद्धि के लिए जैनियों, शैवों तथा वैष्णवों ने प्रधान रूप से हाथ बटाया।

यद्यपि जनता ने देशी भाषा कन्नड़ को अपनाया तथा सारे धार्मिक नेताओं ने धर्म-प्रचार इसी भाषा द्वारा किया तो भी तेलुगु-साहित्य की श्री-वृद्धि होती रही। इस साहित्य की पर्याप्त उन्नति विजयनगर काल में हुई। सर्व प्रथम संगम-वंश वालों ने कन्नड़-भाषा पर अधिक जोर दिया, इसका भण्डार भरा गया परन्तु विजयनगर-शासक तेलुगु-साहित्य की ओर से उदासीन न थे। बुक्क ने तेलुगु कवियों को भूमि दान में दी। राजाश्रय पाकर इन लेखकों तथा कवियों ने खूब परिश्रम से काम किया। राजा के अधीनस्थ नायकों ने भी कवियों को आश्रय दिया और तेलुगु-साहित्य को अपनाया। आंध्र-जनता इन कवियों से खूब प्रोत्साहित हुई। विजयनगर के प्रत्येक राजवंश में तेलुगु कवियों को प्रचुर सम्मान मिलता रहा। सोम नामक कवि ने 'उत्तर-हरिवंश' नामक पुस्तक लिखी। बुक्क ने प्रसन्न होकर इस कवि को एक गांव 'अग्रहार' में दिया था। इस कवि की प्रशंसा निम्न-प्रकार से लेखों में पाई जाती है[1]—

तेलुगु-साहित्य

याजुषाणां वरेण्याय सकलागमवेदिने,
अष्टादशपुराणानामविज्ञातार्थवेदिने ।
अष्टभाषाकवित्वश्रीवाणीविजितसंपदे,
सोमाय नाचनां बोधेः सोमायमिततेजसे ॥

---

१ एपि. कर. भा. १० ।

चौदहवीं सदी का सब से बड़ा तेलुगु कवि नाचना सोम माना जाता है। इसलिए इसे सर्वज्ञ कहा गया है।

देवराय प्रथम के समय में 'विक्रमाङ्क-चरित' नामक ग्रंथ तेलुगु-भाषा में लिखा गया। हरिहर द्वितीय के शासनकाल में भी इस साहित्य की प्रचुर वृद्धि हुई। संगम-वंश के राजाओं के मुकाबिले में सालुव-राजाओं ने तेलुगु-साहित्य को खूब बढ़ाया और इसका साहित्य उन्नति की चरम सीमा को पहुँच गया। इस संबंध में नरसिंह सालुव का कार्य प्रशंसनीय था। राजा स्वयं विद्वान् था और कवियों का समादर करता था। 'जैमिनी-भारत' तेलुगु-साहित्य का प्रसिद्ध ग्रंथ है, जो नरसिंह को समर्पित किया गया है। इस समय से विजयनगर राज्य में इस साहित्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। अन्य सालुव तथा आरविदु राजाओं के राज्यकाल में इसका भण्डार खूब भरा गया। रामायण, महाभारत तथा पुराणों का अनुवाद किया गया। कृष्णदेव राय ने तेलुगु साहित्य की उन्नति में अच्छी तरह से हाथ बटाया। राज्य की वृद्धि व सैन्य-शक्ति की प्रबलता के साथ-साथ साहित्य की भी वृद्धि हुई। नयन कवि से लेकर कृष्णदेवराय के राजकवि पेदन तक सभी ने पुराण, महाभारत तथा रामायण का अनुवाद किया, जिससे तेलुगु साहित्य भरपूर हो गया। राजा पेदन कवि को बहुत चाहता था और इसे अपने साथ बाहर यात्रा में ले जाया करता था। कहा जाता है कि कलिङ्ग-विजय के समय भी यह राजकवि युद्ध-क्षेत्र में वर्तमान था। यह राज-दरबार के आठ कवियों—'अष्ट-दिग्गज' का मुख्य व्यक्ति था। इन कवियों के नाम इस प्रकार मिलते हैं— (१) पेदन (२) तिम्मन (३) रामभद्र कवि (४) धूर्जटि (५) मल्लन (६) सूरण (७) रामराज भूषण (८) रामकृष्ण कवि।

मार्कण्डेय पुराण के कथानक को लेकर पेदन ने 'मनु-चरित' नामक काव्य-ग्रंथ की रचना की। इस कवि ने तेलुगु-साहित्य का ढांचा ही बदल दिया। यह अपने समय का सर्व श्रेष्ठ कवि था। अतः इसी के

दिखलाये मार्ग पर पीछे के कवियों ने चलना उचित समझा। इसी कारण से पेदन को 'आंध्र-कविता-पितामह' की पदवी दी गई थी।

राजा कृष्णदेव राय स्वयं महान् विद्वान् था। अन्य भाषाओं के अतिरिक्त तेलुगु-भाषा में भी इसने 'आमुक्त-माल्यम्' नामक विद्वतापूर्ण ग्रंथ लिखा है। इस ग्रन्थ के चौथे सर्ग में राजा ने राजनीति-शास्त्र का विशद विवेचन किया है। इसमें राजनीति के अतिरिक्त कई विषयों पर प्रकाश डाला गया है। व्यापार तथा दक्षिणी-भारत के वैष्णव रीति-रिवाजों का भी वर्णन इसमें पाया जाता है। इसके मंत्री गोप ने 'कृष्ण-अर्जुन सम्वाद' नामक-ग्रंथ लिखा। सन् १५७० ई० में 'वसु-चरितम्' को रामराज ने तैयार किया। सूरण कवि न श्लेषात्मक काव्य-ग्रन्थ लिखा जिससे राम-चरित तथा कृष्ण-चरित का वर्णन साथ ही साथ किया गया है। 'प्रभावती-प्रद्युम्न' उसका दूसरा ग्रंथ है जो पुराण के एक कथानक को लेकर लिखा गया है। तेलुगु में कन्नड़ तथा ईरानी भाषा के शब्द मिलते हैं जो विदेशी भाषाओं के प्रभाव को बतलाते हैं। विजयनगर राज्य की अवनति तालिकोट के युद्ध के बाद आरम्भ हो गई थी परन्तु शासकों ने साहित्य और संस्कृति की वृद्धि तथा रक्षा की ओर अपना ध्यान बनाए रखा। तेलुगु-साहित्य की वृद्धि सदा होती रही।

विजयनगर शासकों के पश्चात् नायक लोगों के समय में भी इस साहित्य की उन्नति हुई और विशेषतः मदुरा तथा तंजोर के नायक-शासकों ने इस की वृद्धि में हाथ बंटाया। यही कारण है कि तत्कालीन साहित्य में नायकों का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। नायक राजा संगीत के बहुत प्रेमी थे। अतएव उनकी संगीतात्मक तथा नाटकीय-प्रवृत्ति को देख कर कवियों ने तेलुगु-भाषा में काव्य और नाटक लिखा। 'यक्ष-ज्ञान' नामक ग्रन्थ नायक-कालीन साहित्य का प्रमुख ग्रंथ माना जाता है। तंजौर के नायक रघुनाथ ने स्वयं दो सौ नाटकों की रचना की। वे सब 'यक्ष-ज्ञान' की नकल पर लिखे गए थे। तेलुगु-साहित्य में उस समय की श्रृंगारिक भावनायें पायी जाती हैं। तत्कालीन साहित्य स्त्री-पुरुषों के प्रेम की

वार्त्ता से भरा पड़ा है। मदुरा में गद्य-साहित्य की प्रधानता रही। विजय-नगर राजाओं तथा नायकों के साहित्य में केवल इतना अन्तर था कि विजयनगर-कालीन साहित्य को तैयार करने वाले लेखक या कवि ब्राह्मण थे, लेकिन नायक-कालीन साहित्य-क्षेत्र में सभी जाति, वर्ग, और श्रेणी के लोग काम करते थे। स्त्री, पुरुष, धनी, गरीब तथा ब्राह्मणेतर लोगों ने भी साहित्य-सृष्टि में सहयोग दिया और इसके भण्डार को भरा। इस प्रकार आन्ध्र प्रान्त में तेलुगु-साहित्य की उन्नति हुई। राजा, नायक तथा प्रजा सभी विद्वान् और लेखक थे। सब को विद्या से प्रेम था। कवियों तथा लेखकों की प्रतिभा के प्रसाद से ही तेलुगु-साहित्य उस समय उन्नति की पराकाष्ठा को पहुंच गया था।

संस्कृत-साहित्य

यह कहा जा चुका है कि इस राज्य की स्थापना स्वधर्म और स्वराज्य को लेकर हुई थी, अतएव हिन्दू-संस्कृति के आधार-स्वरूप तथा धार्मिक-ग्रन्थों के भण्डार संस्कृत-साहित्य को विजयनगर के राजाओं ने खूब अपनाया। इन्होंने होयसल-वंश की परिपाटी को चलाया। इस काल में धर्म, दर्शन, आचार, रीति तथा, व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना पाई जाती है विजयनगर राजाओं ने देशी भाषा और तेलुगु-साहित्य के अतिरिक्त देववाणी को भी आश्रय दिया। इन राजाओं ने विद्वानों को आश्रय प्रदान कर संस्कृत-साहित्य की वृद्धि की। यह कहना कठिन है कि किस श्रेणी के लोगों ने इस साहित्य की उन्नति में हाथ नहीं बंटाया? जैन, वैष्णव, वीर-शैव, राजा तथा प्रजा सभी वर्णों तथा जाति के लोगों ने इसमें सहायता की। प्रत्येक वंश के समय में संस्कृत की उन्नति होती रही। संगम-वंश के राज-काल में अनेक लेखक तथा कवियों ने संस्कृत ग्रन्थों की रचना की,। संस्कृत साहित्य की अपनी बहुमुखी प्रतिभा से विभूषित करने वालों में माधवाचार्य (विद्यारण्य) का नाम सर्व प्रथम लिया जाता है। इन्होंने व्यवहार-माधव, विवरण-प्रमेय-संग्रह, जीवनमुक्ति-विवेक, मनुस्मृति-व्याख्या, पंचदशी, आयुर्वेद-निदान आदि अनेक ग्रंथ लिखे। स्थानाभाव के कारण प्रत्येक का

विवेचन यहां प्रायः असंभव एवं अप्रासंगिक होगा। भोगनाथ और गोपाल-स्वामी भी इस समय के प्रकाण्ड विद्वान् थे। भोगनाथ के रचित ग्रंथों में रमोल्लास, त्रिपुर-विजय, उदाहरण-माला, महागणपति-स्तव, शृङ्गार-मंजरी गौरीनाथ-स्तव आदि ग्रन्थों का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जयतीर्थ नामक पंडित ने बृहद् तथा महत्त्वपूर्ण तेईस पुस्तकें लिखीं। न्याय-दीपिका, प्रमाण-पद्धत्ति और पद्यमाला इसके मुख्य ग्रंथ समझे जाते हैं। इसी विद्वान् के प्रिय शिष्य व्यासतीर्थ ने उपनिषदों पर टीका लिखी है।

विजयनगर की स्थापना के संबंध में माधव मंत्री का भी नाम सदा लिया जाता है। संस्कृत-साहित्य की उन्नति में भी इनका पर्याप्त हाथ रहा।

माधवाचार्य

माधव तथा उनके भ्राता सायण राजनीतिज्ञ तथा प्रांतों के शासन में सहायक होते हुए भी बहुत बड़े विद्वान् थे[१]। जब तक वैदिक-साहित्य रहेगा तब तक सायण का नाम अमर रहेगा। प्राचीन-भारत में भी ऐसा कोई पण्डित न हुआ जिसने वेदों की टीका लिख कर जनता में उनके प्रचार करने का बीड़ा उठाया हो। विजयनगर-काल की यह महान् विशेषता है कि इसी समय में वेदों पर भाष्य लिखे गये। वेदों के कठिन और गूढ़तम मन्त्रों का सरल अर्थ जनता तक पहुँचाया गया। इसका श्रेय सायणाचार्य को ही है। सायण के भ्राता माधव भी प्रसिद्ध विद्वान् थे। माधवाचार्य ने अनेक ग्रंथों की रचना की है। इनके ग्रंथ दो विभागों में बांटे जा सकते हैं। (१) मीमांसा और (२) धर्मशास्त्र। इनके नाम से धर्मशास्त्र में बहुत-सी पुस्तकें मिलती हैं परन्तु इसमें सन्देह है कि इन सारी पुस्तकों की रचना माधव ने की थी या नहीं[२]। धर्मशास्त्र में इनके निम्न-लिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—(१) पराशर-माधव (२) काल-निर्णय (३) दत्तक-मीमांसा (४) गोत्र प्रवर-निर्णय (५) मुहूर्त-

---

१ विशेष वर्णन के लिए देखिये—
पं० बलदेव उपाध्याय, आचार्य सायण और माधव।

२ काने—हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र भाग १ पृ० ७२३

माधव (६) स्मृत-संग्रह तथा (७) व्रात्य-स्तोम-पद्धत्ति आदि प्रसिद्ध हैं[1]। पराशर-स्मृति की टीका समय समय पर लिखी गई। याज्ञवल्क तथा कौटिल्य ने भी स्मृति-कर्ता पराशर का नामोल्लेख किया है। परन्तु 'पराशर-माधव' से पूर्व कोई भी प्रामाणिक टीका नहीं मिलती। माधवाचार्य कृत टीका का नाम ही 'पराशर-माधव' है। आचार तथा प्रायश्चित्त का विभाग तो पहले से ही था। परन्तु व्यवहार का वर्णन न होते हुए भी माधव ने इसका वर्णन किया है--

पराशरस्मृतिः पूर्वैः अव्याख्याता निबन्दृभिः।
मयाऽतो माधवार्येण तद् व्याख्यायां प्रयत्यते॥ (उपक्रम)

'पराशर-माधव' के पश्चात् काल निर्णय लिखा गया था।

व्याख्याय माधवाचार्यो, धर्मान् पाराशरानथ।
तदनुष्ठानकालस्य, निर्णयं वक्तुमुद्यतः॥
(काल-माधव)

माधव ने ऋतुओं का विवेचन, तिथि का अर्थ, नक्षत्र आदि का प्रामाणिक तथा उपयोगी वर्णन इस पुस्तक में किया है। कर्म-मीमांसा विषयक पुस्तक लिखने से माधव का नाम और प्रसिद्ध हो गया। विजयमगर-शासक बुक्कराय ने भरी सभा में माधव की प्रशंसा की। 'जैमिनीय-न्याय-माला-विस्तर' मीमांसा-विषय का प्रसिद्ध ग्रंथ है। माधव ने इस पुस्तक में जैमिनि सूत्रों की बोधगम्य टीका लिखी, जिसका नाम 'न्यायमाला' रखा गया। इस पुस्तक के देखने से ज्ञात होता है कि माधव का मीमांसा जैसे गहन-विषय में भी प्रवेश था। निम्न श्लोक से उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है—

स खलु प्राज्ञः जीवातुः सर्वशास्त्रविशारदः।
अकरोत् जैमिनिमते न्यायमालां गरीयसीम्॥
तं प्रशंस्य सभामध्ये, वीरः श्रीबुक्कभूपतिः।
कुरु विस्तारं तस्यास्त्वमिति माधवमादिशत्॥

---

1 बलदेव उपाध्याय--भारतीय-दर्शन।

इसके अतिरिक्त माधव ने वेदान्त विषयक ग्रंथ भी लिखे। विवरण-प्रमेय-संग्रह, अनुभूति-प्रकाश तथा पञ्चदशी पुस्तकों की रचना कर के माधवाचार्य ने वेदान्त के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल भाषा में समझाया है। इसके अतिरिक्त माधव के द्वारा शंकराचार्य का जीवन-चरित्र 'शंकरदिग्विजय' नामक पुस्तक रचित बतलाई जाती है। माधवाचार्य ने अपने स्वतंत्र दार्शनिक मत का स्व-रचित ग्रंथों में प्रतिपादन किया है। इन्होंने गृहस्थ जीवन में रहकर धर्म तथा मीमांसा के विषय का बोध कराया तथा चौथे आश्रम में, संन्यास लेने पर अद्वैत वेदान्त के मर्म को सब के सन्मुख सरल भाषा में रखा। संसार के लोगों को जीवन का आदर्श-मार्ग बतलाकर, मानव-मात्र को सुखी बनाना ही इनके ग्रन्थों का मुख्य ध्येय है। यही नहीं माधवाचार्य ने विजयनगर-राज्य के शासन-प्रबंध में भी महती महायता पहुंचाई। इस राज्य की स्थापना में भी आपका बहुत हाथ था। प्रधान-मंत्री के महान् पद को आपने वर्षों तक सुशोभित किया। अतएव मंत्री के कार्यभार को संभालते हुए साहित्य की इतनी अधिक सेवा करना माधवाचार्य की बहुमुखी प्रतिभा का ही कार्य था।

सायणाचार्य

माधव के दूसरे भ्राता सायण का नाम तो संसार प्रसिद्ध है। इन्होंने कम्पण तथा हरिहर द्वितीय का मन्त्री-पद ग्रहण कर विजयनगर-शासन में प्रचुर परिवर्तन किया। इन्होंने अपने जीवन का अधिक भाग राज्य-प्रबन्ध में ही व्यतीत किया। इसके अतिरिक्त वैदिक-संस्कृति के प्रसार के लिए सायण ने अवर्णनीय तथा असीम उत्साह से कार्य किया। अपने जीवन के अंतिम समय के कुछ वर्षों में सायण ने वेदभाष्य लिख कर इनका उद्धार किया। सायण का नाम वेदों साथ अमर हो गया है। वेद-भाष्यो की रचना के सम्बन्ध में एक रोचक कथानक प्रसिद्ध है। विजयनगर के राजा बुक्काराय के ध्यान में यह बात आई कि आर्य-धर्म के प्राणभूत तथा हिन्दू-संस्कृति के आदि-ग्रन्थ वेदों का प्रामाणिक अर्थ सुन्दर ढंग से लिखा जाय।

हिन्दू-संस्कृति की उन्नति की भावना से प्रेरित होकर तथा अपने इस

उस विचार को कार्य रूप में परिणित करने के लिए बुक्कराय ने अपने मन्त्री माधवाचार्य से विचार-विनिमय किया। बुक्क ने अपने विद्वान् मन्त्री माधवाचार्य से वेदों पर भाष्य लिखने का आग्रह किया। माधवाचार्य ने इस भार को अपने ऊपर न लेकर अपने कनिष्ठ भ्राता सायण का नाम राजा के सामने उपस्थित किया। उनका कहना था कि सायण वेदार्थ के ज्ञाता हैं और इस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न कर सकते हैं। वह वेदों के गूढ़ से गूढ़ अभिप्राय तथा रहस्य को जानते हैं। माधवने बुक्क से प्रार्थना की कि वेद-भाष्य लिखने का कार्य सायण को ही दिया जाय। अतएव बुक्कराय ने इस भाष्य-रचना का भार सायण के ऊपर छोड़ दिया। सायण ने तैत्तिरीय संहिता के भाष्य की उपक्रमणिका में इसका उल्लेख इस प्रकार से किया है:—

वेद भाष्यों की रचना की कथा

> **इत्युक्तः माधवार्येण वीरः बुक्कमहीपतिः।**
> **आदिशत् सायणाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने॥**
> **ये पूर्वोत्तरमीमांसे ते व्याख्यायातिसंग्रहात्।**
> **कृपालुः सायणाचार्यो वेदार्थं वक्तुमुद्यतः॥**

सायणाचार्य मंत्री-पद स्वीकार करने के कारण वेलूर प्रांत के शासन में लगे रहे। विजयनगर के अन्य राजाओं से इनका परिचय न था, इसी लिए बुक्कराय से भी सायण अपरिचित थे। सायण की अगाध-विद्वत्ता से परिचित न होने के कारण ही बुक्क ने माधवाचार्य से वेद-भाष्य लिखने के लिए प्रस्ताव किया था [1]। सायण ने अपने जीवन के अंतिम चौबीस वर्षों में इस कार्य का सम्पादन किया। प्रायः लोगों को यह संदेह होता है कि साम्राज्य के प्रबंध में व्यस्त व्यक्ति कैसे इतना विद्वत्तापूर्ण महान् कार्य कर सकता है। परन्तु सायण की अगाध विद्वत्ता और अलौकिक प्रतिभा के लिए यह काम कुछ कठिन न था।

---

१ पं० बलदेव उपाध्याय—आचार्य सायण और माधव

सायण के द्वारा रचित ग्रंथों तथा भाष्यों के वर्णन के पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि सायण से पूर्व-भाष्यकारों का संक्षिप्त वर्णन यहां किया

वेदों के भाष्यकार

जाय। वेदों की जटिल भाषा तथा प्राचीनता के कारण इनका अर्थ समझना कठिन था। वेदों को समझने के लिए सर्व प्रथम ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई। उनको समझने के लिए निरुक्त तथा व्याकरण से भी सहायता मिलती है। सायण के पूर्व-भाष्यकार वेंकटमाधव ने वेद-ज्ञान के लिए ब्राह्मण तथा आरण्यक की नितांत आवश्यकता बतलाई है। ब्राह्मणों के पश्चात् निघण्टु तथा इन्हीं निघण्टुओं की विस्तृत टीका-के रूप में निरुक्त लिखा गया। यास्क के निरुक्त द्वारा वेदार्थ को जानने में सरलता तो अवश्य हुई परन्तु भाष्य की आवश्यकता बनी रही। भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग-गुप्तकाल-में वेदों के भाष्य लिखने का महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ हुआ था। इसी समय से वेदों पर भाष्य लिखने का अनेक आचार्यों ने प्रयास किया। कुण्डिन ने तैत्तिरीय संहिता पर भाष्य लिखा। भवस्वामी व गुहदेव आठवीं सदी में आविर्भूत हुए। वलभी के निवासी स्कन्दस्वामी ने ऋग्वेद पर भाष्य लिखा। यास्क के निरुक्त पर इन्होंने टीका लिखी। इनका ऋग्भाष्य अत्यन्त विशद ग्रंथ है। नारायण ने ऋग्वेद के कुछ मण्डलों पर टीका लिखी है। माधव या वेंकट माधव ने सन् ११५० ई० में ऋक् संहिता पर अपना भाष्य लिखा। वैष्णव सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य, द्वैतवाद के प्रवर्तक मध्वाचार्य ने ऋग्वेद पर माध्वभाष्य लिखा। इन्होंने इसके आधिभौतिक, आधिदैविक अर्थ के अतिरिक्त आध्यात्मिक अर्थ भी किया है। इनका दूसरा नाम आनन्दतीर्थ भी है। इनका समय सन् १२५५ ई० से १३३५ ई० तक माना जाता है। भरतस्वामी ने होयसल नरेश रामनाथ के राज्यकाल में (सन् १२७२ से १३१० ई० तक) भाष्य लिखा जो बहुत प्रसिद्ध है। माधव ने भी सामवेद पर भाष्य लिखा। इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने वेदार्थ को समझाने के लिए पृथक्-पृथक् भाष्य लिखे।

यद्यपि बुक्कराय ने वेदभाष्य लिखने का आदेश सायण को दिया था, परन्तु यह कार्य कुछ कम कठिन न था। सायण एक व्यवहार कुशल मन्त्री तथा प्रकाण्ड विद्वान् थे। जिस प्रकार इनके कार्य क्षेत्र अनेक थे उसी प्रकार इनकी विद्वता भी सर्वाङ्गीण थी। वेदों के गूढ़ार्थ प्रतिपादन से लेकर पुराणों के व्यापक वर्णन तक; अलकारों के विवेचन से लेकर पाणिनि-व्याकरण की विशद व्याख्या तक; यज्ञतंत्र के मर्मोद्घाटन से लेकर वैद्यक के उपयोगी और व्यावहारिक ज्ञान की मीमासा तक--सर्वत्र सायण की अप्रतिम प्रतिभा की पहुँच थी और इसी कारण वे जनता के तथा विद्वानों के आदर के पात्र थे। संस्कृत साहित्य के अनेक विभागों को सायण ने अपनी रमणीय रचनाओं से अलंकृत किया। परन्तु इनके साहित्यिक जीवन का सर्वश्रेष्ठ कार्य वेद भाष्यों की निर्मिति है। तीस वर्ष की अवस्था से लेकर जीवन-पर्यन्त इन्होंने भाष्यों के निर्माण के लिए अथक परिश्रम किया। अमात्य तथा प्रधान-मन्त्री के पद पर आसीन होकर और शासन के गुरुतर कार्यभार को सँभालने में लगे रहने पर भी सायण ग्रंथ-रचना से कभी विमुख नहीं हुए। सायण ने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया ये सभी ग्रंथ मंत्रित्व काल के ही माने जाते हैं। बुक्क भूपाल की आज्ञा से सायणाचार्य ने वेदभाष्य लिखा। संस्कृत साहित्य के विभिन्न भागों से सम्बन्धित सायण के अन्य सात ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

सायण के ग्रन्थ

(१) सुभाषित-सुधानिधि—यह पुस्तक कम्पण के राज्यकाल सन् १३४० ई० से १३४५ ई० के अन्तर्गत लिखी गई थी। इसको चार भागों में अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष में बांटा गया है। यह धर्म तथा तत्वज्ञान को समझाने वाली पुस्तक है। 'राज-चाटु-पद्धति' जो तत्कालीन विजयनगर के राजाओं के विषय में लिखी गई है, इसी ग्रन्थ का अनुकरण-मात्र है।

(२) प्रायश्चित्त-सुधानिधि—इसका दूसरा नाम 'कर्मविपाक' है। हिन्दू धर्म शास्त्र के तीन प्रधान विषयों, आचार, व्यवहार तथा प्रायश्चित्त

के अंतिम भाग पर सायण ने प्रकाश डाला है। संगम द्वितीय के राज्यकाल में जिन चार ग्रन्थों की रचना सायण ने की, उनमें प्रथम स्थान इसीको दिया गया है।

(३) आयुर्वेद-सुधानिधि—इसमें आयुर्वेद की प्रधान प्रधान उपयोगी बातों का विवेचन किया गया है।

(४) अलंकार-सुधानिधि—सायण ने इस पुस्तक में संस्कृत साहित्य के समस्त अलंकारों के लक्षण उदाहरण सहित प्रस्तुत किये हैं। इससे ज्ञात होता है कि सायण अलंकार शास्त्र के भी प्रकाण्ड पंडित थे। प्रसिद्ध विद्वान् अप्पय दीक्षित ने अपनी विख्यात अलंकार की पुस्तक चित्र-मीमांसा में इसका उल्लेख किया है।

(५) माधवीया धातु-वृत्ति—सायणाचार्य ने इसकी रचना की, जैसा कि नीचे के श्लोक से स्पष्ट है—

तेन मायणपुत्रेण सायणेन मनीषीणा।
आख्याय माधवीयेन धातु-वृत्तिः विरच्यते॥

परन्तु अपने अग्रज माधव के प्रति प्रगाढ़ स्नेह तथा भक्ति के कारण इस ग्रन्थ का नाम उन्हीं के नाम पर रखा। माधवीया-धातुवृत्ति नामकरण के कारण विद्वान् लोग इसे माधव की रचना मानते हैं; परन्तु यह कल्पना अप्रमाणिक है। इस ग्रन्थ की रचना सायण ने संगम द्वितीय के राज्य में की।

६—पुरुषार्थ-सुधानिधि—बुक्क भूपाल का माधव को आदेश, माधव का सायण की योग्यता के बारे में राजा को उत्तर और उनके कहने से भाष्य रचना के कार्य को करना इत्यादि घटनाओं का संग्रह इस ग्रन्थ में है। सायण को विद्वानों में श्रेष्ठ कहा गया है—

"तं सर्वविद्यानिलयं तत्वविद् बुक्कभूपतिः।
सत्कथाकौतुकी हर्षादपृच्छत् राजशेखरम्॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा युक्तार्थं बुक्कभूपतेः।
प्रशंस्य तं मुदा युक्तो माधवः प्रत्यभाषत॥

अयं हि कृतिः नाम्ना यः सायणार्यो ममानुजः
पुराणोपपुराणेषु पुरुषार्थोपयोगिनीम् ।
\+ \+ \+ \+
सायणार्योऽग्रजेनोक्तः प्राह बुक्कमहीपतिम् ॥

(७) यज्ञ-तंत्र-सुधानिधि—सायण ने इसमें यज्ञों का वर्णन किया है। इस पुस्तक की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि हरिहर द्वितीय के शासन-काल में मंत्री-पदस्थ होकर सायण ने इस ग्रंथ की रचना की।

"इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरहरिहरमहाराजसकलसाम्राज्य धुरंधरस्य वैदिकमार्गस्थापनाचार्यस्य सायणाचार्यस्य कृतौ यज्ञतंत्र सुधानिधिः" ।

वेद-भाष्यों की रचना

सायण ने इन संस्कृत ग्रंथों की रचना के अतिरिक्त वेद-भाष्य लिखा जो इनकी सर्व प्रधान तथा सर्व श्रेष्ठ रचना है। सर्वसाधारण लोग इन्हें वेदभाष्यकार ही समझते हैं। सायण की अलौकिक विद्वत्ता व्यापक पांडित्य तथा अटूट अध्यवसाय, का सुन्दर फल हमें भाष्यों के रूप में मिलता है। 'वेद' शब्द संहिता तथा ब्राह्मणों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। जिन संहिताओं तथा ब्राह्मणों की व्याख्या सायण ने की उनके नाम निम्न प्रकार हैं[1]—

(अ) संहिता

१ तैत्तिरीय (कृष्ण यजुर्वेदी)
२ ऋग्वेद-संहिता
३ सामवेद ब्राह्मण
४ काण्व-संहिता (शुक्ल यजुर्वेद)
५ अथर्ववेद संहिता

(ब) ब्राह्मण तथा आरण्यक

१—इसके विशेष तथा प्रामाणिक वर्णन के लिए देखिये—
पं० बलदेव उपाध्याय—वेदभाष्य भूमिका संग्रहः।

(क) कृष्ण **यजुर्वेद** ब्राह्मण

१ तैत्तिरीय ब्राह्मण २ तैत्तिरीय आरण्यक

(ख) **ऋग्वेद** ब्राह्मण

३ ऐतरेय ब्राह्मण ४ ऐतरेय आरण्यक

(ग) **सामवेद** ब्राह्मण

५ ताण्ड्य ब्राह्मण ६ षड्विंश ब्राह्मण

७ सामविधान ब्राह्मण ८ आर्षेय

९ देवताध्याय १० उपनिषद् ब्राह्मण

११ संहितोपनिषद् १२ वंश

(घ) **शुक्ल-यजुर्वेदीय** ब्राह्मण

१३ शतपथ ब्राह्मण

चारों संहिताओं तथा तेरह ब्राह्मणों के ऊपर सायण ने भाष्य लिखा। ये टीकायें चारों वेदों के ब्राह्मण भाग पर लिखी गई हैं। इस प्रकार वेदों तथा ब्राह्मणों पर प्रामाणिक भाष्य लिखे गए। आज तक किसी एक व्यक्ति ने इतने वैदिक ग्रंथों पर भाष्य नहीं लिखे। चारों संहिताओं तथा ब्राह्मणों के भाष्य के आरम्भ में सायण ने बुक्क नरेश के आदेशानुसार भाष्य लिखने की घटना का सादर उल्लेख किया है:—

यत्कटाक्षेण तद्रूपंदधद् बुक्कमहीपतिः।
आदिशन्माधवाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने॥

ऋग्भाष्य की पुष्पिका में:—

"**इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीबुक्कसाम्राज्य-धुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिता-भाष्ये।**"—ऐसा उल्लेख मिलता है। इससे भी भाष्यों की रचना में बुक्क का आदेश ज्ञात होता है। अथर्ववेद-संहिता-भाष्य सम्भवतः बुक्क के पुत्र हरिहर द्वितीय के समय में लिखा गया था। क्योंकि उसी पुस्तक की अवतरणिका में सायण ने 'महाराजाधिराज, धर्मब्रह्माध्वन्य, षोडश महादानों के करने वाले हरिहर का वेदभाष्य में नामोल्लेख किया है:—

तस्कटाक्षेण तद्रूपं दधतो बुक्कभूपतेः।
अभूत् हरिहरो राजा क्षीराब्धेरिव चन्द्रमा ॥

सायण के द्वारा रचित महान् वेद-भाष्यों तथा अन्य ग्रन्थों द्वारा विजयनगर राज्य में संस्कृत साहित्य की अपार उन्नति हुई।

माधव तथा सायण के अतिरिक्त संगम राज्य काल में अनेक विद्वान् हो गए हैं। इसी वंश के शासक हरिहर द्वितीय का मन्त्री इरुगप्प भी एक प्रगाढ़ विद्वान् था। उसने जैन होते हुए भी संस्कृत में 'नामानार्थ-रत्न-माला' नामक बृहत् कोष की रचना की[1]। पण्डितराय, श्रुतिमुनि तथा सिंहनन्दिन भी जैन पण्डित हो गए हैं जिन्होंने संस्कृत में ग्रंथ लिखे। कम्पण की विदुषी स्त्री गंगदेवी ने 'मधुरा-विजयम्' अथवा 'कम्पण-चरितम्' नामक महाकाव्य की रचना की। उसमें कम्पण द्वारा दक्षिणी भारत में यवनो को परास्त करने का वर्णन मिलता है[2]। संगम के पाच पुत्रों में से मारप्प ने 'शैवागमसार' नामक पुस्तक में शैवसिद्धांत का प्रतिपादन किया है[3]। कम्पण का महाप्रधान सोमप्प भी एक विद्वान् पुरुष था। 'निरंकुशोपाख्यानम्' के रचयिता रुद्रप्पा इसी काल में आविर्भूत हुए थे।

नरहरि पण्डित ने 'काव्य-प्रकाश' पर टीका लिखी। कुमारसम्भव तथा किरातार्जुनीय पर भी टिप्पणियाँ लिखी गई। वामनभट्ट सङ्गीत का जानने वाला था, अतएव 'सङ्गीत-सुधा' और 'सङ्गीत-मुक्तावली' की उसने रचना की। देवभट्ट ने भी सङ्गीत पर ग्रंथ लिखे। विजयनगर शासकों के आश्रय में ऐसे अनेक विद्वान् रहते थे और पुस्तकें लिख कर संस्कृत साहिय का भण्डार भरते थे। देवराय द्वितीय के दरबार में जैन, वैष्णव तथा वीरशैव पण्डितों का जमघट रहता था। इम्मादी देवराय रचित 'रतिरत्न-प्रदीपिका' नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है। पुस्तक की पुष्पिका में 'इति

---

१ सा० इ० इ० भा० १ पृ० १६। २ कृस्णस्वामी—सोर्सेज आफ विजयनगर। ३ एपि० इंडि० भा० ३।

प्रौढ़ देवराय विरचितायां रतिरत्न प्रदीपिकायां'—ऐसा उल्लेख पाया जाता है, जो उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है। मल्लिकार्जुन के आश्रित गंगाधर कवि ने 'गंगदास-प्रदीप' नामक ग्रंथ लिखा था। इस प्रकार संगम-काल में स्संकृत-साहित्य की प्रचुर वृद्धि हुई।

सालुव तथा तुलुव-वंश के शासन-काल (१४८६ से १५५६ तक) में वैष्णव धर्म के अंतर्गत द्वैत तथा विशिष्टाद्वैत मतों की जागर्ति हुई। जनता ने भी इसमें योग दिया। इस जागर्ति का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर दिखलाई पड़ता है। वैष्णव साधुओं ने अनेक ग्रन्थों पर अपने धार्मिक मत के अनुसार टीकाएं लिखीं। रघूत्तम ने 'भावबोध' पर टीका लिख कर प्रसिद्धि प्राप्त की।

व्यासराज उस समय का सबसे बड़ा दार्शनिक था। कृष्णदेवराय के शासन काल में, बाल्यावस्था में ही वह संन्यासी हो गया था। उसने बहुत-सी पुस्तकें लिखीं हैं जिनमें 'मायावाद-खण्डन' मुख्य माना जाता है। इसी राजा के समकालीन लक्ष्मीधर नामक विद्वान ने 'सौन्दर्य-लहरी', 'सरस्वती-विलासम्' आदि पुस्तकों की रचना की जिनका वर्णन शिलालेखो में पाया जाता है। कृष्णदेव राय ने स्वयं कई पुस्तकें संस्कृत में लिखीं। अच्युत के समय में राधामाधव ने वैष्णवधर्म के ऊपर दो विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों की रचना की। ज्ञान-चिन्तामणि, रस-मञ्जरी आदि उसके अनेक संस्कृत ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

विजयनगर के अंतिम राज-वंश आरविदु के शासन काल में संस्कृत-साहित्य की उन्नति चरम-सीमा को पहुंच गई। इस समय में अनेक पुस्तकों की रचना कर साहित्य का भण्डार भरा गया। साहित्य की इस उन्नति का विशेष कारण यह था कि इस वंश के समय में अद्वैत, द्वैत तथा विशिष्टाद्वैत मतों का प्रचार जनता में हो रहा था। अतएव अपने मत का मण्डन तथा दूसरे मत का खण्डन करने के लिए विद्वानों ने पुस्तकों की रचना कर संस्कृत-साहित्य के भण्डार को भर दिया। व्यास-राज के शिष्य वादिराज ने तीस पुस्तकों की रचना की। विजयेन्द्र ने

अप्पयदीक्षित के विरोध में स्वयं १०४ पुस्तकें संस्कृत में लिखीं। राघवेन्द्र ने वैदिक विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों पर सब मिलाकर ४२ पुस्तकों का प्रणयन किया। वरदराजाचार्य लिखित 'महाभारत-तात्पर्य-निर्णय' नामक पुस्तक संस्कृत में मिलती है। उसका पुत्र नरहरि भी सस्कृत का पंडित था। विष्णु-पुराण पर उसकी टीका मिलती है। इस प्रकार आरविदु-शासन-काल में प्रायः बीस विद्वान् ऐसे हुए जिन्होंने विभिन्न पुस्तकों पर टीकाएं लिखीं। इस काल में अद्वैत मत के अनुयायी अनेक धुरंधर विद्वान् पैदा हुए। कृष्णानन्द एक प्रधान व्यक्ति माना जाता है। उसकी शिष्य-परम्परा में भट्टोजी दीक्षित तथा रंगोजी विख्यात विद्वान् थे। भट्टोजी दीक्षित व्याकरण का प्रकाण्ड पंडित था। 'मनोरमा' तथा 'सिद्धान्तकौमुदी' उसके सर्व प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। यह अप्पय तथा जगन्नाथ के समकालीन था। अप्पयदीक्षित ने प्रायः एक सौ पुस्तकों की रचना की है जिससे उनकी अगाध विद्वत्ता का परिचय मिलता है।

विद्वानों के आश्रयदाता

आरविदु-वंश के शासकों में रामराय तथा वेंकट का नाम आदर के साथ लिया जाता है। इनके समय में साहित्य की श्री-वृद्धि हुई! अनेक विद्वान रामराय के दरबार में रहा करते थे। वह स्वयं कवि था। बृटिश म्यूजियम में सुरक्षित एक लेख में[1] रामराय की समता राजा भोज से की गई है। उसकी सभा में रामानुजाचार्य नामक एक पडित रहा करते थे। ताताचार्य भी उसी के समय में वर्तमान थे। इन आचार्य ने शैव (वीर-शैव) मत की पुष्टि करने तथा अन्य धर्मों के खण्डन करने के लिए 'पंचनत-भंजनम्' नामक पुस्तक लिखी। विजयेन्द्र ने भी अनेक पुस्तकों की रचना की। पटंकुश ने रामराय का आश्रय प्राप्त कर (१) सिद्धान्त-मणि-दीपम् (२) पचकाल-दीपिका तथा (३) नृसिंहस्तव नामक पुस्तकों की रचना की। भट्टमूर्ति रामराय की सभा का प्रधान कवि था। उसको 'रामराय भूषण'

---

१ एपि० इंडि० भाग ४ पृ० ४

की उपाधि दी गई थी, क्योंकि वही राजकवियों में श्रेष्ठ था। उसमें 'हरिश्चन्द्र-नलोपाख्यान' नामक पुस्तक तामिल भाषा में तैयार की। उसके उत्तराधिकारी तिरुमल ने 'गीति-गोविन्द' पर 'नीति मंजरी' नामक टीका लिखी थी। वेंकट पतिदेव सब राजाओं में विद्वान् था। अतः विद्वानों ने उसकी तुलना चन्द्रमा से की है[1]। वह विद्वानों से धर्म, दर्शन तथा गणित आदि विषयों पर शास्त्रार्थ किया करता था। मंगल-दानपत्र में स्पष्टतया उल्लखित है कि वेंकट विद्वानों का आश्रयदाता था तथा वह स्वयं भी पंडित था[2]। रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में उत्पन्न यजुर्वेद शाखा के प्रसिद्ध पंडित जगन्नाथराय उसके दरबार में वर्तमान थे वेंकट ने पांडुरंग के विष्णु-मन्दिर का इतिहास काव्य में लिखवाया। भीमा नदी के किनारे पंढरपुर में पंडितों का जमघट हुआ करता था जो शास्त्रीय विषयो पर शास्त्रार्थ किया करते थे। वेंकट के सेनापति अनन्त ने तेलेगु भाषा में 'काकुस्थविजयम्' नामक काव्य लिखा।

सुरेन्द्रतीर्थ तथा अप्पय दीक्षित में सदा शास्त्रार्थ होता था। सुरेन्द्र-तीर्थ माध्व-दर्शन के व्याख्याता थे। अप्पय दीक्षित ने इनके मत का खंड किया। इन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए चित्र मीमासा, न्यायमृत-व्याख्या नाम की पुस्तकें रचीं[3]। प्रसिद्ध दार्शनिक गोविन्द दीक्षित ने सङ्गीतपर पुस्तक लिखी जिसका नाम 'सङ्गीत-सुधानिधि' है। जैसा कहा गया है कि तंजोर में निवास करते हुए अप्पय दीक्षित ने सैकड़ों पुस्तकों की रचना की। इन्होंने 'कुवलयानन्द' नामक अलंकार विषयक पुस्तक लिखी[4]। प्रसिद्ध मन्त्री गोपणार्य ने तेलुगु-भाषा में 'लक्ष्मी-विलासम्' काव्य की रचना की[5]। तिरुमल के सभा पंडित वेदान्ती रामानुज राज-

---

१ एपि० इंडि० भा० १२ पृ० १८६। २ वटरवर्थ—नेलोर लेख भा० १ पृ० ३६। ३ कृष्णास्वामी—सोर्सेज़ पृ० २३०।

४ एपि० इंडि० भा० ४ पृ० २७१।

५ विजयनगर डाइनेस्टी; इण्डि० एटि० भा० २३; नं० ५२३ आफ १६०६.

कर्मचारी थे[1]। राजसभा में कवि तथा विद्वान् लेखक रहा करते थे। मंगल-दानपत्र का रचयिता सभापति नामक व्यक्ति था[2]। इस दानपत्र में वर्णन मिलता है कि वह एक बड़ा विद्वान् था। कृष्ण कवि ने वेंकट पतिदेव के दान-पत्रों को कविता में लिखा था[3]। चिदम्बर कवि ने भी सुन्दर काव्यमय दानपत्रों को लिख कर अपने पाडित्य का परिचय दिया है[4]।

विजयनगर-साम्राज्य की अवनति के साथ ही साथ संस्कृत साहित्य की अवनति भी होने लगी। तंजोर, मदुरा, ट्रावनकोर तथा मैसूर आदि हिन्दू संस्कृति के नये केन्द्र हो गये। यहा के नायक शासकों ने अपने सम्राट् की प्रणाली को चलाया। नायको के काल में भी विद्वानो को पूर्ववत् आश्रय मिलता रहा। तंजोर में संभवतः तीस विद्वान् रहते थे जिन्होंने सैकड़ों पुस्तके लिखीं। रघुनाथ नायक एक विद्वान् शासक था। गान-विद्या में वह निपुण था। उसने 'संगीत-सुधा' नामक पुस्तक की रचना की। उसने संगीत में नये रागों का आविष्कार किया। मधुरावाणी नामक कवियित्री भी रघुनाथ के दरबार में रहती थी।

यह तो सर्व-विदित है कि साहित्य की उन्नति के साथ ही शिक्षा का कार्य भी चला करता है। विजयनगर राजाओं के शासन काल में इतने

शिक्षा की व्यवस्था

विद्वानों के पैदा करने तथा शिक्षित बनाने का श्रेय उस समय के शिक्षालयों को दिया जायेगा। उस समय शिक्षा का माध्यम संस्कृत, तेलुगु; और कन्नड़ भाषाये थीं। पादरी नोविली ने लिखा है कि मदुरा में हजारों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। प्रायः प्रत्येक देव-मंदिर शिक्षा का भी केन्द्र था। सन् १४२४ ई० में देवराय द्वितीय ने एक पंडित को भूमि दान में दी क्योंकि वह आयुर्वेद का ज्ञाता था। उस भूमि की आय का कुछ भाग मंदिर में तथा कुछ विद्यादान

---

१ एपि० कर० भा० ४। २ एपि० इंडि० भा० ४ पृ० २।
३ एपि० इंडि० भा० १२ पृ० ३५७। ४ वही भा० १६ पृ० ३२६।

में व्यय किया जाता था[1]। मदुरा में विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार किसी भी गुरु के पास विद्या पढ़ सकता था। वेंकट ने विद्या के प्रचारार्थ, अध्यापकों के सहायतार्थ तथा विद्यार्थियों के भोजन के निमित्त दान दिया था। मदुरा में वेदान्त का अध्यापन होता था। उसमें चार-शाखाओं— प्रमाण, ज्ञान, विश्वास तथा साक्षी की शिक्षा दी जाती थी। केशव की 'तर्कभाषा' नामक प्रसिद्ध पुस्तक थी जिसे विद्यार्थी पढ़ते थे। अन्य छोटी-छोटी पाठशालाएँ भी थीं जिनमें देशी भाषा द्वारा लिखना, पढ़ना तथा गणित सिखलाया जाता था। चन्द्रगिरि में जेसुइट्स (ईसाई) लोग तेलुगु भाषा द्वारा एक नई प्रकार की शिक्षा दिया करते थे। हिन्दू अध्यापक, पादरियों की अध्यक्षता में काम करते थे। पाठशाला का सारा व्यय ईसाई मिशन देता था। ईसाइयों ने भी तामिल तथा तेलुगु भाषा सीखी थी। शासक की राजसभा में प्रवेश कर अपने मत के प्रचार के लिए ये अनेक कार्य करते थे। इन्हीं लोगों ने सर्व प्रथम तामिल भाषा के अक्षर छापने के लिए तैयार किये। और पुस्तकें छापनी आरम्भ कर दीं[2]। यह सारा काम धर्म प्रचार की बुद्धि से किया जाता था। पीछे मरहठा लोगों के विजयी हो जाने पर देव-नागरी अक्षरों का प्रचार दक्षिण-भारत में हो गया। इस प्रकार विजयनगर में शिक्षा प्रचार का कार्य होता रहा। इस समय के किसी बड़े शिक्षालय का वर्णन अभी तक नहीं मिला है। पाठशालाएं ग्रामों में वर्तमान थीं। यहीं से विद्या प्राप्त कर विद्वान् कवि और लेखक राज-सभा में आया करते थे। ये लोग शासन संचालन में भी सहयोग देते थे। आश्चर्य यह है कि उच्च-पदस्थ होने पर भी विद्या का व्यसन उनमें बना रहता था।

ऊपर के वर्णन से विजयनगर-कालीन साहित्यिक-उन्नति का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इन चार सौ वर्षों में असंख्य पुस्तकें लिखी

---

१ केटलाग आफ कापर प्लेट्स मद्रास म्यूजियम नं० ६ पृ० ४५

२ हेरास—आरविद पृ० ५३०।

गईं। तेलुगु, कन्नड़ तथा संस्कृत साहित्य की प्रचुर उन्नति हुई। संसार के इतिहास में ऐसा कोई भी शासन-काल नहीं है जिस समय में साहित्य की ऐसी श्री वृद्धि हुई हो। सचमुच विजयनगर-राजाओं का शासनकाल तेलुगु तथा कन्नड़ भाषा के साहित्य के लिए 'सुवर्ण युग' था तथा संस्कृत भाषा भी इन गुण-ग्राही राजाओं की छत्र-छाया में दिन दूनी और रात चौगुनी फूलती फलती रही।

: ८ :

धार्मिक-अवस्था

भारत धर्मप्राण देश है, यही कारण है कि यहां धर्म को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस देश में धर्म के महान् संस्थापक समय समय पर उत्पन्न होते रहे। वैदिक धर्म के स्थान पर बुद्ध तथा महावीर ने अपने मतों का विस्तार किया। भारतीय जनता ने इन धर्मों को अपनाया और बौद्ध धर्म तो कुछ समय के लिए सार्वजनिक तथा राजकीय धर्म बन गया। इसका प्रचार समस्त भारत में तथा विदेशों में हुआ। सम्राट् हर्षवर्धन के पश्चात् बौद्धों में धार्मिक लगन की न्यूनता प्रारम्भ हो गई। बौद्ध धर्म विभिन्न शाखाओं में विभक्त हो गया और कालान्तर में यह राजधर्म के पद से च्युत हो गया। सातवीं शताब्दी से मुसलमानों का आक्रमण उत्तरी भारत पर प्रारम्भ हो गया। ये आक्रमणकारी हिन्दू राजाओं को परास्त कर उनके धर्म को भी नष्ट करना चाहते थे। ये हिन्दू-मंदिरों को तोड़ कर उनके स्थान पर मसजिदें बनवाते थे। इस प्रकार हिंदू धर्म के लिए संकट काल उपस्थित था। ऐसे समय में दक्षिण-भारत में अनेक धर्म-प्रचारक पैदा हुए। इन्होने ने समस्त भारत में भ्रमण कर हिंन्दू धर्म का प्रचार किया। शंकर तथा रामानुज ने शैव तथा वैष्णव मतों का प्रसार किया। उत्तरी भारत में भी उनके प्रचार का समुचित प्रभाव पड़ा। बौद्ध धर्म को त्याग कर जनता ने शंकर के अद्वैत मत को ग्रहण किया। वेदों पर जनता की पुनः आस्था हो गई। दक्षिण भारत के दो प्रधान राज्यों—चोल तथा विजय-नगर ने धार्मिक ज्योति को जलाये रखा। मुसलमानों के आक्रमण से उस भाग में भी यवन मत के अनुयायी पहुँच गए। योरुप से पुर्तगाली लोगों ने आकर यहां बसना आरम्भ कर दिया और छल-पूर्वक हिन्दुओं

को ईसाई बनाने लगे। कहने का अर्थ यह है कि दक्षिणी भाग में भी हिन्दू-धर्म निर्विघ्न रूप से विकसित न हो सका। वहाँ भी नई विघ्न-बाधाएँ आने लगीं। इतना होते हुए भी दक्षिण भारत में (१) शैव (२) वैष्णव तथा (३) जैन धर्म की प्रधानता रही। चोल तथा विजयनगर के राजा हिन्दू सभ्यता तथा धर्म के संरक्षक थे। इन राजाओं के शासन-काल में तीनों धर्मों की उन्नति हुई।

विजयनगर की स्थापना के बाद राजनैतिक क्षेत्र में परिवर्तन के साथ ही साथ धर्म में भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ। विजयनगर के राजाओं के धार्मिक कार्यों के अनुशीलन से दक्षिण-भारत की धार्मिक-अवस्था का परिचय मिलता है। जैसा कहा गया है कि उस समय शैव, वैष्णव तथा जैन मतों का प्रचुर प्रचार था। सोलहवीं सदी तक विजयनगर के शासक शैव मतानुयायी थे। संगम-वंश के अन्तिम समय तक शैव मत ही राजकीय धर्म था परन्तु राजा विरुपाक्ष ने वैष्णव आचार्यों की शिक्षा से प्रभावित होकर वैष्णव-मत को स्वीकार कर लिया। इससे पूर्व शिव ही विजयनगर के कुल-देवता थे। राज्य में शिव की पूजा 'विरुपाक्ष' नाम से की जाती थी। विजयनगर का 'विरुपाक्ष' का विशालकाय मन्दिर इन नरेशों की शिव-भक्ति तथा श्रद्धा का ज्वलन्त उदाहरण है। इनके लेखों के अन्त में भी 'श्री विरुपाक्ष' लिखा मिलता है[1]:—

श्रीकंठपुरसंपूर्यैः श्रीविरुपाक्षसंज्ञया ।
लिखितः संगमेन्द्रेण पत्रे पञ्चाक्षरो मनुः ॥

विजयनगर राज्य के आराध्यदेव शिव पर इन राजाओं की असीम निष्ठा थी। अन्य लेखों में लिपि दूसरी होने पर भी 'श्री विरुपाक्ष' उत्कीर्ण है[2]। कन्नड़ लिपि ही कर्णाटक राजाओं की राज-लिपि मानी जाती है। सम्भवतः उन्होंने अपनी राजधानी का नाम 'विजय विरुपाक्षपुर' रखा था[3]। श्रीमत् शंकराचार्य द्वारा स्थापित शृङ्गेरी मठ पर इनकी दया

१ एपि० इ० भा० ३ पृ० १२४। २ वही—पृ० ४१
३ एपि० कर० भा० ६.

और शैव आचार्यों के प्रति विशेष आस्था थी । हरिहर ने अपने समग्र भाइयों को साथ लेकर विजय के उपलक्ष में सन् १३४६ ई० में श्रृङ्गेरीमठ की यात्रा की और वहाँ के अध्यक्ष श्रीविद्यातीर्थ स्वामी को विपुल भूमिदान में दी [1]। बुक्क ने भी कई बार वहाँ की यात्रा की और दान दिया। हरिहर ने कई गांव दान में दिये और अपने गुरु के नाम पर 'विद्यारण्यपुर' की स्थापना की । इससे गुरु के प्रति इनका गाढ़ अनुराग तथा आदर प्रतीत होता है। संगम राजाओं के कुल गुरु सुप्रसिद्ध शैवाचार्य काशीविलास क्रियाशक्ति थे । इसलिए लेखों में इन्हें 'राय राजगुरु मण्डलाचार्य' अथवा 'राय राजगुरु पितामह' कहा गया है [2] । ये शिवाद्वैत के प्रतिपादक तथा माधव मंत्री के प्रधान शिष्य थे। ये भगवान् त्र्यम्बक की उपासना किया करते थे । श्रीकण्ठनाथ दूसरे प्रधान शैवाचार्य थे जो राजा संगम द्वितीय के पूजनीय आचार्य थे। इससे प्रकट होता है कि सभी राजा शैवमत के अनुयायी थे। संगम द्वितीय के विद्रगुण्ठ लेख में ये राजा के गुरु तथा साक्षात् शिवरूप माने गए हैं[3]—

डा० कृष्णस्वामी का मत है कि उस समय शैवमत के अनेक केन्द्र थे। वीर शैव या लिङ्गायत मत का कर्नाटक में प्रचार था। वीर शैव सम्प्रदाय के अनेक अनुयायी थे। मैसूर में मलनद जिला तथा श्रीशैलम् शैव सम्प्रदाय के प्रधान केन्द्र थे[3]। मैसूर तथा कोल्हापुर रियसतों की अधिक जनसंख्या शैव थी। कनारी तथा तेलुगु देश में वीर शैवों का निवासस्थान रहा। इन लिंगायतों में वैदिक यज्ञ, उपवास, तीर्थ-यात्रा का कोई महत्त्व न था। जंगमों की पूजा को विशेष महत्त्व दिया गया था। इनमें जाति भेद के लिए भी कोई स्थान न था। श्राद्ध की रीति का प्रचार न था । उनके

---

१ हेरास—बिगिनिंग आफ विजयनगर

२ ए० कर० १२. भा० पृ० १३. मैसूर आ० रि० १६१२ पृ० ४७

३ एपि० इंडि० भा० ३

आठ प्रधान व्रत थे (१) गुरु (२) लिंग (३) जंगम (४) विभूति (५) रुद्राक्ष (६) पदोदक (७) प्रसाद तथा (८) पंचाक्षर मंत्र[१]।

प्रायः सौ वर्षों तक दक्षिण में शैवमत की प्रधानता बनी रही। विजयनगर नरेशों के समय में अप्पयदीक्षित नाम के विद्वान् परम शैव थे।

शैवमत की तरह वैष्णवमत को राजाश्रय प्राप्त न था। चोल राजा कुलतंग परम शैव था, अतः उसके भय से वैष्णव लोग मैसूर में भाग गये।

वैष्णव-धर्म जिस विष्णुवर्धन ने रामानुजाचार्य को आश्रय दिया तथा वैष्णव मत के प्रसार में सहायता की थी वह होयसल-वंश का शासक था। होयसल-वंश के उत्तराधिकारी विजयनगर राजा भी शैव थे। अतः राजकीय आश्रय न पाने से वैष्णवों की दशा अच्छी न थी। मध्व स्वामी ने उडुपि में अपने मठ की स्थापना की। अपने मत की प्रतिष्ठा और वृद्धि के लिए यह अद्वैतवादियों से शास्त्रार्थ भी किया करते थे। इसी समय वैष्णव तथा माध्व साम्प्रदाय के बड़े-बड़े आचार्य पैदा हुए। विजयनगर काल ही में रामानुज सम्प्रदाय में लोकाचार्य, ताताचार्य और वेदान्तदेशिक जैसे विद्वान् उत्पन्न हुए। माध्व सम्प्रदाय में अक्षोभ्यमुनि और जयतीर्थ जैसे कट्टर द्वैतवादी विद्वानों का जन्म इसी काल में हुआ। रामानुजी वैष्णवों पर यवन आक्रमण से ऐसी विपत्ति आ गई कि मन्दिरों से देव-मूर्तियों को लेकर आचार्यों को भागना पड़ा। मन्दिर शून्य हो गए। साधारण प्रजा तथा आचार्यों को कोई राजकीय आश्रय न मिला। वैष्णव लोगों की अत्यन्त दुर्दशा होने लगी। इन सब घटनाओं का वर्णन वैष्णव आचार्यों द्वारा रचित पुस्तकों में मिलता है। अनन्ताचार्य रचित प्रपन्नामृत, केशवाचार्य द्वारा रचित 'आचार्य-सुक्ति मुक्तावली' व जैमिनि-भारत तथा महाराजा सालुव नरसिंह कृत 'रामाभ्युदय' आदि ग्रंथों में इन बातों का उल्लेख मिलता है।

उस समय श्रीरंग नाथ की विशेष यात्रा व उत्सव को देख कर वैष्णव

---

१ वैष्णविज़म् शैविज़म् एण्ड माइनर सेक्ट्स पृ० १३५

धर्म के प्रति जनता के अनुराग का अनुमान किया जा सकता है। दक्षिण भारत में वैष्णव मत का भी जोर था। वैष्णव आचार्य लोकाचार्य तथा वेदान्तदेशिक के विद्यमान होते जनता को किसी बात की आशंका न थी। विजयनगर की स्थापना से पूर्व यवनों ने दक्षिणी भारत में आक्रमण किया। सन् १३२८ में यवनों ने चोल राज्य में स्थित श्रीरंगम् पर आक्रमण कर दिया। मुसलमानों के आक्रमण की खबर पाकर उस स्थान से लोग भागने लगे। लोकाचार्य श्रीरंगनाथ की प्रतिमा को लेकर तथा वेदान्त-देशिक वैष्णव धर्म की प्रधान पुस्तक 'श्री भाष्य श्रुति प्रकाशिका' के साथ साथ यादवों की राजधानी देवगिरि को भाग गए। मैसूर में ये प्रसिद्ध वैष्णव संत भिक्षाटन से अपना जीवन व्यतीत करते थे। दक्षिणी भारत में यवन शासन स्थापित हो गया। मदुरा में मुसलमान शासक राज्य करने लगे। श्रीरंगम् पर उनका कब्जा हो गया। विजयनगर के मन्त्री माधव ने वैष्णव आचार्यों की दुर्दशा देख कर उनको बुला भेजा, परन्तु उन्होंने श्रीरंगनाथ की सेवा के अतिरिक्त किसी अन्य की शरण में जाना पसन्द न किया[1]। ऐसी परिस्थिति में विजयनगर के शासक महाराज बुक्क ने कुमार कम्पण तथा सेनापति गोपणार्य को दक्षिण में यवनों पर विजय करने के लिए भेजा। कुमार कम्पण ने समस्त दक्षिणी भाग से यवनों को निकाल भगाया। कम्पण ने कांची के राजा चम्पराय को हराया। इसने मदुरा के मुसलमान शासक अलाउद्दीन सिकन्दर शाह को सन् १३७७ ई० में मार डाला[2]। उस प्रांत से यवनों को भागना पड़ा। विजयी कुमार कम्पण की स्त्री गंगदेवी ने 'मधुरा-विजयम्' या 'कम्पण चरितम्' नामक महाकाव्य लिख कर यवनों के पराजय को अमर कर दिया है[3]। जिंजी के गवर्नर गोपणार्य ने भी कम्पण की सहायता की। कहा जाता है कि भगवान् के स्वप्न देने

---

१ कृष्णस्वामी—कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इंडिया पृ० ३११।

२ हेरास-आरविदु डाइनेस्टी पृ० १०५।

३ कृष्णस्वामी-सोर्सेज आफ विजयनगर हिस्ट्री।

पर पवित्र मदुरा पीठ से गोपणार्य ने यवनों को निकाल बाहर किया। सालुव नरसिंह के पूर्वज सालुव मन्त्री ने भी इसमें सहायता की थी। वे परम वैष्णव थे। उन्होंने श्रीरंगम् में एक सहस्र शालिग्राम के प्रतिमाओं की स्थापना की तथा आठ गांव दान में दिये[1]। देश में शांति स्थापित होने पर वेदान्त देशिक लौट आये और लोकाचार्य के साथ भगवान् की मूर्त्ति की पुनः स्थापना की इन्होंने गोपण नायक की प्रशंसा शतमुख से की है। वेदान्त देशिक ने एक पद्य मन्दिर के द्वार पर उत्कीर्ण कराया जो प्राचीन घटना का स्मरण दिलाता है।

कुमार कम्पण ने मंदिरों के ताले खुलवाए। देव मूर्त्तियों का पुनः संस्कार कराया। अनेक गाव तथा द्रव्य दान में दिया। वेदान्त देशिक ने यहीं अपना शेष जीवन व्यतीत किया। यह एक प्रसिद्ध दार्शनिक तथा कवि था। इसने धर्म-प्रचार में लगे रहने पर भी १२० ग्रंथों की रचना की। इसके ग्रंथ प्राकृत तथा संस्कृत में मिलते हैं। 'यादवाभ्युदय' इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। श्री सम्प्रदाय का जो वर्तमान रूप दिखाई पड़ता है उसका बहुत कुछ श्रेय इन्हीं को है। माध्वों ने उडुपि को अपना केन्द्र बनाया[2]। पंद्रहवीं सदी से वैष्णव आचार्यों के प्रभाव से इस मत को राजाश्रय प्राप्त होगया। शासक विरुपाक्ष सर्व प्रथम वैष्णव मत का अनुयायी हुआ। उसी समय से उस वंश के समस्त नरेश वैष्णव धर्मावलम्बी हो गये। उनमें धार्मिक सहिष्णुता का भाव अत्यधिक था। विष्णु के अवतार विठोबा की भी पूजा होती थी। अच्युत राय ने विट्ठलेश्वर के मन्दिर को दान दिया[3]। तुंगभद्रा के किनारे विठोबा का विशाल मंदिर था जहां प्रति वर्ष सहस्रों लोग यात्रा करने आते थे। वीर शैवों के सिद्धान्तों के प्रतिकूल ये लोग उपवास, यज्ञ तथा तीर्थ यात्रा को प्रधानता देते थे। विजयनगर के शासक अपने प्रांतों में वैष्णव नायकों को शासन के लिए

---

१ नरसिंह-रामाभ्युदयम्। २ कृष्णस्वामी— साउथ इंडिया पृ० ३१२.
३ इंडि० एंटि० भा० १४ पृ० २२२

भेजते थे। मदुरा के नायक परम विष्णुभक्त थे। सन् १५५६ ई० में सदाशिव ने मंदिर के निमित्त तथा पूजा के व्यय के लिए पृथ्वी दान में दी [1]। मदुरा के विश्वनाथ तथा कण्णप्पा नायकों ने विष्णु मंदिर में छत्र, चामर तथा फूल आदि चढ़ाने के निमित्त कई-ग्राम दान किये [2]। रामराय परम वैष्णव था अतः उसने अपने वंश में विभिन्न व्यक्तियों के नाम करण के लिए अवतारों के नाम का प्रयोग किया। माधवाचार्य ने रामराय तथा ताताचार्य की सहायता से चिदम्बरम् में विष्णु मंदिर स्थापित किया। जिसको शैव मतानुयायी चोल राजाओं ने नष्ट करने का प्रयत्न किया था [3]। तिरुमल ने गीत गोविन्द की टीका लिखी और अनेक ग्राम दान में दिये [4]। उसके सिक्के उसके वैष्णव मतानुयायी होने के ज्वलन्त उदाहरण हैं [5]। समस्त दान भगवान् (विरुपाक्ष) के सन्मुख किया जाता था [6]। रामराय ने मुसलमानों के ध्वंस किये हुए दो मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया [7]। विजयनगर राजाओं के भगवान् 'विरुपाक्ष' कुल देवता थे। वेंकट द्वितीय के समय से विजयनगर राज्य की मुद्राओं पर 'विरुपाक्ष' उत्कीर्ण न होकर 'श्रीराम' उत्कीर्ण किया जाने लगा [8]। यही कारण है कि विजयनगर राजा का मंगल-दान पत्र राम भगवान् की स्तुति से प्रारम्भ किया गया है [9]। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा वेंकट के समय से विष्णु की पूजा न होकर उनके अवतार राम की पूजा प्रारम्भ हो गई। वेंकट के सोने के सिक्कों पर (वेंकट पति पगोड़ा) सामने की ओर विष्णु की आकृति बनी है तथा दूसरी ओर नागराक्षरों में 'श्री

---

१ एपि० इंडि० भा० ४ पृ० ५। २ वही भा० ६ पृ० ३४१

३ कृष्णस्वामी—ऐंन्शेट इण्डिया पृ० ३२०

४ रंगाचार्य भा० ३ पृ० १०६। ५ हेरास—आरविदु पृ० ५४५

६ एपि० इंडिका भा० १६ पृ० २५६। ७ एपि० कर० भा० ६

८ कृष्णस्वामी—सोर्सेज पृ० ७३।

९ वटरवर्थ—नेलोर लेख भा० पृ० २६

वेंकटेश्वराय नमः लिखा है[1]। ये सब उल्लेख विजयनगर में वैष्णव-धर्म के प्रचार की पुष्टि करते हैं। 'प्रपन्नामृतम्' के कथनानुसार ताताचार्य के बाद अनेक व्यक्ति वैष्णव हो गए[2]। वेंकट द्वितीय के राज्य काल में शैवों तथा वैष्णवों में सदा वाद-विवाद होता रहा। वैष्णव ताताचार्य तथा शैव मतानुयायी अप्पय दीक्षित में शास्त्रार्थ हुआ। यह वाद-विवाद ११ दिन तक चलता रहा। विजय तीर्थ ने शैवों के विरोध में लिखा और अप्पय दीक्षित ने वैष्णव-मत का खण्डन किया[3]। यह विरोध तामिलदेश में अधिक समय तक रहा परन्तु वेंकट द्वितीय के बाद आपस के झगड़े शांत हो गये। शैव मत की अवनति होने लगा और वैष्णव मत प्रधान हो गया।

धार्मिक-सहिष्णुता

परन्तु विजयनगर के शासक वैष्णव होते हुए भी धार्मिक सहिष्णुता के पवित्र भाव से युक्त थे। जैसे प्राचीनकाल में गुप्त सम्राट् (भागवत) होते हुए भी धार्मिक सहिष्णुता की भावना रखते थे ठीक ऐसी ही दशा विजयनगर के शासकों की थी। ये राजा वैष्णव होते हुए भी अपने राज्य में अन्य धर्मावलम्बी नायक तथा सेनापति रखते थे[4]। लेखों में वर्णन मिलता है कि इकेरी का नायक शैव था। उसने अनेक जैनों को शैव मत में दीक्षित किया[5]। इसने शिव-मंदिरों को दान दिया[6]।

दक्षिण भारत में चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भद्रबाहु ने जैनमत का

---

१ ब्राउन क्वायन्स आफ इंडिया पृ० ६४; इंडि० एंटि० भा० २० पृ० ३०२

२ कृष्णस्वामी—सोर्सेज पृ० २५१

३ गोपीनाथराव—एपि० इंडि० भा० १२ पृ० ३४६

४ एपि० इंडि० भा० ४ पृ० २७१

५ इंडि० एण्टि० भा० २ पृ० ३५३

६ एपि० कर० भा० ४ पृ० १३५

प्रचार किया। जैन धर्म के आचार्य इस मत को फैलाने के लिए समय-समय पर प्रयत्न करते रहे। जैन धर्म का प्रचार कर्नाटक में विशेषकर हुआ। कन्नड़ साहित्य की उन्नति में जैनियों का प्रधान हाथ था[१]। तामिल भाषा में भी जैन मत के अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। विजयनगर के शासकों ने इस मत का कभी विरोध नहीं किया। लेखों में वर्णन मिलता है कि विजयनगर की राजसभा में जैनियों की पूर्ण प्रतिष्ठा थी। इनको ऊँचे-ऊँचे पद भी मिलते थे। बुक्क की सभा में वैचप्प नामक एक जैन मन्त्री भी था। मैसूर के श्रवण बेलगोला लेख में इसका उल्लेख मिलता है[२]। हरिहर द्वितीय का प्रसिद्ध मन्त्री इरुगप्प भी जैनी था[३]। इरुगप्प न्याय-कुशल तथा चतुर पुरुष था। इसने 'नानार्थ-रत्नमाला' नामक कोष की रचना की[४]। इससे भी अधिक जैन धर्म का समर्थन इस घटना से किया जा सकता है कि संगम के वंशज देवराय प्रथम ने भीमादेवी नामक जैन स्त्री से विवाह किया था। राजाओं ने जैन मन्दिरों को दान दिया। कांची के पास विजयनगर राज्य में इसने एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण कराया[५]। इसे 'तेलिग' मन्दिर के नाम से पुकारते थे[६]। श्रवण बेलगोला के लेख से पता चलता है कि इसके दो पुत्र विजयनगर सेना में सेनापति के पद पर थे[७]। भूपाल ने जैन मन्दिर तैयार कराया। वेनूर में स्थित जैन साधु भुजबल की विशाल मूर्त्ति अब तक वर्तमान है[८]। ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि वैष्णव होते हुए भी विजयनगर नरेशों में धार्मिक सहिष्णुता की भावना बड़ी प्रबल थी। लेखों में इन राजाओं के लिए 'चतुः-समय-समुद्धरण' की उपाधि मिलती है[९]। इन्होंने किसी धर्म की

जैनमत

१ राइस—हिस्ट्री आफ कनारीज़ लिटरेचर पृ० १७-४०। २ एपि० इण्डि० भा० ८ पृ० १७। ३ सा० इ० इ० भा० १ पृ० १६१। ४ वही पृ० १५६। ५ एपि० इण्डि० भा० ७ पृ० ११५। ६ सा० इ० इ० भा० १ पृ० १५६। ७ एपि० इण्डि० भा० ८ पृ० २२। ८ सेवेल—ए फार० इम्पा० पृ० १४। ९ ए० कर० भा० ५२।

हानि नहीं पहुँचाई। ये लोग चोलभूपाल विष्णुवर्धन के समान कट्टर न थे। जिसने वैष्णवों को कोल्हू में दबा दिया था। ये उदार-चरित शासक थे। इन राजाओं ने शैव तथा जैनियों को सहायता दी। माधव मन्त्री ने वेदान्त देशिक को बुलाया। हरिहर द्वितीय ने जिस प्रकार—श्री शैलम् के शिव-मन्दिर को तथा श्रीरंगम् के वैष्णव मन्दिर को दान दिया, उसी प्रकार अपनी उदारता एवं विशाल हृदयता का भी परिचय दिया[1]। इससे पूर्व बुक्कराय ने भी जैनियों से वैष्णवों के समान ही व्यवहार किया तथा इन धर्मों के पारस्परिक द्वेष को शान्त किया।

मैसूर राज्य में जैन मत का प्रचुर प्रचार था। वहीं वैष्णव लोग भी अपने मत का प्रचार करते थे, अतएव समय-समय पर उनमें पारस्परिक झगड़ा हो जाया करता था। बुक्कराय के समय में इस झगड़े ने बृहद् रूप धारण कर लिया। सब जैनियों ने मिल कर वैष्णवों की शिकायत राजा के पास की कि विष्णु भक्तों ने उनके धार्मिक कृत्यों में विघ्न उप-स्थित किया है। जैनियो के कथनानुसार वैष्णव लोग दोषी थे। राजा बुक्क ने निष्पक्ष होकर इस मामले पर विचार किया। एक सभा बुलाई गई। इस सभा में जैनियों तथा वैष्णवों के समस्त मुख्य प्रतिनिधि सम्मिलित थे। ये प्रतिनिधि श्रीरंगम् तथा कांची से सभा में भाग लेने आए थे। राजा ने उस पर विचार कर यह घोषणा की कि जैनी सदा की भांति अपने गीत, वाद्य तथा कलश के अधिकारी रहेंगे और यदि वैष्णवों द्वारा हानि पहुँचाई गई तो यह अत्यन्त अनुचित कार्य समझा जायेगा। इस घोषणा का सदा पालन होता रहा। बुक्क ने आज्ञा दी कि मैसूर प्रान्त के प्रत्येक घर से एक आना कर वसूल किया जाय। यह कर तिरुपति के अधिकारियों ने राज्य के जैनियों की अनुमति से ग्रहण किया। यह निश्चय हुआ कि इस आय से श्रावण बेलगोला में वैष्णव लोग पूजा के लिए भृत्य नियुक्त करें और शेष धन जीर्ण जिनालयों के उद्धार में व्यय

---

१ एपि० इण्डि० भा० ३ पृ० ११६ नोट ११

किया जाय। इस नियम को कोई नष्ट न करे। ग्राम का कोई मुखिया इसे बन्द न करे। अन्यथा उसे ब्राह्मण तथा गो-हत्या का पातक लगेगा[1]। इस प्रकार बुक्कराय ने जैन-वैष्णव-संघर्ष को शान्त कर दिया और राज्य में झगड़ा न होने पाया।

विजयनगर-राज्य में पुर्तगालियों के स्वागत से पादरियों ने ईसाई-धर्म के फैलाने का प्रयत्न किया। सब से प्रथम मदुरा का ब्राह्मण अध्यापक ईसाई बन गया[2]। पादरी लोगों ने सैकड़ों हिन्दुओं को ईसाई बनाया परन्तु अपनी कूट नीति के कारण विजयनगर-राजाओं ने उनको नहीं रोका। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि विजयनगर के शासक हिन्दुओं को ईसाई बनाने में सहायक थे। उस समय हिन्दू संस्कृति तथा धर्म का इतना प्रभाव था कि विजयनगर राज्य में पादरियों का कार्य सफल न हो सका। सेना में हजारों मुसलमान नियुक्त किये गए थे। उनके लिए नगर में मसजिदें बनीं। राजा स्वयं अपने सिंहासन के एक ओर कुरान को रखता था ताकि किसी भी मुसलमान को यह न ज्ञात हो कि शासक यवनों के मत से घृणा करता है। परन्तु इससे शासक इस्लाम-धर्म की वृद्धि का सहायक नहीं कहा जा सकता।

विजयनगर के राजा पहले शैव थे, फिर वैष्णव मतानुयायी हो गए। वे उदार थे। उनमें धार्मिक सहिष्णुता का भाव भरा था[3]। शासकों में कृष्णदेवराय तथा वेंकट द्वितीय का नाम प्रधान रूप से उल्लेख किया जाता है। शिव तथा विष्णु के अतिरिक्त हनुमान, नरसिंह तथा गणेश की भी पूजा होती थी[4]। वेंकट का नाम लेखों में सदा उल्लिखित मिलता है जिसने रथ-यात्रा की प्रथा चलाई[5]।

---

१ एपि० कर० भा० ६ पृ० १८ एपि० कर० भा० २ पृ० ३४४

२ हेरास—आरविदु डाइनेस्टी पृ० ३७८

३ रायचौधरी—वैष्णवविजयम्, शैविजम् पृ० ११६

४ न० ३४६ आफ १६१३ विजयनगर कामेमोरेशन वाल्युम पृ० ४६

५ एपि० इण्डि० १६

: ६ :

आर्थिक-अवस्था

भारत में सदा से आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ भौतिक क्षेत्र में भी प्रचुर वृद्धि होती रही है। विजयनगर राज्य में जनता वैभव से पूर्ण थी तथा सुख-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करती थी। समस्त राज्य में निर्धनों की संख्या बहुत कम थी। सब लोग सुख की नींद सोते थे। विजय-नगर कालीन आर्थिक उन्नति का परिचय निम्न लिखित पंक्तियों में मिलता है।

यह देश सदा से कृषि-प्रधान रहा है। जनता का मुख्य व्यवसाय खेती रहा और है। राजा को सबसे अधिक कर भूमि से मिलता था।

कृषि

विजयनगर-साम्राज्य की स्थिति दक्षिण-भारत के पठारी भाग में थी। यहां मैदान की कमी है। यहां की मिट्टी काली है। अतएव रुई, ज्वार तथा तिल की पैदावार अधिक मात्रा में हुआ करती थी। प्रत्येक वर्ष भूमि का नाप होता था[१]। पृथ्वी को मापने वाले लट्ठे की लम्बाई ३४ फीट थी[२]। प्रत्येक भूमि को विभिन्न श्रेणियों में बाँटा जाता था। भूमि की सीमा निर्धारित की जाती थी तथा वामन या लोकेश्वर-प्रस्तर स्थिर रूप से सीमा पर गाड़ दिया जाता था[३]। सिंचाई का प्रबंध अच्छा था। नहरें, तालाब तथा बाँध बाँधकर सिंचाई का काम सरलता से होता था। इन सब बातों का विवरण विजयनगर-कालीन लेखों में मिलता है। राजाओं तथा मंत्रियों ने भी नहरें खुदवाई[४]। नायक लोगों ने तालाब तथा कुंए तैयार कराये[५]। नहर खुदवाने के लिए सदा-

---

१ सालातोर-हिस्ट्री भा० १ पृ० १९७। २ एपि० रि० १९१६ पृ० १४१

३ एपि० कर० भा० ४ पृ० ४७। ४ इ० ए० भा० ३८ पृ० ९७

५ नं० ३८८ आफ १९१२

शिव ने पृथ्वी दान में दी। भोगवती नदी में बांध बाँधा गया जिससे सिंचाई कर के कृषि की उन्नति हो सके। गंगदेवी ने 'मधुरा-विजयम्' में कावेरी नदी में नहर खुदवाने का वर्णन किया है। कृष्णदेव राय ने अनेक बड़े-बड़े तालाब बनवाये। देवराय के मंत्री ने हरिद्रा नदी के बाध की मरम्मत करवाई[1]। रामराय नहर के झगड़ों को स्वयं देखता था और सीमा निश्चित करके झगड़े को शांत कर देता था[2]। ये सब बातें यह सिद्ध करती हैं कि राजा तथा प्रजा में कृषि की उन्नति करने के लिए सिंचाई के प्रत्येक साधनों (नहर तालाब, और बांध आदि) से लाभ उठाने की उत्कंठा थी। इसके लिए दोनों ने योग दान दिया। विजयनगर-राज्य के पश्चिमी तथा पूर्वी किनारों पर चावल की खेती अधिक होती थी। चावल, जव, गेहूँ, तथा रुई की खेती हुआ करती थी और यह पैदावार बाहर भी भेजी जाती थी।

व्यापार

कृषि के पश्चात् जनता का प्रधान व्यवसाय व्यापार था। प्रत्येक व्यक्ति व्यापार कर सकता था। बाजार में दूकान खोल कर सामान स्वतंत्रतापूर्वक बेच सकता था। विजयनगर-राज्य के बाज़ार में सामान बेचने वाले दूकानदार से कर वसूल किया जाता था। अतः व्यापार किसी एक जाति या व्यक्ति-विशेष के हाथ में न था। विजयनगर में पुर्तगालियों तथा अरब के लोगों के साथ व्यापार करने से पर्याप्त लाभ होता था। विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना से पूर्व ही कारोमण्डल के किनारे पर अरब वालों ने व्यापार के निमित्त बस्तिया बसाईं। इसीलिए अमीर खुसरो ने लिखा है कि पूर्वी किनारे पर मलिक काफूर के आक्रमण से पहले ही मुसलमान आबाद हो गए थे[3]। इब्नबतूता का कथन है कि गयासुद्दीन दगमनी मदुरा का सुल्तान हो गया था। दक्षिणी भारत में अरब तथा यहाँ के निवासियों के व्यापारिक संसर्ग के बढ़ने से

---

१ राइस-मैसूर इन्स० भूमिका पृ० १३२। २ रंगाचार्य-भा० १ पृ० २६.
३ इलियट-हिस्ट्री भा० ३ पृ० ६०।

रवूटन तथा लवेस नामक दो नई जातिया पैदा हो गई थीं[1]। कहने का तात्पर्य यह है कि विजयनगर की स्थापना तथा उन्नति के साथ ही साथ दक्षिणी-भारत में विदेशियों का व्यापार भी अधिक उन्नत हो रहा था। शासक स्वयं व्यापार में दिलचस्पी रखते थे। कृष्णदेव राय ने आमुक्तमाल्यम् ग्रन्थ में अनेक राजनैतिक प्रश्नों पर विचार किया है। इस ग्रन्थ में राजा के विभिन्न कार्यों में से राज्य की आर्थिक दशा को सुधारना भी मुख्य कर्त्तव्य बतलाया गया है। उसका कहना है कि शासक स्वयं व्यवसाय तथा शिल्प को प्रोत्साहन दे तथा विदेशी व्यापारियों की ओर से सतर्क रहे। राजा का ध्यान सदा इन बातों की ओर होना चाहिए[2]। इसलिए व्यापार की अनेक संस्थायें तथा केन्द्र स्थापित किये गये थे। इस तरह विजयनगर-साम्राज्य में हम्पी (राजधानी) पेनुगोड़ा, उदयगिरि चन्द्रगिरि, नेलोर और मदुरा, आदि अनेक शहर व्यापारिक केन्द्र बन गये थे। इसके अतिरिक्त अन्य नगर राजनैतिक कारणों से महत्त्वपूर्ण थे। रायचूर और मुद्गल में किले बने थे। युद्ध के कारण इनकी प्रधानता हो गई थी अन्यथा ये साधारण नगर थे। इस भाग में कपास और तिल की अधिक पैदावार होती थी। अतएव कई नगरों में सूती कपड़े के कारखाने खुले थे। विजयनगर के लेखों में गाठों (कपड़े की गठरी) के ऊपर कर लगाये जाने का वर्णन मिलता है जो सूती कपड़े के व्यवसाय का द्योतक है[3]। तेल के कारखानों पर भी कर लगाने का वर्णन प्रशस्तियों में मिलता है[4]। इससे यह सिद्ध होता है कि विजयनगर साम्राज्य के बड़े-बड़े नगर व्यापारिक उन्नति तथा कारखानों के केन्द्र होने के कारण प्रसिद्ध थे।

समस्त विदेशी यात्रियों ने एक मत से विजयनगर के उन्नत व्यापार

---

१ ताराचन्द–इन्फ्लुऐन्स आफ इस्लाम पृ० ४३।

२ आमुक्तमाल्यम् सर्ग ४ श्लोक २४५।

३ एपि० रि० १६११ पृ०८३। ४ एपि० इंडि० भा० १८ पृ० १३६

तथा घनी आबादी का उल्लेख किया है। पुर्तगाली तथा ईरानी लोगों ने साम्राज्य के अनेक शहरों का वर्णन किया है। मोरलैंड के अनुमान से राज्य की आबादी ८० लाख के करीब थी। पश्चिमी किनारे तथा पठारी भाग में बहुत से घने शहर बसे हुए थे। साम्राज्य के समस्त व्यापार को देख कर विदेशी लोग आश्चर्यित हो जाते थे। मोरलैंड का कथन है कि उस समय व्यापार में भारत इतनी अधिक उन्नति कर चुका था कि उसकी समता वर्तमान पश्चिमी योरप (जो कारखानों का केन्द्र है) से भी नहीं की जा सकती[1]। इससे यह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है कि कारखानों में बहुत बड़े पैमाने पर काम होता था। कालिकट सूती कपड़ों का केन्द्र था। गोआ में बारीक कपड़े बुने जाते थे। महीन सूती कपड़े, कच्चा रेशम तथा कई प्रकार के रंगीन कपड़े विजयनगर के बाजारों में बिका करते थे।

अब्दुर रज़्ज़ाक ने साम्राज्य की राजधानी का वर्णन किया है कि हम्पी में राजा का महल, नायकों के लिए ऊंची अट्टालिकाएं तथा बड़े कर्मचारियों के लिए सुन्दर भवन बने हुए थे। राजमहल चहारदीवारी से घिरा हुआ था। ये विशाल इमारतें कई मंजिल की होती थीं। राजा तथा राज-कर्मचारियों के आने जाने का मार्ग भिन्न होता था। चारों तरफ पहरेदार बैठाये जाते थे। ये भवन चारों तरफ से बरामदा से युक्त होते तथा लम्बे भव्य खम्भों से सुशोभित थे। कोई-कोई कमरा २०×६ अथवा २०×१२ फीट का बनता था। एक कमरे को तैयार करने में तीन सौ वाराट (सिक्का) व्यय किया जाता था। कमरों की फर्श तथा दीवारें मूल्यवान् पत्थर से जड़ी होती थी। किसी-किसी कमरे के भीतर हाथी दांत भी जड़ा होता था। महल के खम्भों में नाना प्रकार की नक्काशी की जाती थी। महल के कमरों के भीतर राजा की आज्ञा से अन्य देशवासियों के भी चित्र बने होते थे, जिससे रानियों को विभिन्न देशों के लोगों की रहन-सहन और

---

१ मोरलैंड- इण्डिया एट दि डेथ आफ अकबर पृ० १५५।

पहनावा का ज्ञान हो जाय[1]। इसी तरह नाट्य-शाला तथा नृत्य-गृह भी तैयार किये गये थे। नायकों के भी भवन आभूषित किये जाते थे। बारबोसा ने भी ऐसे विशाल एवं भव्य भवनों को विजयनगर में देखा था[2]। इस प्रकार विजयनगर की राजधानी एक दिव्य-नगरी थी। रामनवमी के समय महल अच्छी तरह से चित्रित किया जाता था, जिसमें बैठकर राजा उत्सव के समस्त कार्यों को सम्पन्न करता था। राज-सभा के लिए चालीस खम्भों वाला एक विशाल-भवन भी बनवाया गया था। एक लेख में यह वर्णन मिलता है कि विजयनगर के मकान कई मंजिलों के बनाये जाते थे। मनुष्य की आर्थिक स्थिति के अनुकूल ही भवनों की सुन्दरता होती थी। परन्तु प्रत्येक मकान में काफी जगह खुली रहती थी। मकान के चारों तरफ बरामदा होता था। इसके अतिरिक्त मकानों के चारों ओर चहार दीवारी हुआ करती थी[3]।

अब्दुल रज्जाक ने लिखा है कि राजधानी (विजयनगर) को तीन भागों में विभक्त किया गया था। पहले भाग में बाजार तथा विरुपाक्ष का मन्दिर स्थित था। दूसरे भाग में राजमहल तथा ऊंचे अधिकारियों के ठहरने या निवास करने के लिए सुन्दर भवन बने थे। इसी भाग में हजाराराम का मन्दिर भी तैयार किया गया था। तीसरा भाग 'नागलापुर' के नाम से प्रसिद्ध था। यह सबसे पीछे बसाया गया था। इस भाग के निर्माण करने का श्रेय कृष्णदेवराय को दिया जाता है। इस प्रकार राजधानी एक सुन्दर तथा विशाल नगरी थी।

विजयनगर राज्य में व्यापार स्थल तथा जल दोनों मार्गों से हुआ करता था। स्थलमार्ग तो दक्षिण भारत में ही सीमित था परन्तु जलमार्ग अधिक विस्तृत था। राज्य की स्थिति पठारी भाग में थी। अतएव

---

१ सेवेल—ए फार० इम्पायर पृ० २६३ और २८४–६

२ डिब्र्यल—हिसट्रि० भाग १ पृ० २०८

३ एपि० कर० भाग १० पृ० ५३

लम्बे तथा अधिक महत्त्वपूर्ण स्थल मार्ग न थे। उस समय में मुसलमान तथा पुर्तगाली लोगों से विजयनगर का व्यापारिक सम्बन्ध था। अतः कृष्णा नदी के दक्षिण में मदुरा, नेलोर और रामेश्वरम् तक व्यापार के मार्ग बने थे।

व्यापारिक मार्ग

विजयनगर की प्रत्येक राजधानी से गोआ का सीधा सम्बन्ध था और दोनों के बीच में विशेष रूप से सुन्दर सड़कें तैयार की गईं थीं। पुर्तगाली लोग हम्पी को सामान लेकर आते तथा विजयनगर के व्यापारी अन्दर का माल गोआ अथवा दूसरे बन्दरगाहों तक स्थल-मार्ग से ले जाते थे। स्थल के मार्ग से विजयनगर में आने वाली वस्तुओं का पता उन पर ली जाने वाली चुंगी (कर-ग्रहण) के नियम से लगता है। राज्य के भीतर तिल, दाल, रुई, इमली, मसाले, मिर्च, चन्दन, कच्चा माल, रुई का सूत, ऊन, नमक, पान, फल आदि वस्तुओं पर कर लगाया जाता था[1]। जब एक वस्तु एक शहर से दूसरे शहर को जाती थी तब उस पर चुंगी लगाई जाती थी और राजा को इन वस्तुओं के व्यापार से पर्याप्त कर मिलता था[2]। ये चुंगीघर नगर के राजमार्गों के किनारे बने होते थे। चुंगी के प्रधान कर्मचारी को 'नायक' तथा उससे छोटे कर्मचारी को 'अधिकारी' कहते थे[3]। लेखों में यह वर्णन मिलता है कि चुंगी बड़ी सावधानी से वसूल की जाती थी[4]। इसको 'मार्ग-आदायम्' के नाम से पुकारते थे[5]। इन सबसे प्रकट होता है कि विजयनगर में व्यापार स्थल-मार्ग से भी पर्याप्त मात्रा में होता था। आने जाने के लिए नदी-मार्ग तथा सड़कें थीं जिससे व्यापार सुगमता से होता था। सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगालियों का व्यापार भारत में बहुत बढ़ गया था। हिन्द-महासागर

१ एपि० इं'डि० भा० २ पृ० १६८। एपि० कर० भा० ८ पृ० ८१

२ सालातोर—विजयनगर हिस्ट्री भा० १ पृ० २२१

३ एपि० कर० भा० ११ पृ० १२५

४ वही भा० ८ पृ० ११७

५ मैसूर गजेटियर भा० १ पृ० ४७७

में समस्त व्यापार इन्हीं के हाथों में था। कुछ शक्ति बढ़ने पर इन लोगों ने देश जीतने की अभिलाषा की। इसी विचार को लेकर सन् १५४६ ई० में कृष्णदेव राय की मृत्यु के पश्चात् पुर्तगालियों ने तिरुपति के मंदिर पर आक्रमण कर दिया। यह मंदिर वैभव तथा असंख्य धन के लिए प्रसिद्ध था। परन्तु विजयनगर की जल तथा स्थल सेना के सामने विदेशी ठहर न सके और अन्त में पराजित हो गये। पुर्तगाली गवर्नर ने विजयनगर के शासक से मैत्री स्थापित करते हुए एक सन्धि की जो राजनीतिक सन्धि न होकर 'व्यापारिक-सन्धि' कही जा सकती है। विजयनगर के राजा रामराय का दूत गोआ गया वहां उसका अपूर्व स्वागत किया गया। पुर्तगाली अर्थ-सचिव विजयनगर की राजधानी (हम्पी) में आया और नीचे लिखी शर्तों पर सन्धि की गई।

(१) दोनों शासकों में पारस्परिक मैत्री का भाव रहेगा, जिसके कारण व्यापार करने में काफी सुविधा हो।

(२) गोआ के गवर्नर को गोआ में बिकने वाले अरब के सब घोड़ों को विजयनगर राजा के ही हाथों बेचना होगा।

(३) दोनों एक दूसरे का माल खरीदेगें।

(४) विजयनगर के व्यापारी अपने बन्दरगाह पर लोहा, चन्दन और खाद्य सामग्री को ले आवेगें और पुर्तगाली उन्हें खरीदेगें।

(५) विजयनगर राज्य में बने हुए कपड़े पुर्तगालियों को खरीदना होगा और इसके बदल में ताँबा, मूँगा, पारा तथा चीन का रेशम देना पड़ेगा।

(६) विजयनगर के राजा किसी भी मुसलमानी जहाज को बन्दरगाह पर लंगर डालने की आज्ञा न देगें। यदि कोई जहाज आता दिखलाई पड़े तो उसे पकड़ कर पुर्तगाली गवर्नर को सुपुर्द करेगा।

(७) आदिलशाह को दोनों शत्रु समझेंगे। उससे युद्ध होने पर एक दूसरे की सहायता करेगा।

(८) पश्चिमी घाट में गोआ के पास की भूमि पुर्तगाली गवर्नर को दी जायेगी।

इस सन्धि पत्र पर पुर्तगाली गवर्नर तथा विजयनगर के राजा ने हस्ताक्षर किये[1]। विजयनगर के राजा को उस समय घोड़े, कपड़े तथा मूल्यवान वस्तुएं भेट में मिलीं। परन्तु यह सन्धि अधिक समय तक न कार्यान्वित न हो सकी और पुनः दोनों में व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के कारण शत्रुता हो गई। परन्तु यह बात विवाद रहित है कि विजयनगर के व्यापारी राज्य के अन्दर का माल स्थलमार्ग से बन्दरगाह तक ले जाते थे। स्थल व्यापार में पुर्तगालियों की प्रधानता थी। विजयनगर के व्यापारी बड़ी संख्या में सूती कपड़े बेचते थे। यह सामान तीस प्रतिशत के लाभ के हिसाब से बेचा जाता था। पुर्तगाली भी अरबी घोड़ों को बेंच कर अधिक लाभ उठाया करते थे। अपने सामान के बदले में वे सदा मोती, सोना और हीरे आदि को खरीद कर ले जाते थे। इनकी व्यापारिक-सुविधा के लिए गोआ से विजयनगर तक अच्छा मार्ग तैयार किया गया।

शत्रुओं पर आक्रमण करने तथा व्यापार की सुविधा के लिए विजयनगर में जल-सेना का एक पृथक् विभाग था। विजयनगर शासकों

जल-मार्ग

के पास करीब साठ अच्छे बन्दरगाह थे। जिनके द्वारा पूर्वी तथा पश्चिमी देशों से सामुद्रिक व्यापार होता था। अब्दुल रज्ज़ाक ने विजयनगर साम्राज्य के तीन सौ बन्दरगाहों का उल्लेख किया है। उसके कथनानुसार कालीकट मुख्य बन्दरगाह था और गोआ से चीन तक अच्छी तरह से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। डा० कुमार स्वामी ने लिखा है कि पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दियों में यूरोप और भारत में सामुद्रिक व्यापार प्रचुर परिमाण में होता था और उस समय विशाल एवं अच्छे पोत भी वर्तमान थे[2]। लेखों में बन्दरगाहों पर लिये जाने वाले कर 'स्थल-आदायम्'

---

१ सेवेल-ए फा० इम्पा० पृ० १८७

२ आर्ट एण्ड क्राफ्ट इन इंडिया पृ० १६६

(Import Duty) तथा 'मामूल-आदायम्' (Export Duty) का वर्णन मिलता है[1] जिससे यह पता चलता है कि जल-मार्ग से भी व्यापार पर्याप्त मात्रा में होता था। विजयनगर तथा पुर्तगाली शासकों की व्यापारिक सन्धि से यह प्रकट होता है कि देश के अन्दर का माल व्यापारी बन्दरगाह तक ले जाते थे और वहां विदेशी उसे खरीद लेते थे। देश की भौगोलिक स्थिति के कारण विजयनगर के शासकों को घोड़ो की आवश्यकता रहती थी। प्रति वर्ष हजारों घोड़े खरीदे जाते थे। घोड़ों का व्यापार पुर्तगालियों के हाथ में था और वे लोग इस व्यापार से बहुत धन पैदा किया करते थे[2]। इस प्रकार पश्चिमी जल-मार्ग में पुर्तगालियों की प्रधानता रही। पूर्वी अफ्रिका, अरब तथा ईरान का व्यापार सीधे भारत से होता था। विजयनगर के बने कपड़े बिकने के लिए बाहर जाया करते थे। भारत में मलाबार के किनारे से पहले से ही मिश्र तथा एशिया के पश्चिमी भाग से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुका था[3]। फ्रेडरिक ने लिखा है कि चीन का रेशम, फलालैन एवं घोड़े आदि के बदले में व्यापारी विजयनगर से सोना व हीरा ले जाते थे[4]। अरब के लोग दक्षिण-भारत में बस गए थे और व्यापार करते थे। पूर्वी देशों से भी व्यापार कम न होता था। भारत का व्यापार पूर्वी द्वीप-समूह तथा चीन देश तक फैला हुआ था। वहां मसालों तथा चीन देश के रेशम का व्यापार उन्नति पर था। रेशम विजयनगर-राज्य के लिए एक आवश्यक वस्तु थी। राजा तथा बड़े कर्मचारी-गण रेशमी ही कपड़े पहनते थे। एक लेख में वर्णन मिलता है कि पूर्वी-भाग से प्राप्त स्थल 'आदायम्' (Import duty) चिन्नकेशव मंदिर को दान कर दिया

---

१ मैसूर गजेटियर भाग १ पृ० ४७७

२ कोटो—भाग ८ पृ० ६३

३ कृष्णस्वामी--कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इंडिया पृ० ३२३

४ फ्रेडरिक—पिलग्रिम्स भाग १० पृ० ९९

गया था[१]। इस प्रकार सामुद्रिक व्यापार के कथन की पुष्टि होती है। इस विवरण से विजयनगर राज्य में जल-मार्ग द्वारा अन्य देशों से जहाजों में माल लाद कर व्यापार करने का पता चलता है। इस समय दक्षिणी-भारत में व्यापार के निमित्त विदेशियों में होड़ लगी हुई थी।

आयात व निर्यात

विजयनगर राज्य की स्थापना से पूर्व में भी भारत का सामुद्रिक व्यापार उन्नत अवस्था में था। बड़े-बड़े जहाज़ों द्वारा माल आता जाता था। मिश्र देश की ममियों की पुरानी कब्रों में महीन (बारीक) भारतीय मलमल मिला है। दक्षिण भारत में रोम-साम्राज्य के असंख्य सिक्के मिले हैं जो विदेशियों के साथ व्यापार की बात सिद्ध करते हैं। भारत में, प्राचीनकाल में, सुन्दर वस्त्र बनते थे और उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। विजयनगर राज्य में कपड़े के व्यापर की कमी न थी। सूती कपड़े प्रचुर मात्रा में बनते थे। वे कपड़े विदेश में भी बिकते थे। इसके अलावा दक्षिण भारत से मिर्च मसाला, मोती, हाथीदांत, कीमती पत्थर तथा हीरा बाहर जाता था। निर्यात में कपड़ों के साथ चन्दन तथा सुगन्धित पदार्थ भी शामिल थे। इनके बदले में भारत में अन्य सामान आता था। विजयनगर राज्य को घोड़ों की अत्यन्त आवश्यकता थी। अतएव घोड़ा, रेशम, मूँगा, कपूर और नमक आदि वस्तुएँ आयात के अन्दर थीं[२]। मसाले, कपूर और रेशम आदि चीजें चीन और पूर्वी द्वीपों से आती थीं और घोड़ा, मोती तथा सोने के सिक्के पश्चिमी देशों से आते थे। विजयनगर में इन वस्तुओं को ले आने का श्रेय पुर्तगाली लोगों को था। भारत से अधिकतर सुख और भोग-विलास की सामग्री विदेशी लोग बाहर ले जाते थे और विजयनगर में आवश्यकीय पदार्थ उनसे मोल लिया जाता था।

---

१ रंगाचार्य—नेलोर इन्स० भा० १ पृ० ६२०

२ कृष्णास्वामी—कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इण्डिया पृ० ३६१।

विजयनगर में लोहे तथा अन्य धातुओं का व्यवसाय आश्चर्य-जनक उन्नति पर था। दक्षिण में लोहे का व्यापार विजय नगर के लोगों के हाथों में रहा। पुर्तगाली इनसे लोहा खरीद कर ताँबा देते थे। विजयनगर की विशाल सेना के लिए धनुष, तलवार, बन्दूक आदि तैयार करने के बड़े-बड़े कारखाने बने थे। इन कारखानों में युद्ध-सामग्री तथा अन्य प्रकार के औजारों के अतिरिक्त धातु की मूर्त्तियां भी बनाई जाती थीं। कृष्णदेव राय तथा उनकी दो रानियों की धातु की मूर्त्ति अत्यन्त सुन्दर बनाई गई थी, जिसमें सब वस्त्र तथा आभूषण सूक्ष्म रूप से दिखलाये गये हैं। तिरुवन्नमलाई में वेंकटपति देव की सुन्दर धातु-मूर्ति मिली है[1]। अब्दुर रज्जाक ने लिखा है कि देवराय द्वितीय ने धातु का एक अतीव सुन्दर मंदिर तैयार कराया था[2]। ओ०सी० गांगूली का मत है कि तिरुपति में धातु ढालने का काम जानने वाले निपुण कारीगर रहते थे[3]। उस समय में लोह आदि अन्य धातुओं की कारीगरी का केन्द्र मदुरा, तंजोर, उत्तरी आरकाट और सलेम आदि स्थान थे।

लौह-व्यवसाय

विजयनगर के वैभव का दिग्दर्शन पहले कराया जा चुका है। इन राजाओं का निवास स्थान चांदी, सोना और मणि आदि अनेक बहुमूल्य रत्नों से विभूषित किया जाता था तथा स्तम्भों में भी रत्न जड़े रहते थे। सोना और मोती का हार तो सभी के गले में दिखलाई पड़ता था। हीरों से जटित कुंडल तथा अंगूठियां सब धनी लोगों के पास दिखलाई पड़ती थीं। वारबोसा ने लिखा है कि नीलम तथा हीरा दक्षिण भारत में खान से निकाले जाते थे। विजयनगर में सोने के सिक्के अधिक प्रचलित थे। इसके बाद ताँबे

सोना, मोती आदि का व्यवसाय

---

१ गांगूली—साउथ इंडियन ब्रोन्ज़ेज़ पृ० १२४ व १२५

२ सेवेल-ए फा० इम्पा० पृ० ८८

३ गांगूली-सा० इ० ब्रो० पृ० ६०

के सिक्कों की प्रधानता समझी जाती थी[१]। ये सिक्के सोने के व्यापार की प्रचुरता के द्योतक हैं। भारतवर्ष के दक्षिणी भाग में समुद्र के किनारे मोती निकाले जाते थे। सन १५१५ ई० तक यह व्यवसाय मुसलमानों के हाथ में था। अरब के व्यापारी दक्षिणी समुद्र के किनारों से मोती निकाला करते थे, परन्तु विजयनगर के शासकों ने इस व्यापार की आज्ञा अन्य लोगों को न देकर इसे राजकीय संरक्षित 'वस्तु' (State monopoly) बनाया और मोतियों का व्यापार प्रारम्भ कर दिया। यही कारण है कि विदेशों को जाने वाली वस्तुओं में मोती की भी गणना होती थी। राजा मोती निकालने वाली व्यापारिक संस्थाओं से कर ग्रहण किया करता था, जिसका वर्णन उस समय के एक लेख में पाया जाता है[२]। कभी-कभी मोती निकालने का ठेका भी दे दिया जाता था और कर रूप में द्रव्य वसूल किया जाता था[३]।

भारत में प्राचीन काल से ऐसी प्रणाली चली आती है कि देश का अधिक व्यापार जनता द्वारा ही किया जाता है। भारतीय व्यापार कभी पूंजीपतियों के हाथ में न था बल्कि गण-पद्धति से कार्य किया जाता था। विजयनगर-शासन-काल में व्यापारियों की अनेक संस्थायें थीं[४]। प्रायः प्रत्येक वर्ग में व्यापारिक संस्थायें वर्तमान थीं। कृषक तथा अन्य लोगों के भी गण मौजूद थे। स्मृतिकार शुक्र ने कलाकार, व्यवसायी आदि की संस्थायें (श्रेणी) का वर्णन किया है[५]। ये संस्थायें—जो श्रेणी (Guild) के नाम से प्रसिद्ध थीं। अपने व्यवसाय में लगी रहती थीं। सब लोग मिलकर कार्य करते थे। विभिन्न जाति के लोगों का मुकदमा भी उनकी

व्यापारिक संस्थायें

१—इ० ए० भा० २०। २ एपि० कर० भा० ३ पृ० १६७।

३ एपि० कर० भा० ५ पृ० ६८।

४ रंगाचार्य—नेलोर इन्स० भा० २ पृ० ६१८

५ शुक्रनीति—४।५।२६

श्रेणियों द्वारा तय किया जाता था। विजयनगर राज्य के अनेक लेखों में ऐसी श्रेणियों का वर्णन मिलता है[१]। इनमें वीर वणिजी अथवा सेठी का उल्लेख पाया जाता है। प्रत्येक सेठी का केन्द्र पृथक्-पृथक् था। विजयनगर राज्य में हस्तिनावटी, पेनुगोंडा, चन्द्रगिरि, उदयगिरि आदि चौदह केन्द्र प्रधान थे[२]। और इन्हीं केन्द्रों में व्यापार का अधिक कार्य होता था। उस संस्था के कई एक अधिकारी होते थे। प्रधान व्यक्ति को 'महाप्रभु' अथवा 'बड्डु व्यवहारी' कहते थे। उससे छोटे कर्मचारी को 'पट्टन स्वामी' कहा जाता था[३]। वह साप्ताहिक मेला का अधिकारी होता था। मेला का प्रबंध अन्य लोगों की सहायता से 'पट्टनस्वामी' किया करता था और उसको राजा की ओर से भूमि माफी (कर-रहित) दी जाती थी[४]। एक लेख में प्रधान का नाम 'महाबड्डु-व्यवहारी' लिखा मिलता है। उसने वीरभद्र के लिए एक सुन्दर मंदिर तैयार कराया। अब्दुर-रज्जाक ने लिखा है कि प्रत्येक संस्थायें अपनी-अपनी दूकानें रखती थीं[५]। यदि कोई संस्था व्यापार में प्रशंसनीय कार्य करती थी तो उसका राजकीय कर माफ कर दिया जाता था[६], अन्यथा सभी दूकान या सेठी से कर लिया जाता था[७]। सदाशिव राय द्वारा सुन्दर रीति से नमक बनाने वाली संस्था को सन् १५५१ में भूमि दी गई थी और उसे कर से मुक्त (माफ) कर दिया गया था[८]। इसी प्रकार से पटकार-समिति, लोहार, बढ़ई, कलाकार चर्मकार, कुम्हार आदि लोगों की समितियां काम करती थीं और सबको

---

१ एपि० कर० भाग २, ७ पृ० १०३, ११२। एपि० रि० १६१८ पृ० १७४। २ एपि० कर० भाग० ५ पृ० २०१

३ एपि० कर० भाग १० पृ० २६३। ४ वही पृ० १६

५ इलियट—हिस्ट्री आफ इंडिया भाग ४ पृ० १०७

६ मैसूर आ० रि० १६१७ पृ० ४८

७ एपि० रि० १६११ नं० ८३

८ एपि० कर० भाग ११ पृ० १६

कर देना पड़ता था[1]। तत्कालीन सेठी की संस्थाएं बैंक का भी काम करती थीं। मंदिरों के लिए दान में दी हुई भूमि का प्रबंध श्रेणियों द्वारा किया जाता था। वे उस जमीन को जिसका पैसा मंदिर के लिए व्यय किया जाता था पट्टे पर दे देती थी[2]। बाजार का सारा कर वसूल कर सेठी मंदिर के प्रबंध में व्यय करता था[3]। इस प्रकार 'वीर-वणिजी' की संस्था व्यापारिक कार्य करते हुए सार्वजनिक कार्य में भी भाग लेती थी। प्रत्येक श्रेणी या व्यवसायी-संघ प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के अनुसार लोकोपकारी संस्था के रूप में व्ययस्थित किया गया था। इन्हीं श्रेणियों के कारण जातीय सुधार तथा ग्रामीण-व्यवसाय पूर्ण रूप से उन्नति कर सका।

विजयनगर राजाओं के सिक्के

प्राचीन काल में सभी देशों में व्यापार वस्तु विनिमय (Barter) द्वारा होता था। शनैः-शनैः सिक्के तैयार किये गये और प्रयोग किये जाने लगे। भारत में कुषाण लोगों ने सोने के सिक्कों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। चाँदी तथा ताँबे के सिक्के तो पहले से ही बनते थे। विजयनगर के शासक वर्गों में एक राजा के सिक्के का अनुकरण दूसरे ने किया और तीसरे ने भी उसी शैली पर अपना सिक्का चलाया। इस तरह सिक्के बनते गये। विजयनगर के सिक्कों पर भी पूर्वगामी राजाओं की मुद्राओं का प्रभाव पड़ा। विजयनगर के पूर्व सिक्कों का नाम ज्ञात नहीं है परन्तु लेखों के उल्लेख से प्रकट होता है कि गद्यानक, निष्क, पण, हाग, द्रभ, धरण आदि नाम के सिक्के प्रचलित थे। उस समय ढालने तथा ठप्पे के तरीकों को प्रयुक्त किया जाता था। कुछ सिक्के ढाले हुए और कुछ ठप्पेदार मिलते हैं। उन सिक्कों पर एक ओर राज्य का चिन्ह तथा दूसरी ओर उपाधि सहित राजा का नाम खुदा है। विजयनगर काल में सिक्कों के आकार तथा धातु के निश्चय हो जाने से सर्व साधारण को सुविधा हो गई। राजाओं ने यह तय कर दिया कि कौनसा सिक्का

---

१ एपि० कर० भाग ३ पृ० १६७ २ एपि० रि० १९१३ पृ० १२२

३ साउथ इण्डिया भाग ३ पा० ३० पृ० २२२

किस धातु का बनेगा, उसका आकार क्या होगा और उसकी तौल कितनी होगी।

विजयनगर के शासकों ने सोने, चांदी तथा ताँबे के भी सिक्के तैयार कराये। देश में सोने की अधिकता के कारण सोने के सिक्के अधिक संख्या में मिलते हैं। विदेशों से ताँबा मंगाकर उनका उपयोग किया जाता था। इस प्रकार इस राज्य में सिक्कों के लिए धातु की कमी न थी। सोने के सिक्के वाराह के नाम से पुकारे जाते थे परन्तु विदेशी इन्हें पगोदा के नाम से पुकारते थे। चांदी के सिक्कों को 'तार' का नाम दिया गया था। ताँबे के सिक्के जितल नाम से प्रसिद्ध थे जो वर्तमान पैसे के समान थे। सोने तथा ताँबे के सिक्कों को प्रायः प्रत्येक महान् सम्राट् ने तैयार कराया और अतः इन्हीं की संख्या अधिक थी। चांदी की कमी के कारण देवराय द्वितीय के अतिरिक्त अन्य किसी राजा के सिक्के प्राप्त नहीं हैं। उसने आधे तथा चौथाई पगोदे भी तैयार कराये।

विजयनगर के सिक्कों का जन्मदाता बुक्कराय था। उसके केवल सोने के सिक्के मिले हैं[1]।

पगोदा—सोने का सिक्का।

एक ओर—ऊपर झुके हुए गरुड़ की आकृति। दूसरी ओर-श्री वीर बुक्कराय लिखा है।

हरिहर प्रथम

(१) अर्ध पगोदा-सोने का सिक्का।

एक ओर-देव तथा देवी की बैठी हुई आकृति। दूसरी ओर—श्रीप्रताप हरिहर लिखा है। यह मूर्त्ति शैव देव तथा देवी की मानी गई है।

(२) जितल—ताँबे का सिक्का।

एक ओर—शिव के नन्दी (बैल) की आकृति।

दूसरी ओर—प्रताप हरिहर लिखा है।

---

१ इ० ए० भा० २०।

देवराय द्वितीय

(१) पगोदा—सोने का सिक्का।

एक ओर—हाथी की आकृति। दूसरी ओर—श्री प्रताप देवराय।

(२) अर्द्ध पगोदा—वही।

एक ओर—
दूसरी ओर— } पहले पगोदे की तरह।

(३) चौथाई पगोदा—

एक ओर-हाथी की आकृति। दूसरी ओर-श्री देवराय।

(४) तारा-चांदी का सिक्का।

एक ओर-नन्दी। दूसरी ओर श्री उत्तम राय।

देवराय द्वितीय की 'उत्तम' की पदवी केवल सिक्कों पर ही अंकित मिलती है।

(५) जितल—ताँबे के सिक्के

एक ओर—हाथी की आकृति। दूसरी ओर—श्री देवराय।

(६) जितल-

एक ओर—हाथी। दूसरी ओर—राय-गज-गंड-भेरुंड

(७) जितल

एक ओर—बायें ओर देखते हुए नन्दी की आकृति,
दूसरी ओर--श्रीप्रताप देवराय।

मल्लिकार्जुन

पगोदा--सोने का सिक्का

एक ओर--हाथी की आकृति। दूसरी ओर--श्री मल्लिकार्जुन

द्वितीय राज्य वंश--तुलुव-वंश

कृष्णदेवराय

कृष्णदेवराय के शासनकाल में सबसे अधिक (चौदह) सिक्के मिले हैं, परन्तु इनमें कोई विभिन्नता नहीं है[1]।

---

१ स्मिथ—कैटलाग आफ कायनूस इन इंडियन म्यूज़ियम पृ० ३२३।

(१) पगोदा—सोने का सिक्का।

एक ओर—मेहराब के नीचे विष्णु की खड़ी मूर्त्ति।

दूसरी ओर—श्रीकृष्णराय।

(२) पगोदा

एक ओर—शिव-पार्वती की मूर्ति। दूसरी ओर—श्री प्रतापकृष्णराय

(३) जितल—ताँबे का सिक्का

एक ओर—झुके हुए गरुड़ की आकृति। दूसरी ओर—श्रीकृष्ण(देव)राय।

(४) एक ओर—नन्दी, दूसरी ओर—श्री कृष्ण (देव) राय

अच्युत

(१) पगोदा—सोने का सिक्का।

एक ओर—एक पक्षी (ईगल) के पंजे में हाथी की आकृति बनी है और 'गंड भेरुण्ड' लिखा हैं। दूसरी ओर—श्रीप्रतापाच्युतराय लिखा है

(२) एक ओर—घोड़े की आकृति। दूसरी ओर—श्रीप्रतापाच्युतराय

सदाशिव

(१) पगोदा—सोने का सिक्का।

एक ओर—विष्णु तथा लक्ष्मी की आकृति।

दूसरी ओर—श्रीप्रताप सदाशिवराय।

(२) एक ओर—देव तथा देवी (बैठी आकृति)।

दूसरी ओर—श्री सदाशिवराय।

(३) पगोदा

एक ओर—शेर की आकृति। दूसरी ओर—श्री सदाशिवराय।

इस वंश के अधीनस्थ नायकों ने श्रीकृष्णदेवराय तथा सदाशिव के नाम से ही सिक्के चलाए।

आरविदु-वंश—रामराय

पगोदा—सोने का सिक्का।

एक ओर—छत्र के नीचे खड़ी विष्णु की आकृति।

दूसरी ओर—श्री रामराजा।

तिरुमल

(१) पगोदा—सोने का सिक्का

एक ओर—लक्ष्मी (खड़ी आकृति)

दूसरी ओर-श्री तिरुमल रायुलु (राय)

(२) पगोदा-

एक ओर-सीता राम (बैठी आकृति)

दूसरी ओर-श्री तिरुमल रायुलु

(३) पगोदा—

एक ओर-वाराह (तलवार और सूर्य के साथ की आकृति)

दूसरी ओर-श्री तिरुमल राय

(४) जितल—ताँबे का सिक्का

एक ओर-वाराह की आकृति

दूसरी ओर—सालुव तिरुमल राय

वेंकट पतिदेव

(१) पगोदा—सोने का सिक्का

एक ओर—खड़ी विष्णु की आकृति

दूसरी ओर—श्री वेंकटेश्वरायनमः (लिखा है)

(२) पगोदा—

एक ओर—हनुमान की आकृति

दूसरी ओर—श्री वेंकटपति राय

(३) जितल—ताँबे का सिक्का

एक ओर—विष्णु की आकृति

दूसरी ओर—श्री वेंकटपति राय

आरविदु-वंश के अन्तिम समय में विजयनगर राज्य की शक्ति कम हो जाने से इकेरी तथा मदुरा के नायकों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी और अपने नाम से सिक्के प्रचलित किये थे[1] ।

---

1 का० जर० आफ मिथिक सोसाइटी भा० १३

सिक्कों के अध्ययन से प्रकट होता है कि सर्व प्रथम कृष्णदेवराय के समय में सिक्कों पर नागरी लिपि का प्रयोग किया गया। इससे पूर्व सब लेख तेलुगु में अङ्कित किये जाते थे। कृष्णदेव राय के पश्चात् नागरी-लिपि को प्रधान स्थान मिल गया। सब राजाओं के सिक्कों पर नागरी में लेख लिखे जाने लगे। इसका कारण व्यापार की वृद्धि ही ज्ञात होती है। सिक्कों पर सर्वसाधारण—विदेशी, मुसलमान आदि—को तेलुगु पढ़ने में कठिनाई होती होगी, अतएव भारतीय—संस्कृति के रक्षक विजयनगर शासकों के लिए नागरी लिपि के अतिरिक्त दूसरी कोई लिपि इस कार्य लिए समुचित न ज्ञात हुई। संस्कृत का प्रचार बढ़ रहा था। तेलुगु साहित्य के समान संस्कृत में भी ग्रंथ लिखे जाने लगे, अतएव नागरी का प्रयोग सरल समझ कर तथा अन्य लोगों के लिए भी सरल होने के कारण ऐसा परिवर्तन किया गया होगा।

इसके अतिरिक्त विजयनगर के सिक्कों के अध्ययन से निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश पड़ता है। हमें सर्व प्रथम देश की धार्मिक अवस्था का ज्ञान होता है। संगम-वंश के राजा वीर शैव थे क्योंकि सिक्कों पर शिव तथा नन्दी की आकृतियाँ पाई जाती हैं। आरविदु-वंश के शासकगण परम वैष्णव थे। उनके सिक्कों पर उत्कीर्ण विष्णु, लक्ष्मी, वाराह आदि की आकृतियाँ उनकी धार्मिक भावना को प्रकट करती हैं। ध्यान देने योग्य दूसरी बात हाथी की आकृति तथा 'गजगंडभेरुंड' का लेख है। इससे देवराय द्वितीय तथा अन्य राजाओं का आखेट-प्रेम प्रकट होता है। सिक्कों पर उत्कीर्ण घोड़े की आकृति बतलाती है कि विजयनगर-राज्य में इस पशु की कितनी महत्ता थी। सैनिक कार्य के लिए घोड़ा महत्त्वपूर्ण पशु समझा जाता था।

सिक्कों के तैयार करने का कार्य उत्तरदायी राज-कर्मचारी को ही सुपुर्द किया जाता था। अब्दुर रज़्ज़ाक ने लिखा है कि राजमहल के समीप ही सिक्कों का निर्माण-गृह (टकसाल) वर्तमान था[१]। इस गृह को राजमहल

---

१ इलियट—हिस्ट्री आफ इंडिया भा० ४ पृ० १११

के समीप रखने का तात्पर्य यही हो सकता है कि शासक उसका स्वयं निरीक्षण कर सके और कर्मचारी तैयार सिक्के को सरलता से राजकोष में ले जा सके। इसके अतिरिक्त अन्य संस्थाओं को भी सिक्के तैयार करने का अधिकार दिया गया था। 'पराशर-माधव' में वर्णन मिलता है कि राजा हरिहर ने सिक्कों को बनाने वाली संस्थाओं पर कर लगा दिया था। इस प्रमाण से उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है। जैसा कि बतलाया जा चुका है, माधव के परामर्श से विजयनगर सम्राट् ने सिक्कों की बनावट में अधिक सुधार किये और नागरी-लिपि का प्रयोग सिक्कों पर होने लगा। यदि संगम वंश के सिक्कों का अध्ययन किया जाय तो यह प्रकट होता है कि विभिन्न शासकों ने अपने सिक्कों पर भिन्न-भिन्न चिन्हों का प्रयोग किया था। वैष्णव राजाओं ने गरुड़, लक्ष्मी-नारायण और सरस्वती आदि की, शैव सम्राटों ने नन्दी तथा उमा-महेश्वर की और रामभक्त शासकों ने हनुमान तथा श्रीरामचन्द्र की आकृतियाँ उत्कीर्ण कराईं। यह कहा जाता है कि किष्किन्धा के समीप सिक्कों के तैयार किये जाने के कारण हनुमान की आकृति को स्थान मिला। कुछ विद्वान् कहते हैं कि कदम्ब-वंश के शासकों से मैत्री स्थापित करने के लिए हनुमान की आकृति को सिक्कों पर स्थान दिया गया। कारण यह था कि उनके झण्डे पर हनुमान का चित्र बना था। देवराय द्वितीय के आखेट-प्रेम के स्मारक में हाथी की आकृति को सिक्कों पर चिन्हित किया गया। विजयनगर के दूसरे तथा तीसरे वंश के राजाओं ने भी अपनी धार्मिक-भावना के अनुसार वैष्णव तथा शैव-धर्म के प्रतीक स्वरूप चिन्हों को सिक्कों पर स्थान दिया। कृष्णदेव राय, तिरुमल राय तथा वेंकट आदि अपने सिक्कों पर धार्मिक चिह्नों को रखने का आग्रह करते थे। यहां तक कि विजयनगर राज्य के पतन होने पर भी श्रीरंग राय ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को सिक्के चलाने की आज्ञा इस शर्त पर दी कि कम्पनी के मालिक अपने सिक्कों पर शिव-पार्वती का चिन्ह सदा अंकित रखेंगे।

टकसाल

जैसा कहा गया है कि विजयनगर राज्य-काल में सोने, चांदी तथा ताँबे के सिक्के बनाये जाते थे। सिक्के विभिन्न आकार तथा वजन के होते थे और इसी आधार पर उनका नाम स्थिर किया जाता था। राजाओं के लेखों में तथा विदेशियों के यात्रा-विवरणों में सारे सिक्कों के नाम पाये जाते हैं। सोने के सिक्के वाराह, गद्याण, पगोदा, प्रताप, पण तथा हाग के नाम से प्रसिद्ध थे। कोई सिक्का वजन में हलका तथा कोई भारी हुआ करता था। रज्ज़ाक ने लिखा है कि दस पण के बराबर (मूल्य में) एक गद्याण समझा जाता था[1]। परन्तु लेखों में आठ पण के मूल्य के बराबर एक गद्याण बतलाया गया है[2]। सिक्कों पर विभिन्न चिह्नों के कारण उनके कई नाम मिलते हैं। प्रताप आधे पगोदा के मूल्य के बराबर होता था। चालीस प्रताप सिक्कों के बराबर वाराह समझा जाता था। प्रताप तथा काठी नाम के नये सिक्के विजयनगर में प्रचलित हुए थे। पगोदा का चौथाई भाग काठी के नाम से पुकारा जाता था। कृष्णदेव राय तथा देवराय के लेखों से पता चलता है कि गद्याण का मूल्य घट गया था और पांच पण के मूल्य के बराबर उसकी गिनती होने लगी थी[3]। हाग नामक सोने का सिक्का सर्व प्रसिद्ध था। इसका मूल्य एक पण के चौथाई भाग के बराबर था। इसका दूसरा नाम 'काकिनी' भी था। शिव-तत्त्व रत्नाकर में 'सा काकिनी ताश्चपणः चतुःसु' का उल्लेख पाया जाता है। दक्षिण भारत के एक लेख से भी पता चलता है कि एक पण का मूल्य-चार 'काकिनी' के बराबर था[4]। ये सोने के सिक्के—जो पृथक्-पृथक् तौल के थे—विभिन्न नाम से विजयनगर-राज्य में प्रचलित थे।

चाँदी का एक प्रकार का सिक्का चलता था जिसे 'तारा' कहा जाता

---

१ इलियट—हिस्ट्री भा० ४ पृ० १०६।

२ सा० इ० इ० भा० ७ नं० ३४८।

३ मद्रास आ० रि० १३२ पृ० २०६।

४ एपि० कर० भा० ४ पृ० ३१।

था। तांबे के तीन प्रकार के सिक्के चलते थे जिन्हें 'पण', 'जितल' या 'कासु' के नाम से पुकारते थे। अब्दुर रज़्ज़ाक ने जितल का उल्लेख किया है। 'पराशर-माधव' तथा 'मिताक्षरा' में पण सिक्के (तांबा) का नाम आता है। कासु भी एक प्रकार के तांबे का सिक्का था। इस प्रकार सोने, चांदी तथा तांबे के सिक्के राज्य में प्रयोग में लाये जाते थे।

विजयनगर में मुद्रा-गृह (टकसाल) के निरीक्षण के लिए एक कर्मचारी नियुक्त किया गया था। वह सरकारी टकसाल तथा खानगी टकसालों का निरीक्षण करता था[१]। गैर-सरकारी टकसालों से यह कर्मचारी कर वसूल करता था। कभी कभी स्थान के नाम पर (जहां टकसाल थी) सिक्कों का नाम रख दिया जाता था। वाराकास तथा मंगलूस दक्षिणी कनारा देश के नगर थे। उन स्थानों में तैयार किये गये सिक्कों के नाम में इन स्थानों के नाम के साथ गद्याण और जोड़ दिया जाता था। किसी किसी सिक्के पर 'म' तथा 'न' अक्षर खुदा मिलता है। मुद्रा-शास्त्र के पंडितों ने इन अक्षरों से मदुरा तथा नेलोर नामक नगरों का अर्थ निकाला है। अतः इन सिक्कों पर अंकित अक्षर स्थान-विशेष के बोधक हैं। विजयनगर के ह्रास के समय भिन्न-भिन्न स्थानों में कई प्रकार के सिक्के तैयार किये जाने लगे। मध्यप्रांत के अकोला जिले में विजयनगर के बहुत से सिक्के मिले हैं। नायकों ने भी अपने सिक्के चलाये थे।

ऊपर प्रस्तुत किये गये वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि विजय-नगर की आर्थिक-अवस्था बहुत ही अच्छी थी। प्रजा सुखी तथा वैभव-सम्पन्न थी। सोने के सिक्कों की प्रचुरता के कारण यह पता चलता है कि राज्य में धन की प्रचुरता थी। राजकोश चाँदी, सोना, हीरा, मोती तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थों से भरा रहता था। विदेशियों ने अपने यात्रा-विवरणों में विजयनगर की अनुपम शोभा तथा असंख्य धन का बड़े ही सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है।

---

१ सिलोनीज क्वायन एण्ड करेन्सी पृ० ६१

: १० :

सामाजिक-अवस्था

भारतवासियों का सामाजिक जीवन वर्णाश्रम-व्यवस्था पर अवलम्बित है। इसी के बल पर हिन्दू-समाज का भवन ठहरा हुआ है। प्राचीनकाल से ही भारत में वर्ण-व्यवस्था अक्षुण्ण रूप से वर्तमान है। इसकी उत्पत्ति तथा विकास पर कुछ लिखना यहाँ अप्रासंगिक होगा। केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि वैदिक काल के पश्चात् वर्ण का अर्थ जाति समझा जाने लगा। हिन्दू शास्त्रकारों ने चार वर्णों से, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का अर्थ लिया है। समाज में चारों वर्णों के पृथक् पृथक् कार्य थे। विजयनगर सम्राट् भारतीय-संस्कृति के रक्षक थे। इन्होंने आदर्श हिन्दू-जीवन को अपनाया था। इनके राज्य में चारों वर्णों के रहने का उल्लेख मिलता है। 'ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रा.' 'चत्वारो वर्णाः ब्राह्मणक्षत्रिय वैश्यशूद्राः' का उल्लेख शास्त्रों में पाया जाता है[1]। वर्णों का यही चार विभाजन विजयनगर काल में भी था, परन्तु इसके अतिरिक्त अनेक उपजातियां उत्पन्न होगई थीं जिनका वर्णन यथा स्थान किया जायेगा। विजयनगर सम्राटों ने वर्णाश्रम की संस्था का समुचित रूप से पालन किया। लेखों में इसके उदाहरण भरे पड़े हैं। यही कारण है कि हरिहर द्वितीय के लेख में उसे वर्णों का पालन करने वाला कहा गया है[2]। नेलोर की प्रशस्ति में वह 'सर्ववर्णाश्रमाचारप्रतिपालनतत्परः' बतलाया गया है[3]। महाराज बुक्क भी 'वर्णाश्रमधर्मपालिता' की उपाधि से

वर्णाश्रम का पालन

---

१ मनु० ६, ३२०, गौतम ११।२७, पराशर १।३६

२ चतुर्वर्णाश्रमपालकः।

३ एपि० इंडि० भा ३ पृ० ११७

उल्लिखित है[1]। इसी प्रकार देवराय द्वितीय भी 'सकलवर्णाश्रमधर्मानुपालिसुत' कहा गया है[2]। मल्लिकार्जुन सब वर्णों से उचित काम लेता था। सदाशिव के एक लेख में 'पुरराज्यं प्रशासति वर्णाश्रमसदाचार परिपालनपूर्वकम्' की बात कही गई है[3]। कृष्णदेव राय ने चारों वर्णों को अपने कार्य में लगे रहने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार यह प्रामाणित होता है कि विजयनगर के सम्राट् वर्ण-व्यवस्था के पालन करने वाले थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्ण के नियमों का पालन किया करता था। चार वर्णों के साथ ही साथ चार आश्रमों का भी उल्लेख लेखों में मिलता है। कृष्णदेव राय के कथनानुसार गृहस्थाश्रम सर्व प्रधान समझा जाता था[4]। विद्याभ्यासी ब्रह्मचारी पाठशाला में अध्ययन करते थे। गृहस्थाश्रम की प्रधानता थी। गृहस्थ जीवन को प्रायः सभी आनन्द पूर्वक व्यतीत करते थे। वानप्रस्थ आश्रम का वर्णन बहुत कम मिलता है। परन्तु बहुत से व्यक्ति वृद्धावस्था में संन्यासी हो जाते थे। धर्म के प्रचारक सदा संन्यासी ही होते रहे। मंदिरों में भी यतियों या साधुओं के निवास का उल्लेख मिलता है।

ब्राह्मण तथा उसके कर्त्तव्य

समाज में ब्राह्मणों का सबसे अधिक आदर होता था। कृष्णदेवराय ने 'आमुक्तमाल्यम्' में लिखा है कि राजा राज्यप्रबन्ध, पूजा तथा ब्राह्मणों की सेवा करने के लिए प्रजा से कर ग्रहण किया करता है[5]। अब्दुर रज्जाक ने लिखा है कि विजयनगर में ब्राह्मणों की सबसे अधिक प्रतिष्ठा थी[6]। पेई ने भी यही लिखा है कि ब्राह्मण पुजारी का काम करते थे और उनका

---

१ एपि कर० भा०८ पृ० १४४

२ वही ,, ७ ,, २७

३ वही ,, ८ पृ० ४१८

४ एपि० कर० भा० ३ भूमिका

५ आ० मा० श्लोक २६२

६ इलियट–हिस्ट्री भाग ४ प० १०५

अधिक सत्कार किया जाता था[1]। मनु आदि स्मृतिकारों ने ब्राह्मणों के अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान तथा प्रतिग्रह, ये छः कर्म बतलाये हैं[2]। माधवाचार्य ने भी 'पराशर-स्मृति' की टीका में 'षट्कर्माभिरतोविप्रः' का उल्लेख किया है[3]। विजयनगर राज्य के एक 'अग्रहार' लेख में[4] ब्राह्मण की योग्यता का वर्णन किया गया है, जिसमें ब्राह्मण यम नियम, स्वाध्याय, ध्यान, धारणा, मौन, अनुष्ठान, जप, समाधि और शील आदि गुण-सम्पन्न, चारों वेदों तथा वेदांग का पण्डित (ज्ञाता) बतलाया गया है। इससे यह प्रकट होता है कि ब्राह्मण वैदिक ग्रन्थों के अध्ययन एवं अध्यापन में लगे रहते थे। वे षड्कर्म का पालन नियमपूर्वक करते थे। मनुष्य का धर्म समय के साथ ही परिवर्तित होता रहता है। अतः विजयनगर राज्य में ब्राह्मण षड्कर्म के अतिरिक्त अन्य कार्य भी अवश्य करते थे। स्मृतिकारों ने भी 'षड्कर्म निरतः विप्रः कृषिकर्म च कारयेत्' की बात कही है[5]। पुर्तगाली यात्री पेई ने लिखा है कि ब्राह्मण विभिन्न व्यवसाय—खेती, व्यापार, नौकरी (मंदिर में अथवा सेना में) आदि कार्यों से अपना जीवन निर्वाह करते थे[6]। लेखों में वर्णन मिलता है कि माधव ने सेनापति के पद पर आरूढ़ होकर कई देश जीते[7]। राजगुरु सदा युद्ध क्षेत्र में जाया करता था। हरिहर द्वितीय के शासन काल में अनेक ब्राह्मण मंत्री तथा सेनापति के पद पर नियुक्त थे[8]। भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न कई व्यक्ति नायक के पद से शासन करते थे[9]। राज्य में अनेक

---

१ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३६०

२ मनु० १०।७५। ३ पराशर स्मृति १।३८

४ एपि० कर भाग ५ पृ० १६०

५ पराशर २।२. ६ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर

७ एपि० कर० भा० ७ पृ० १४६

८ आ० स० रि० १६०७—८ पृ० २३८

९ एपि० कर० भा० ६ पृ० ८६

ब्राह्मण सैनिक का कार्य करते थे[1] । इन सब कार्यों के अतिरिक्त धर्म-प्रचार का कार्य ब्राह्मण को ही सौंपा गया था । विजयनगर काल में मुसलमान तथा ईसाई मत का भी प्रचार हो रहा था । राजा धर्म सहिष्णु था । राजधानी में ईसाईयों को चर्च बनाने की आज्ञा दी गई थी । वहां वे निवास करते थे । वेंकट पतिदेव ईसाई मत से सहानुभूति रखता था । ब्राह्मणों ने वेंकटपति की राजसभा से ईसाइयों को निकलवा दिया । इस विवरण से यह प्रतीत होता है कि राज्य में ब्राह्मणों का अधिक महत्त्व था। विजयनगर के सैकड़ों लेखों में ब्राह्मणों को अग्रहार दान देने का वर्णन मिलता है । राजा उनको ग्राम तथा द्रव्य आदि दान में दिया करता था। विद्वान् ब्राह्मण कर से भी मुक्त कर दिये जाते थे । इसका कारण यह था कि वे राजा द्वारा प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते थे । राजाओं की दान-प्रशस्तियों में ब्राह्मणों के गोत्र, वेद तथा शाखाओं के भी नाम मिलते हैं। देवराय द्वितीय के लेख में ब्राह्मणों के हारीत, कौशिक; काश्यप, श्रीवत्स, गौतम तथा शाण्डिल्य आदि गोत्रों के नाम मिलते हैं[2] । अन्य लेखों में भी इसी प्रकार से गोत्रों का उल्लेख पाया जाता है[3] । इससे प्रकट होता है कि राज्य में विभिन्न गोत्र के ब्राह्मण वर्तमान थे। उस समय ब्राह्मणों का एक विशेष पहनावा होता था। न्यूनिज़ ने लिखा है कि वे पतले मलमल के वस्त्र पहनते थे। वे कन्धे पर चादर तथा सिर पर पगड़ी रखते थे। कानों में कुण्डल पहिनते थे। ब्राह्मण लोग शास्त्रोक्त रीति से पूजा पाठ करते थे[4] ।

क्षत्रिय समाज में ब्राह्मणों के सदृश क्षत्रियों को भी ऊंचा स्थान प्राप्त था । उनका मुख्य कर्त्तव्य क्षात्र धर्म का पालन करना था।

---

१ नं० १२८ आफ १६१३

२ एपि० इंडि० भा० ३। ३ एपि० कर० भा० ४ पृ० ५६ ।

४ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३६३ ।

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रक्षयेत् नृपतिः सदा ॥[1]

ऐसा उल्लेख स्मृति-ग्रन्थों में पाया जाता है। राज-प्रबन्ध में प्रायः क्षत्रियों का ही हाथ रहता था। परन्तु विजयनगर राज्य में यह बात नहीं थी। ब्राह्मणों ने भी राज्य-प्रबन्ध में पर्याप्त भाग लिया। उस समय प्रांत-अधिपति तथा ऊँचे राजकर्मचारी प्रायः क्षत्रिय ही होते थे[2]। अपने धर्म का पालन करते हुए क्षत्रिय लोग जीवन यापन करते थे।

वैश्य तीसरा वर्ण वैश्यों का था जिनका प्रधान कर्म वाणिज्य था। पराशर ने ऐसा ही उल्लेख किया है[3]।

"कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता"

विजयनगर-राज्य में कृषि तथा वाणिज्य की प्रधानता थी। राज्य को अतुल वैभव तथा असंख्य श्री व्यापार से ही मिली थी। विजयनगर-साम्राज्य में खेती बड़े पैमाने पर होती थी। कृषि की उन्नति के लिए नहरें निकाली गईं थीं। वैश्य पुर्तगालियों के साथ व्यापार करते थे। राज्य में मार्ग आदि की सब सुविधाएं थीं जिनका वर्णन यथा स्थान किया जायेगा। यहां के व्यापारी (वैश्य) अधिकतर मूल्यवान् पदार्थों का व्यापार करते थे। मोती, मूंगा, सोना, जवाहिरात आदि का व्यापार अधिक होता था। पुर्तगालियों के हाथ मसाला आदि भी बेंचा जाता था। घोड़ों का व्यापार प्रधान था। सेठी जाति की गणना वैश्यों में होती थी। सब सेठी मिलकर संस्था के रूप में रहते तथा कार्य करते थे। यह नहीं कहा जा सकता कि व्यापार करने से वैश्यों में विद्या का अभाव था। विजयनगर में वैश्य भी विद्वान् हुआ करते थे और वेद, तर्क, व्याकरण और कला में निपुण होते थे। गणित-शास्त्र तो उनके अध्ययन का मुख्य विषय रहता था।

इन वैश्यों की एक विशेष प्रकार की वेश-भूषा होती थी। व्यापारी

---

१ विष्णुस्मृति ५।३। २ एपि० कर० भा० २ पृ० ८८.
३ पराशर-स्मृति १।६८

लोग कमर से गले तक कोई वस्त्र धारण न करते थे। सिर पर लम्बे बाल तथा लम्बी पगड़ी बांधते थे। दाढ़ी घुटी होती थी। ललाट पर त्रिपुण्ड (भस्म) या तिलक लगाते थे। कानों में हीरा से जटित कुण्डल, अंगूठी, तथा कमर में सोने की करधनी पहनते थे। वैश्य-बालक गणित में निपुण होते और पिता के साथ व्यापार में लगे रहते थे। ये अँगुली पर हिसाब लगाते थे[1]।

वर्ण व्यवस्था में अंतिम वर्ण शूद्रों का था जिनका मुख्य कर्त्तव्य द्विजों—ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य—की सेवा करना था। स्मृतिकारों ने शूद्रों के कर्तव्य के विषय में लिखा है कि—

शूद्र

पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम्[2]।
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते[3]॥

अर्थात् सर्व प्रथम शूद्र का सेवा-कार्य माना गया है। विजयनगर-राज्य में ऐसे शूद्रों का वर्णन कम मिलता है जिनको आजकल शूद्र कहा जाता है। तत्कालीन वर्णों का विवरण विदेशी यात्रियों ने किया है। उस समय 'कम्बलतर' नामक एक जाति थी जो चपरासी का कार्य किया करती थी। दूसरी 'केकिकोलर' नामक जाति थी जो कपड़े बुनने का काम करती थी। 'डम्बर' नामक जाति नट का काम करती और खेल दिखाया करती थी। इनका निवास स्थान अधिकतर तेलुगु या कर्नाटक प्रांत में था[4]। पिटारी में साँप रखना और उसका प्रदर्शन करना डम्बर लोगों का प्रधान पेशा था।

अन्य जातियां

चारों वर्णों के अतिरिक्त अन्य जातियां भी राज्य में बसती थीं। कृष्ण-देव राय के समय में 'रेड़ी' नामक जाति व्यापार करती थी तथा इससे असंख्य धन कमाती थी। देवराय द्वितीय के समय में रेडी लोगों की प्रधानता थी[5]।

विजयनगर राज्य में नाई-जाति के लोग अधिकता से मौजूद थे।

---

१ बारबोसा—डेमस भाग २ पृ० १२५

२ मनुस्मृति ८। ४१०। **३ पराशर-स्मृति १।६६**

४ इ. ए. भा. ६३ पृ. १३६ । **५ वटरवर्थ—नेलोर लेख भा. १ पृ. १५३**

राज्य में उनको कर देना पड़ता था क्योंकि वे राज्य में शांति-पूर्वक द्रव्य उपार्जन करते थे। रामराय ने उनके कार्य से प्रसन्न होकर सभी नाईयों को कर से मुक्त कर दिया[1]। राज्य में उसी समय से उनसे कर-ग्रहण नहीं किया जाता था। अच्छे कार्य के करने के लिए द्रव्य या ज़मीन इनाम में दी जाती थी। उनको प्रत्येक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गई थीं। इसके अतिरिक्त गोप (अहीर, ग्वाला) जाति का भी नाम अनेक लेखों में मिलता है। कृष्णदेव राय ने गोपों को ग्राम दान में दिया था[2]।

बारबोसा ने लिखा है कि विजयनगर में योगी नामक एक जाति थी। वे नंगे रहा करते थे। वे निर्धन होते थे। भीख मांगते थे। विभूति शरीर में लगाये रहते थे। जब मन्दिरों में बकरों की बलि दी जाती थी तब शंख बजाकर ये इसकी घोषणा किया करते थे कि देव ने बलि ग्रहण कर ली। वे एक गिरोह में फिरते थे तथा भीख माँगते थे। सम्भवतः यह जाति वर्तमान 'गोस्वामी' लोगों के समान थी। अन्यथा साधु की कोई पृथक् जाति नहीं होती थी। साधु (यति) तो प्रत्येक जाति के लोग हो सकते थे। प्राचीन काल में मध्य भारत में 'गोस्वामी' जाति के लोग रहा करते थे। शायद मुसलमानों के आक्रमण से वे दक्षिण भारत में चले गए। विजयनगर के हिन्दू राज्य में पुनः उनकी उन्नति हो गई। इस प्रकार विभिन्न जातियां विजयनगर साम्राज्य में अपने अपने कार्य में लगी रहती थीं तथा वर्णाश्रम-व्यवस्था का पूर्णतया पालन करती थीं।

दास-प्रथा

भारतीय समाज के सम्पूर्ण अंग उन्नत अवस्था में होते हुए भी दास-प्रथा किसी न किसी रूप में अवश्य वर्तमान थी। विजयनगर से पूर्व के एक लेख में वर्णन मिलता है कि गुलाम लड़ाई पर भेजे जाते थे और वे युद्ध करते थे[3]। तामिल इतिहास में दास को मंदिर के कार्य के निमित्त देने वाले व्यक्ति का उल्लेख

---

१ एपि. कर. भा. १२ पृ. ६६। भा ११ पृ० ११७

२ बटरवर्थ—भा १ पृ. ३१६। ३ एपि० कर० भा० ८ पृ० ३१

मिलता है[1]। निकोलो ने लिखा है कि विजयनगर राज्य में ऋण लेने वाला यदि ऋण नहीं चुका सकता था तो वह स्वामी का गुलाम बन जाता था[2]। वेंकट पतिदेव के समय में ऋण के कारण परिवार के कई आदमी मालिक के हाथ बेंच दिये गये थे। परन्तु गुलामी की प्रथा होते हुए भी दासों की अवस्था बहुत गिरी हुई न थी। गांव में खेती करने का उनको अधिकार था। दास मालिक को अनाज का अधिक भाग दिया करता तथा स्वयं कुछ भाग रख लेता था। उसी गांव की पंचायत में वह दास नौकरी कर सकता था जहां उसका मालिक रहता था।

देश-प्रेम

जनता में देश-प्रेम की मात्रा अधिक थी। विजयनगर शासकों द्वारा भूमि, द्रव्य तथा पदवी (टाइटिल) देश-सेवा के लिए प्रदान की जाती थी। अपने निवास-स्थान (ग्राम) से चोरों को भगाने तथा मुसलमानों से हिन्दू-धर्म की रक्षा करने के लिए ज़मीन दी जाती थी। सदाशिव राय ने महीपति नायक को ग्राम-वासियों को डाके से बचाने के कारण धान्य तथा द्रव्य देने की आज्ञा प्रदान की थी[3]। कुछ लोगों को चोरों को भगा देने के लिए इनाम दिये जाते थे[4] अथवा कर-रहित भूमि दी जाती थी[5]। ऐसी भूमि को 'भाट-अग्रहार' कहा जाता था[6]। कभी-कभी भूमि के स्थान पर गायें इनाम में दी जाती थीं[7]। युद्ध-क्षेत्र में मरने वाले व्यक्ति की सन्तान को प्रति मास कुछ द्रव्य भत्ता या पेंशन के रूप में दिया

---

१ एपि० रि० १६०५ पृ० ४६

२ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ८७

३ कैटलाग आफ इन्सक्रुपशनस इन मद्रास म्यूजियम् नं० २६

४ एपि० कर० भाग ७ पृ० ११४

५ वही भाग १२ पृ० १०६। वही भाग १० पृ० ३१

६ वटरवर्थ—नेलोर इन्सक्रुपशन भाग २ पृ० ६६१

७ एपि० कर० भाग १२ पृ० ७३

जाता था[१]। देश के लिए अन्य काम करने पर भी राज्य की ओर से पदवियां प्रदान की जाती थीं तथा ऐसे व्यक्तियों को कुछ सुविधायें मिलती थीं। एक लेख में वर्णन मिलता है कि जिस व्यक्ति ने मंदिरों से मुसलमानों को हटाया उसे राग-भोग में पर्याप्त भाग दिया जाने लगा[२]। उस व्यक्ति को पवित्र जल मंदिर से सदा मिलता था। किसी किसी समय उसको पालकी अथवा भगवान् की चँवर पुरस्कार में दी जाती थी। कभी वह शहर का कोतवाल बनाया जाता था[३]। देश में अच्छे दस्तकारी के काम करने वाले कारीगर को मकान या जमीन इनाम में दी जाती थी[४]। विजयनगर सम्राटों ने अपने अधीनस्थ नायकों को भी देश-प्रेम के लिए पदवियां दीं। काञ्ची के नायकों को 'समस्तभुवनाश्रय', 'काञ्चीपुराधीश्वर' अथवा 'पाण्ड्यकुलस्थापनाचार्य' की पदवियां दी गई थीं[५]। इसके अतिरिक्त देश के प्रति लगन तथा इच्छापूर्वक कार्य करने वाले व्यक्ति को 'आचार्य, मुनि, आर्य या योगीन्द्र' की पदवियों से विभूषित किया जाता था[६]। इस विस्तृत विवरण से यही तात्पर्य निकलता है कि विजयनगर राज्य में जनता के देश-सेवा के कार्यों पर शासक की ओर से विशेष ध्यान रक्खा जाता था और उपहार भी दिये जाते थे। ये कार्य तत्कालीन लोगों के ऊंचे तथा पवित्र चरित्र का दिग्दर्शन कराते हैं। देश-भक्तों को राजा के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों से भी पुरस्कार मिलता था। लेखों में इस प्रकार का वर्णन मिलता है[७] कि जनता द्वारा किये गये कार्यों का पुण्य शासक को मिलता था।

---

१ वही भाग ८ पृ० ८३

२ नं० ७० आफ १९१५; रंगाचार्य—टोपो० लिस्ट भाग १ पृ० १६८

३ एपि० इंडि० भाग ६ पृ० १३०

४ एपि० कर० भाग १० पृ० १५६

५ एपि० इंडि० भाग ३ पृ० ३३०; मैसूर आ० रि० १९२० पृ० ३७

६ सा० इ० इ० भाग १ पृ० १५६

७ एपि० कर० भाग ४ पृ० ३५; नं० ३५८ आफ १९१८

विजयनगर शासनकाल में स्त्रियों को उच्च स्थान प्राप्त था। स्मृतिकार भारतीय समाज में स्त्रियों के स्थान के विषय में एक मत नहीं हैं[१]। उनकी महत्ता तथा अधिकार के विषय में सदा मतभेद बना रहा। मनु ने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' का उल्लेख कर इनकी महत्ता प्रदर्शित की है। विजयनगर दरबार तथा समाज में इनका अत्यन्त आदर होता था। विद्यारण्य ने 'पराशर-माधव' के दाय-विभाग (व्यवहार काण्ड) में इस बात का विवेचन किया है। उनके कथनानुसार स्त्रियाँ पिण्ड-दान कर सकती हैं। वे राजा की नौकरी कर सकती हैं। व्यापार, कारबार तथा कृषि में भी पर्याप्त भाग ले सकती हैं।

स्त्रियों का स्थान

उस समय राजकुमारियों को बालकपन से ही शिक्षा दी जाती थी। उनको गाना बजाना तथा नृत्य सिखलाया जाता था। राजमहल में ऐसी अध्यापिकायें नियुक्त की गई थीं जो उनको सब कला सिखलाती थीं। अब्दुर रज्ज़ाक का कथन है कि स्त्रियां तथा रानियां विदुषी होतीं थीं। वे गणित जानतीं थीं। ज्योतिष सम्बन्धी गणना करतीं तथा फलित-ज्योतिष से परिचित थीं[२]।

स्त्रियां शक्तिशालिनी होती थीं। वे कुश्ती लड़ा करती थी। पति के साथ रानियाँ युद्ध-क्षेत्र में जाया करती थीं[३]। और युद्ध-संचालन में भाग लिया करती थीं[४]। स्त्रियाँ राजकीय महल में नौकरी भी करती थीं। देवराय द्वितीय ने मन्दिरों में देवदासियों की नियुक्ति के लिए ग्राम दान में दिया था[५]। विजयनगर काल में ऐसी स्त्रियों के नाम मिलते हैं जिन्होने

स्त्रियों की रचनायें

---

१ मनु ६।१६४। याज्ञ- १।८२। शुक्र ४।५।५६५

२ सेबेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३७१

३ आ० स० रि० १६०८-६ पृ० १७८

४ मैसूर आ० रि० १६२३ पृ० ६०। ५ इपि० रि० १९२३

साहित्य सेवा से अपना नाम अमर बनाया है तथा बड़े-बड़े कवियों से उनकी तुलना की जा सकती है। कुमार कम्पण की पत्नी गंगदेवी का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है जिसने 'मधुरा-विजयम्' या कम्पण चरितम्' नामक महाकाव्य लिखा है। इस महाकाव्य में उसने अपने पति द्वारा मदुरा-विजय का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। दूसरी विदुषी तिरुमलम्बा का नाम तामिल-साहित्य में अमर रहेगा। इस रानी ने 'बरदाम्बिका-परिणयम्' नामक ग्रन्थ की रचना की[1]। रामराय की पत्नी एक प्रसिद्ध कवियित्री थी। मदुरा के रघुनाथ नायक की पत्नी 'घटिका-शतक' थी अर्थात् वह एक घण्टे में सौ श्लोकों की रचना करती थी। वह संस्कृत तथा तेलुगु दोनों भाषाओं में 'घटिका-शतक' होने के लिए प्रसिद्ध थी[2]। इन स्त्रियों के अतिरिक्त अहमदनगर की रानी चांदबीबी का नाम अत्यन्त विख्यात था। मुग़ल सम्राट् अकबर के साथ उसका युद्ध इतिहास प्रसिद्ध है। विजयनगर राज्य के अन्तिम दिनों में राजाओं की रानियां ही शासन-प्रबन्ध करती थीं।

विजयनगर में सर्वदा बहुत विवाह करने की प्रथा प्रचलित थी। राजाओं की कई स्त्रियाँ होती थीं। वे राजा के साथ यात्रा तथा युद्ध में साथ जाया करती थीं। सर्व साधारण लोग भी अनेक विवाह कर सकते थे। स्त्रियों के पति के साथ युद्ध तथा यात्रा में जाने से यह प्रकट होता है कि विजय-नगर-काल में पर्दे की प्रथा न थी[3]। स्त्रियां स्वतंत्रता पूर्वक पति के साथ यात्रा करती थीं और सामाजिक कार्यों में भाग लेती थीं। कृष्णदेव राय की धातु-मूर्त्ति, उसकी दो रानियों के साथ, मिली है। अनेगुडी के चित्रों में स्त्रियां जुलूस में सम्मिलित दिखालाई गई हैं जिससे पर्दे की प्रथा का प्रचार न होने की बात प्रकट होती है।

पर्दे की प्रथा का अभाव

---

१ वही। २ सालातोर-विजयनगर हिस्ट्री भा० २ पृ० १६४

३ एपि० कर० भा० ६ पृ० १०२

बाल-विवाह तथा शूद्रो द्वारा बेटी-बेंचने का उल्लेख लेखों में पाया जाता है। उस समय विवाह में तिलक या दहेज लेने का अधिक रिवाज था। वर को गांव तक दहेज में दिया जाता था। द्रव्य की तो कोई गणना ही नहीं की जाती थी। जो लोग जाति के इन नियमों का पालन नहीं करते थे वे जाति से बहिष्कृत कर दिये जाते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि वैवाहिक नियम बहुत कठोर थे और बाल-विवाह तथा दहेज की बुरी प्रथा प्रचलित थी।

दहेज की प्रथा

दक्षिण-भारत में विजयनगर से पूर्व सती की प्रथा प्रचलित थी। उस समय के लेखों में इसे 'सहगमन' कहा गया है[1]। विजयनगर में विधवा-विवाह की प्रथा न होने के कारण अधिकतर स्त्रियां सती हो जाती थीं। बारबोसा ने लिखा है कि राजा तथा नायक लोग अपने पुत्रों को राज्य-भार देकर युद्ध में चले जाते थे। युद्ध में उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नियाँ सती हो जाती थीं[2]। उस समय की धार्मिक भावनाएं स्त्रियों को इस कार्य के लिए बाध्य करती थीं। न्यूनिज़ ने इस बात की पुष्टि की है कि पति के मर जाने पर उनकी स्त्रियां रोती थीं और सती होने के लिए तैयार हो जाती थीं जिससे उनके वंश में कलंक न लगे। फ्रेडमरिक ने भी विजयनगर में सती होते हुए स्त्रियों को स्वयं देखा था[3]। स्त्रियाँ प्रत्येक दशा में पति के—युद्ध, घेरा, आक्रमण अथवा गृहयुद्ध में मर जाने पर सती हो जाती थीं। उच्च वर्ण के लोगों में इस प्रथा के प्रचार होने से यह सर्वसाधारण में भी फैल गई[4]। हरिहर के समय के लेखों में गौड़ की पत्नी के सती होने का वर्णन मिलता है[5]। इस लेख में भेलगौड़ के स्वर्ग-गामी होने की बात लिखी है

सती–प्रथा

१ मैसूर आ० रि० १६२० पृ० ४२; एपि० कर० भा० ७

२ बारबोसा-डेमस भा १ पृ० २१२

३ पिलग्रिम्स भा० १० पृ० ६४

४ इलियट—हिस्ट्री भा० ७ पृ० १३६

५ एपि० कर० भा० ८ पृ० १५

तथा उसकी पत्नी के 'सहगमन' का उल्लेख किया गया है। बुक्कराय के समय में सती होने के अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। हरिहर द्वितीय के समय में सती होने का उल्लेख मिलता है[1]। तत्कालीन युद्ध में मृत पति की सती स्त्रियों की प्रस्तर-मूर्तियां आज तक सुरक्षित मिलती है जिन्हें 'महासती-मूर्ति' कहा जाता है[2]। इस प्रकार विजयनगर के लेखों में 'सहगमन' के सैकड़ों उल्लेख पाये जाते हैं[3]। विदेशी यात्रियों ने वेंकटपति राय की रानियों के सती होने की बात को विशेषरूप से लिखा है[4]। उनके कथानुसार राजा के मरने के बाद उसकी तीन रानियां सती हो गई। सहगमन के समय वे उत्साह पूर्वक मृत शरीर के पास आई। वे सुन्दर वस्त्र तथा सोने और जवाहिरात के आभूषण पहन कर तैयार थीं। उस समय राजा का मृत शरीर वाटिका में सुन्दर लकड़ियां तथा सुगन्धित पदार्थों—चन्दन तथा घी—के साथ जलाया गया। रानियाँ सब उपस्थित लोगों की आज्ञा लेकर ऊँचे स्थान से चिता में कूद गई और दिव्य-गति को प्राप्त होगई[5]।

गणिका

सार्वजनिक स्त्रियों को वेश्या या गणिका कहते थे। भारत में गणिका की सत्ता प्राचीन काल से चली आती है। ये पढ़ी लिखी तथा काम-शास्त्र में कुशल होती थीं। विजयनगर से पूर्व चालुक्य राजाओं की प्रशस्तियों में इनका उल्लेख मिलता है[6]। विजयनगर राज्य में वेश्याओं के लिए गाना तथा नृत्य एक दैनिक कार्य था[7]। राजमहल में राजकुमारियों को गान विद्या सिखलाने के लिए गणिकाएँ नियुक्त की जाती थीं। मन्दिरों में इनका नाच, तथा गाना प्रत्येक शनिवार को हुआ करता था[8]। विदेशी लोग इनकी कला-कुशलता को देख कर दंग रह जाते थे। बड़े-बड़े उत्सवों—राम-नवमी तथा विजया-

---

१ मैसूर आ० रि० १९२३ पृ० ९० । २ सालातोर भा० २ पृ०८८
३ एपि० कर० भा० ३, ७, ८, ९, ११
४ सेवेल-ए० फा० इम्पा० पृ० २२४ ।५ हेरास-आरविदु पृ० ५०८
७ एपि. इंडि. भा. १३ पृ. ३७। ६ सा. इ. इ. भा. २ पृ. २६६
८ सेवेल—ए फा. इम्पा. पृ. २४१ ।

दशमी आदि-पर गणिकायें नृत्य किया करती थीं। अब्दुर रज्ज़ाक ने वर्णन किया है कि राजधानी में मुद्रानिर्माणगृह (टकसाल) के समीप में गणिकाओं के लिए एक स्थान निश्चित कर दिया गया था[१]। कृष्णदेव राय के समय में अधिक वेश्याएँ थीं। उसने एक 'गणिका-नगर' बसाया था। मन्दिरों में नाचने के लिए भूमि दान में दी जाती जिससे उत्सव के दिन नृत्य का व्यय उसी भूमि की आय से किया जाय[२]। फिरिस्ता के कथनानुसार वेश्याओ के लिए राजधानी में एक अलग मार्ग था। बारबोसा ने लिखा कि राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों पर गणिकाये सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण धारण करके नृत्य के लिए आती थीं। उनका सिर खुला रहता था। वे सिर में एक विशेष आभूषण तथा गले में मोती और हीरे का हार पहनती थीं। कानों मे कुण्डल तथा नाक में बेसर (झुलनी) पहनने की प्रथा थी। वे पैरों में चमड़े का जूता पहनती थीं[३]। विजयनगर-काल में नृत्य करती हुई गणिकाओं की आकृति प्रस्तर पर खुदी हुई मिलती है। ये मूर्त्तियाँ उस समय की नृत्य-कला का एक जीता-जागता चित्र सामने उपस्थित करती हैं[४]। उनमें होली के त्योहार पर गणिकायें सुन्दर वस्त्राभूषण और केश-ग्रंथ से सुसज्जित होकर नृत्य करती हुई दिखलाई गई हैं। इस प्रकार वेश्यायें जनता के आमोद-प्रमोद में योग-दान दिया करती थीं।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि विजयनगर काल में भारतीय समाज कितना उन्नत था। राजा वर्णाश्रम-धर्म का पालन करने वाला था तथा प्रजा अपने कर्तव्यों के पालन करने में प्रयत्नशील रहती थी। चारों वर्ण ' स्व-धर्म ' में निरत थे तथा समाज में किसी प्रकार का राग-द्वेष नहीं था। इस समय में गणिकाओं की सत्ता यह भी प्रमाणित करती है प्रजा सुखी होने के साथ ही विलासी भी थी।

---

१ इलियट—हिस्ट्री भा. ४ पृ. १११।

२ सेवेल—ए फा. इम्पा. पृ २०७।

३ डेमस भा० १ पृ० २०७

४ खानडेलवाला-इण्डियन स्कल्पचर प्लेट ७६

: ११ :

भौतिक-जीवन

गत पृष्ठों में विजयनगर-साम्राज्य की सामाजिक-अवस्था का वर्णन किया जा चुका है। अब हम इस अध्याय में संक्षेप में यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि विजयनगर-काल में लोगों का भौतिक-जीवन कैसा था? उस समय के लोग किस प्रकार का भोजन करते थे, उनका पहनावा किस ढंग का था तथा उनके मनोरंजन के साधन क्या थे? कौन-कौन से ऐसे उत्सव तथा त्योहार थे जिन्हें विजयनगर की जनता मनाती थी तथा इनके मनाने का क्या प्रकार था? तत्कालीन राजाओं की दिनचर्या क्या थी तथा वे किस प्रकार काल-यापन करते थे? जनता किस प्रकार मन्दिरों में जाकर देवता के दर्शन के साथ ही श्रवण-सुखद संगीत का भी आनन्द लेती थी? इन सब बातों का वर्णन अगले पृष्ठों में पाठकों को मिलेगा। इसमें सन्देह नहीं कि विजयनगर-काल में जनता का भौतिक-जीवन अत्यन्त आनन्दपूर्ण तथा सुखदायी था, जिसका उल्लेख विदेशी यात्रियों ने भी अपने यात्रा-विवरणों में किया है।

विजयनगर-राज्य में भौतिक-जीवन उन्नति की सीमा को पहुँच गया था। लोग सुख-पूर्वक अपना समय व्यतीत करते थे। फिरिश्ता ने

भवन

विजयनगर के राजमहल तथा साधारण भवन का सुन्दर वर्णन किया है। राजा का महल चारों तरफ से दीवालों से घिरा रहता था। महल के अन्दर जाने के लिए मार्ग बने थे। प्रत्येक द्वार पर द्वारपाल रहता था। सेनापति तथा नायकों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को अन्दर प्रवेश करने का निषेध था। कोई-कोई भवन स्तम्भों से सुसज्जित होते थे तथा उनमें मूल्यवान् पत्थर जड़े रहते थे। खम्भों पर दस्तकारी के काम बने होते थे। कोई कमरे हाथी-दांत के बने होते थे। सोने से जड़े हुए पलंग प्रयोग किये जाते थे। राजा की

आज्ञानुसार महल में विदेशियों द्वारा चित्रकारी की जाती थी। महल में कमरों के चारों तरफ बरामदा बना हुआ था। राजमहल कई मंजिल का होता था। राजा तथा नौकरों के आने-जाने का मार्ग पृथक्-पृथक् बना था। राजा तथा साधारण जनता में पारस्परिक प्रेम था[१]। गरीब लोगों की झोंपड़िया फूस की बनी होती थीं परन्तु गोबर-मिट्टी से पुती होने के कारण सुन्दर लगती थीं। सिमेंट से बने मकान की भांति उनकी झोंपड़ी पुतने से सुन्दर तथा मजबूत हो जाती थी[२]।

राजधानी में महल तथा राजसभा के भवन पृथक् हुआ करते थे। एक कमरा २०×६ फीट या २०×१२ फीट के माप का हुआ करता था और उसकी बनवाई में प्रायः तीन सौ वाराह (मुद्रा) व्यय किया जाता था[३]। जो भवन राजसभा के लिए तैयार किया जाता वह चारों तरफ से खुला होता था। केवल खम्भों पर ऐसी इमारतें तैयार की जाती थीं[४]। वहां सेनापति, नायकों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियो के लिए पृथक्-पृथक् भवन निर्मित थे[५]।

आमोद-प्रमोद की सामग्री

मनुष्यों के मनोरंजन के लिए संगीत-गृह, चित्रशाला तथा नाट्य-गृह तैयार किए गये थे[६]। मंदिरों में भी गाना बजाना होता तथा नाटक खेले जाते थे[७]। इन कार्यों के लिए अनेक व्यक्ति द्रव्य दान दिया करते थे। केन्द्रीय स्थान के अतिरिक्त प्रांतों में भी नाट्य-शालाएं बनी हुई थीं। 'रघुनाथाभ्युदयम्' में ऐसे नाट्य-गृह का वर्णन मिलता है[८]। राजा तीर्थ-यात्रा करने या राज्य

---

१ सेवेल—ए० फारगाटेन इम्पायर पृ० २६३, २८६--७

२ वेले—ट्रैवेल्स भा० २ पृ० २३०

३ कैटलाग आफ मद्रास म्यूज़ियम भाग १ पृ० ४२

४ एपि० कर० भाग १० पृ० ५३

५ बारबोसा—भाग १ पृ० २०२। ६ एपि० कर० भाग ११ पृ० ३६

७ सा० इ० इ० भा० ३ पृ० २६०

८ कृष्णस्वामी—सोर्सेज़ पृ० २६५

में भ्रमण करने जाया करता था। उद्यान तथा वाटिकाओं की स्थिति उस पर्वतीय प्रदेश में अधिक नहीं हो सकती थी। विजयनगर में पक्षियों का पालन कर लोग मनोविनोद किया करते थे। बाज़ तथा कबूतर अधिक संख्या में पाले जाते थे। पहला तो शिकार में प्रयोग किया जाता था तथा दूसरा पक्षी भोजन के काम आता था। राज्य में मुसलमानों के निवास करने से मुर्गों की अधिकता थी। इन्हें द्वन्द्व-युद्ध में प्रयोग किया जाता था क्योंकि मुर्गों की लड़ाई एक मनोरंजन की चीज़ समझी जाती थी।

विजयनगर-साम्राज्य की स्थिति दक्षिण-भारत की पथरीली भूमि-भाग (प्लेटो) में थी। ऐसी अवस्था में सबसे प्रिय तथा उपयोगी वाहन घोड़ा था। यद्यपि लड़ाई में हाथी और रथ का भी प्रयोग किया जाता परन्तु भौगोलिक स्थिति के कारण घोड़ों को अधिक महत्त्व दिया गया था। विजयनगर के शासक प्रत्येक वर्ष लाखों रुपये घोड़ों के खरीदने में व्यय करते के। पुर्तगाली लोगों से व्यापारिक-सन्धि में घोड़ों के खरीदने तथा रखने का अधिकार विजयनगर-शासक को ही था। पहाड़ पर चलने के लिए अरब के घोड़े ही अधिक उपयुक्त समझे जाते थे। यही कारण था कि पुर्तगाली अरब के घोड़े खरीद कर राजा के हाथ बेचते थे या कोई विदेशी व्यापारी गोआ में घोड़े बेचने के लिए ले आता तो वे सब विजयनगर के लिए खरीदे जाते थे।

वाहन

विजयनगर में विदेशी लोगों के वर्णन से विभिन्न वस्त्रों के प्रयोग का पता लगता है। सर्वप्रथम बात तो यह है कि विजयनगर में कर की वसूली कपड़ों के कारखानों तथा बुनने वालों से की जाती थी। कपड़ों के गट्ठर पर कर लगाया जाता था। बाजार में कपड़ों पर चुङ्गी लगती थी। इन सब बातों से यही अर्थ निकलता है कि विजयनगर राज्य में वस्त्र अधिकता से बनते थे। उस भाग की भौगोलिक अवस्था पर विचार करने से इसकी सार्थकता मालूम पड़ती है। इससे यही ज्ञात होता है कि राज्य में कपास की खेती अधिक होती थी अतः सूती कपड़े प्रचुर मात्रा में तैयार किये जाते थे। देश के इस भाग में गर्मी

वस्त्र

की अधिकता रहती थी अतः वस्त्र धारण करने की अधिक आवश्यकता न समझी जाती थी। वैश्य लोग कमर से कन्धे तक कोई वस्त्र धारण नहीं करते थे। राजा तथा अन्य मंत्रीगण रेशमी तथा मलमल का पतला वस्त्र पहना करते थे। पुर्तगालियों के व्यापार में चीन के रेशम का बहुत बड़ा भाग रहता था। राजा सूती कपड़ा पहनता था परन्तु उसके ऊपर कामदार जाकेट भी होता था। अब्दुर रज्जाक का कहना है कि सम्राट कृष्णदेव राय ऐसे ही वस्त्र पहन कर राजदूतों से मिलता था[1]। दक्षिणी-भारत में राजा की प्राप्त धातु-मूर्तियों से प्रकट होता है कि कृष्ण-देवराय कमर से घुटने तक वस्त्र पहनता था। उसका पैर नंगा तथा सिर लम्बी तुर्कीनुमा टोपी होती थी। मूर्ति में शरीर नंगा है परन्तु आभूषण पहने हुए दिखलाई पड़ते हैं प्रायः समस्त धातु-मूर्तियां ऐसी ही तैयार की जाती थीं[2]। राजा जो वस्त्र एक बार पहन लेता था, उसे दूसरी बार धारण न करता था। उन्हें गरीबों को या महल के किसी नौकर को दे दिया जाता था[3]। मूर्तियों को देखने से राजा का बदन नंगा मालूम पड़ता है परन्तु बात ऐसी नहीं है। रेशम तथा मलमल का अधिक प्रयोग होता था। इसी कपड़े के बने लम्बे वस्त्र स्त्री तथा पुरुष घुटने तक धारण करते थे। स्त्रियों के वस्त्र तो कभी एड़ी तक पहुंच जाते थे। राजा लम्बी टोपी (कामदार) पहनता था तथा सर्व साधारण लोग सिर पर पगड़ी बाँधते थे। औरतें मूल्यवान् वस्त्र सिर पर रखती थीं[4]। साधारण व्यक्ति नगे शरीर तथा नंगे पैर अपना काम किया करते थे। राजा भी अधिकतर जूता नहीं पहनता था। केवल स्त्रियां कामदार जूता पहना करती थीं। इससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि कामदार जूता भी उस समय बनता था। विजयनगर राज्य में मोचियों पर कर लगाया गया था[5]।

---

१ सेवेल—वही पृ० २४६

२ ओ० सी गांगूली—सा० इ० ब्रोजेज़ पृ० २२ प्लेट १२४

३ एपि० इंडि० भाग १३ पृ० १२१

४ मेजर इण्डिया पृ० २२। ५ एपि० कर० भा० १० पृ० २६२

वेश्याओं का वस्त्र सर्वथा भिन्न प्रकार का होता था। वे सुन्दर रेशमी वस्त्र धारण करती थीं। उनका सिर सदा खुला रहता था। वे चमड़े का जूता पहनती थीं। नाचते समय वे अपना वस्त्र सदा बदला करती थीं[1]। वे कन्धे से लेकर नीचे तक वस्त्र पहनती थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि ऊँची श्रेणी के पुरुष तथा स्त्रियां लम्बा वस्त्र धारण करती थीं। सर्व साधारण लोगों का शरीर कमर से कन्धे तक नग्न रहता था। सिर पर लोग पगड़ी या कोई अन्य वस्त्र रखते थे। ब्राह्मण मलमल की एक बारीक चादर लिए रहता तथा सिर पर पगड़ी बांधे रहता था[2]। ललाट पर भस्म या चन्दन का तिलक लगाना साधारण बात थी। सभी लोग इसका प्रयोग करते थे। जो विदेशी मुसलमान या पुर्तगाली वहां निवास करते थे उनका वस्त्र अन्य प्रकार का होता था। वे चूड़ीदार पायजामा तथा सफेद वस्त्र शरीर में पहना करते थे। वे लम्बी तुर्की टोपी तथा पैरों में जूता पहिनते थे[3]। इस प्रकार पद के अनुसार तरह-तरह के वस्त्र विजयनगर राज्य में पहने जाते थे।

आभूषण

शरीर को सुन्दर बनाने के निमित्त आभूषण का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जाता था। विजयनगर की समृद्धि के ज्वलन्त उदाहरण पहने जाने वाले आभूषण भी हैं। पुरुष गले में हार पहनते थे। राजा तो जवाहिरात (हीरा) की एक पट्टी गले में बाँधता था जिसके मूल्य का अनुमान नहीं किया जा सकता था[4]। वह सिर पर सोने की टोपी धारण करता। कानों में कुण्डल पहिनने की प्रथा सर्व साधारण थी। कोई भी व्यक्ति कुण्डल के बिना नहीं रहता था। ब्राह्मण सोने का कुण्डल रखता था तो वैश्य तथा ऊँचे राज-कर्मचारी हीरे का बना हुआ कुण्डल धारण करते थे। कमर में करधनी पहिनने की

---

१ एपि० कर०। भा० २ पृ० १०८

२ सेवेल—पृ० ३६३। ३ पर्चिमस भा० १० पृ० ६७३

४ इलियट-हिस्ट्री आफ इण्डिया भा० ४ पृ० ११३

रीति भी प्रचलित थी ।।राजा से लेकर साधारण व्यक्ति करधनी रखता था। धातु की मूर्त्तियों में कृष्णदेव राय तथा वेंकटपतिदेव राय मूल्यवान् चौड़ी करधनी पहने दिखलाये गये हैं[१] । हाथों में भी आभूषण पहिनने की चाल थी। भुजदण्ड की तरह राजा आभूषण पहिनता तथा अंगुलियों में अंगूठी पहिनता था। बारबोसा ने वर्णन किया है कि विजयनगर के व्यापारी हीरा जड़ी हुई अंगूठी पहिनते थे[२] । अब्दुर रज्जाक का कहना है कि सभी लोग कानों में कुण्डल, गले में हार, हाथों में भुजदण्ड, कमर में करधनी तथा अंगुलियों में अँगूठी पहिना करते थे[३] ।

पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रिया आभूषण से पूर्ण होती थीं। सिर पर बालों में आभूषण पहनती थीं। गले में चौड़ी पट्टी का हार धारण करतीं, हाथों में भुजदंड तथा कड़ा पहना करती थीं। वे कमर में विभिन्न प्रकार से जटित करधनी रखती थीं। अंगूठियों की तो गिनती ही न थी। उनके कानों में लम्बे लटकते हुए आभूषणों में मूर्त्तियों का रूप दिखलाई पड़ता था। पैरों में तथा हाथों में कड़ा पहनती थीं। कृष्णदेव राय की धातु-मूर्त्तियों के साथ-साथ उसकी रानियों की भी धातु मूनियाँ पायी जाती हैं[४] । विजयनगर में जल (नदी) देवी की मूर्ति समस्त आभूषणों से सुसज्जित दिखलाई गई है[५] । जिससे तत्कालीन नाना प्रकार के आभूषणों का पता चलता है। इन मूर्तियों से तथा अनेगुड़ी के चित्रों से वस्त्राभूषण का विशेष ज्ञान होता है[६] । साधारण स्त्रियों के अतिरिक्त वेश्याएं मूल्यवान् आभूषण धारण किया करती थीं। महानवमी के दिन या किसी अन्य उत्सव में जब

---

१ गांगूली-साउथ इण्डियन ब्रोन्जेज पृ० ६० प्लेट १२४ व १२५

२ डेमस भा० २ पृ० १२५। ३ इलियट-हिस्ट्री भा० ४ पृ० १०६

४ गांगूली—सा० इ० ब्रोन्जेज़ प्लेट १२४

५ खानडेलवाला—इण्डियन स्कल्पचर चित्र ७७

६ स्टेला क्राम्रश-पेन्टिंग इन डेकन पृ० १०७

वेश्याएँ नृत्य करती थीं तो उनके बदन पर सुन्दर वस्त्र के अतिरिक्त मूल्यवान् गहने भी दिखलाई पड़ते थे। अब्दुर रज्ज़ाक ने लिखा है कि उनके लिए एक पृथक् स्थान था। वहाँ से निकलने पर सिर में सोने का फूल, नाक में हीरे की झुलनी, कानों में कुण्डल तथा मोती, मूंगे और हीरे का हार पहना करती थीं[1]। नृत्य करती हुई पत्थर की मूर्तियों में इतने विभिन्न प्रकार के आभूषण नहीं दिखलाए गए[2]। परन्तु विदेशियों की आँख देखी बात पर अधिक विश्वास किया जा सकता है। विजयनगर के वैभव की उन्नत अवस्था में वेश्याओं के मूल्यवान् तथा नाना प्रकार के आभूषणों का अनुमान आसानी से किया जा सकता है।

वस्त्राभूषण के साथ केश को भी उचित ढंग से रखने की प्रणाली थी। विजयनगर-राज्य में चित्रों तथा मूर्तियों द्वारा केशों के विभिन्न प्रकार का

केश

ज्ञान होता है। इनमें केशों की ग्रन्थि दिखलाई गई है जो सिर के पीछे बड़े आकार में चित्रित किया जाता था। केशों की ग्रंथियों में आभूषण तथा फूल लगाने की भी प्रथा थी। इस प्रकार केश-विन्यास का साक्षात् नमूना मूर्तियों तथा चित्रों में दिखलाई पड़ता है। हजारा की प्रस्तर-मूर्तियों तथा अनेगुड़ी के चित्रों में सिर के पीछे ग्रन्थि-युक्त केश दिखलाई पड़ते हैं[3]। पुरुषों के केश बहुत लम्बे नहीं होते थे। पगड़ी बांधने की रीति अधिक प्रचलित थी, विदेशियों ने भी इस बात की पुष्टि की है। स्त्रियों के ग्रंथि-युक्त केश की प्रथा को उन्होंने भी दुहराया है[4]।

सामाजिक-जीवन में आनन्द-लाभ के निमित्त समय-समय पर बड़े

---

१ बारबोसा भा. १; पृ० २०७।

२ खानडेलवाला—इंडियन स्कल्पचर प्लेट ७१।

३ खानडेलवाला-इंडियन स्कल्पचर प्लेट ७१

४ मेजर इंडिया पृ० २२.

बड़े उत्सव हुआ करते थे। कामसूत्र में उत्सवों की महत्ता बतलाई गई है। पूजा के लिए पर्व, यात्रा, गोष्ठी आदि उत्सव मनाये जाते थे। विजयनगर शासक सैकड़ों प्रकार के उत्सवों को मनाया करते थे[1]। उनमें से धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक उत्सवों की गणना पृथक्-पृथक् की जा सकती है। धार्मिक उत्सवों में रामनवमी, रथ-यात्रा, ग्रहण-स्नान तथा देवमूर्ति को ले आना आदि प्रधान थे। मंदिरों में साप्ताहिक, मासिक, तथा वार्षिक उत्सव मनाया जाता था और विशेष प्रकार से पूजा होती थी। भगवान् राम और कृष्ण की जन्म-तिथि बड़े समारोह से मनाई जाती थी। चैत्र मास में भगवान् की मूर्त्ति को पंचामृत से स्नान कराया जाता था[2] और वही सब को बाँटा जाता था। रात को मंदिरों में रोशनी की जाती थी। रथ-यात्रा में भगवान् की मूर्ति रथ पर बैठा कर सारे शहर में घुमाई जाती थी। इसके साथ वेश्याएँ नृत्य करती हुई शहर भर में घूमती थीं[3]। मंदिरों में प्रत्येक एकादशी को उत्सव मनाया जाता था। राजा तथा उसके दरबार के लोग व्रत करते थे[4] और राजा मंदिर में उत्सव देखने जाता था। नर्तकी मंदिरों में नाचा करती तथा समारोह-पूर्वक पूजा की जाती थी। राजा लोग उस उत्सव के व्यय के लिए ग्राम दान में दिया करते थे[5]। सोमप्पा ने सोमव्रत को विधि पूर्वक करने के लिए एक मंदिर बनवाया तथा दान दिया[6]। विजयनगर शासक ने हरिहर और लक्ष्मी के पाक्षिक उत्सव के निमित्त कई ग्राम दान दिये थे[7]। इस प्रकार मंदिरों में विधि पूर्वक पूजा, नृत्य तथा उत्सव के व्यय के लिए विजयनगर शासक और नायक दान

उत्सव

---

१ मैसूर इन्सक्रृपशन पृ २२३; एपि. कर० भा० ५ पृ० १४५.

२ मैसूर आ० रि० १९१३ पृ० ४६

३ मेजर इंडिया पृ० २८। ४ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २६२

५ एपि० कर० भा० ५ पृ० १, । ६ वही भा० १० पृ० ६४

७ मैसूर-प्रशस्ति पृ० ४२

दिया करते थे। मंदिरों में पूजा करने के लिए ब्राह्मण तथा देवदासी नियुक्त की गई थीं जिनका उल्लेख लेखों में पाया जाता है[1]। श्रावण मास की पूर्णिमा को सर्वत्र मेला लगा करता था[2]। स्त्री तथा पुरुष किसी नदी या समुद्र में स्नान करते थे[3]। मकर-संक्रांति, गोकुलाष्टमी तथा शिवरात्रि के पर्वों का वर्णन लेखों में स्पष्टतया मिलता है[4]। इन सारे उत्सवों पर विशेष समारोह से पूजा होती थी। मंदिरों में नृत्य होता तथा रात को रोशनी की जाती थी[5]। इन मूर्त्तियों को श्रावण तथा चैत्र मास में झूला झुलाया जाता था[6]। जैनी लोग अपने धर्म के अनुकूल अन्य प्रकार का उत्सव मनाया करते थे।

विजयनगर राज्य में सामाजिक-त्यौहार होली तथा राष्ट्रीय-उत्सव दशहरा (महानवमी) बड़े समारोह-पूर्वक मनाया जाता था। इस महानवमी को दुर्गापूजा के नाम से भी पुकारते थे और इसका राजनैतिक महत्त्व भी था। यह उत्सव एक सप्ताह से लगाकर नव दिन तक राजधानी में मनाया जाता था। राजा उस समय जहा कहीं भी हो राजधानी को अवश्य लौट आता था। इस उत्सव के समय राज्य के समस्त नायक तथा बड़े कर्मचारी राजधानी में एकत्र होते थे। सब लोग हाथी, घोड़े, रथ तथा सेना से सुसज्जित होकर आते थे। इस उत्सव को मनाने के लिए कई मंजिल का नया मकान तथा क्रीड़ास्थल तैयार किया जाता था। ये मकान बरामदे से युक्त होते थे। मकान तथा फाटक तोरण तथा फूल आदि से सजाया जाता था। चारों तरफ से पहरेदार नियुक्त किये जाते थे। सम्राट् सबसे ऊंची मंजिल पर बैठता था। उसके चारों तरफ ऊंचे कर्मचारी तथा नायक लोग अपना आसन ग्रहण करते थे। तत्पश्चात् देवता की पूजा की जाती

---

१ नं० ३७४ आफ १६१६; एपि० कर० भा० १२ पृ० १०६
२ दि राइज आफ पोर्चुगीज पृ० २८२। ३ एपि० कर० भा० ५ पृ० ११
४ एपि० कर० भा० ५ पृ० १; वही भा० १० पृ० २५४
५ मैसूर इन्सक्रपशन पृ० २२४। ६ नं० २१० आफ १९१६

थी। बलि दी जाती थी जिसमें भैंसा विशेष रूप से काम में लाया जाता था। राजा सुन्दर वस्त्राभूषण से सुसज्जित, हीरे तथा मोतियों का हार पहने उस क्रीड़ास्थल पर आता था। सारी उपस्थित जनता तथा राज-कर्मचारी वर्ग खड़े होकर राजा को प्रणाम करते थे। उस स्थान पर नर्तकियों का झुण्ड सुन्दर वेष में नृत्य किया करता था। नट अपना खेल दिखलाते थे और हिंसक पशु तथा मनुष्यों में द्वन्द-युद्ध होता था। शाम को राजा सारी सेना का निरीक्षण करता था। पुरोहित हाथियों तथा घोड़ों पर जल छिड़कता था। सारी सेना शस्त्रों से सुसज्जित होकर खड़ी की जाती थी और शासक एक ओर से दूसरी ओर तक उसका निरीक्षण करता था। रात में उस स्थान की शोभा आतिशबाजी के कारण बढ़ जाती थी। इस प्रकार यह उत्सव नव या दस दिन तक बड़े समारोह के साथ मनाया जाता था[1]। अंतिम दिन दुर्गा के मंदिर में बलि (भैंसे की) दी जाती थी। इसके बाद लोग अपने स्थान के लिए प्रस्थान करते थे। इस उत्सव के अवसर पर राजा को नायकों से भेंट मिलती तथा कर भी वसूल किया जाता था। यही कारण है कि महानवमी का उत्सव राजनैतिक समारोह समझा जाता था और अन्य उत्सवों से इसे अधिक महत्त्व दिया जाता था।

होली का उत्सव

विजयनगर में होली का सामाजिक उत्सव भी बड़े ठाट के साथ मनाया जाता था। होली में सर्व साधारण जनता से लेकर राजा तक सभी भाग लिया करते थे। लेखों में इसका वर्णन मिलता है कि केसर के रंग से होली खेली जाती थी[2]। दूसरे लेखों से पता लगता है कि वसंत-महोत्सव (होली) उदयगिरि में विशेष रूप से मनाया जाता था[3]। इस स्थान पर नाटक खेले जाते थे[4]। इस

---

१ इलियट—हिस्ट्री पृ० ११७; सेवेल—पृ० ३७६-८

२ एपि० इंडि० भा० ५ परि० १ पृ० ६६; भा० ३ पृ० ८; नं० ३७१ आफ १९२१। ३ एपि० इंडि० भा० १ पृ० ३७०।

४ सालातोर—विजयनगर हिस्ट्री भा० २ पृ० ३१७।

के जीते जागते प्रमाण विजयनगर के प्रस्तारों पर खुदेहुए वे अभिनय के दृश्य हैं जो अभी तक मिलते हैं। कार्तिक-मास में दीपावली का उत्सव विजयनगर में मनाया था[1]। दीपक दिन रात जलाये जाते थे। जनता उत्सवों को मनाने के लिए दान दिया करती थी[2]। शासक की ओर से इन व्यक्तियों को पदवियां दी जातीं जो रथ-यात्रा के लिए रथ या ध्वजा तैयार करते थे। जो लोग इस उत्सव के लिए दान देते थे उनकी बड़ी प्रशंसा की जाती थी।

मेला

विजयनगर-राज्य में मेले अधिक लगते थे। तीर्थयात्रा के समय तीर्थस्थान पर सभी लोग स्नान करने के लिए जाते थे। राजा स्वयं मेला देखने जाया करते थे। तिरुपति जब काञ्ची की तीर्थ-यात्रा के लिए गया तो उसने यात्रियों के लिए नदी पर घाट बनवाये। श्रीरंगम् स्थान पर प्रतिवर्ष बहुत बड़ा मेला लगा करता था[3]। राजा श्रीरंग के समय में धार्मिक मेला लगा करता था[4]। वेंकट-पति देव के राज्य काल में रथयात्रा का मेला बड़े समारोह-पूर्वक हुआ करता था। श्रीरंग ने तीर्थ में मेले के यात्रियों के ठहरने के लिए धर्म-शालाओं का निर्माण कराया[5]। मेले में निकलने वाले जलूस में वस्त्र तथा आभूषणों से सुसज्जित हाथी तथा घोड़े भी सम्मिलित होते थे। हाथियों पर अम्बारी रखी जाती थीं[6]। अपार जनता जलूस के साथ चलती थी। अब्दुर रज़्ज़ाक ने ऐसा जन-संमर्द बहुत कम देखा था। उसको इस जन-समारोह से बड़ा आश्चर्य हुआ। सभी विदेशी विजयनगर के नाना प्रकार के उत्सवों को देखकर अचम्भित हो जाते थे। साम्राज्य में शायद ही कोई

---

१ मेजर इंडिया पृ० २८। २ रंगाचार्य—भा० १ पृ० ४६।

३ एपि० कर० भा० १२।

४ बटरवर्थ—नेलोर इन्सक्रुपशन् भा० ३ पृ० ८२२।

५ एशियाटिक रिसर्चेज़ भा० २० पृ० ३५।

६ इलियट—हिस्ट्री भा० ४ पृ० १११।

ऐसा व्यक्ति हो जो इस महान् मेले को देखकर आश्चर्य-चकित न होता हो।

विजयनगर-राज्य में समय समय पर उत्सव मनाने के अतिरिक्त, नाना प्रकार के साधनों द्वारा लोग नित्यप्रति मनोरञ्जन किया करते थे।

मनोरंजन के अन्य साधन—संगीत और नृत्य

गाने तथा नाचने की प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी। प्रजा के जीवन के साथ वाद्य, गीत व नृत्य का अभिन्न सम्बन्ध था[1]। जैन मतावलम्बी भी गाने से अधिक प्रेम रखते थे[2]। राज-सभा में गाना व नाचना नित्य हुआ करता था। वेश्यायें चारुकीर्ति पण्डिता की शिष्यायें थीं[3]। विदेशी उनकी कला-कुशलता तथा सुन्दर नृत्य-प्रणाली को देख कर दंग रह जाते थे। देवदासियां मन्दिर में सेवा करती थीं तथा प्रत्येक दिन वहां गाना, बजाना हुआ करता था। शनिवार को महल में नाच होता था तथा राजा-रानी देखा करते थे[4]। इस कार्य के लिए नृत्य-स्थान बना था। वे वेश्याएँ रानियों को भी नृत्य सिखलाया करती थीं। विजयनगर के लेखों में वाद्यों का नाम मिलता है जिससे लोगों के संगीत-प्रेम का परिचय मिलता है। भेरी, दुन्दुभी, महा-मंजीर तथा वीणा के नाम मिलते हैं[5]। 'राघवेन्द्र-विजयम्' ग्रन्थ में कृष्णदेव राय के वीणा बजाने का उल्लेख मिलता है[6]। रामराय भी वीणा बजाने से प्रेम रखता था[7]। इससे ज्ञात होता है कि संगीत मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन था।

---

१ सा० इ० इ० भा० २ पार्ट ३ पृ० २६६; भा० ३ पृ० ३७८; आ० स० रि० १६२४ पृ० १२०

२ एपि० कर० भा० २ नं० १४१

३ एपि० रि० १६१४ पृ० ७४

४ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २४१, ३७६

५ एपि० रि० १६१० पृ० ६३; एपि कर० भा. ८ पृ० २२

६ सोर्लेज् पृ० २५२। ७ एपि० कर० भा० १२ पृ० ८४

समय-समय पर विजयनगर में नाटक हुआ करता था। अतएव नाट्य-शाला तैयार की गई थी। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय राजधानियों में नाटक खेलने की वार्ता लेखों तथा साहित्य में पाई जाती है[1]। कुश्ती लड़ने की प्रथा विजयनगर में

व्यायाम—कुश्ती

अधिक थी। सम्राट् कृष्णदेवराय स्वयं प्रातःकाल होने के पूर्व कुश्ती लड़ता था[2]। उसकी राजधानी में सैकड़ों पहलवान रहा करते थे। राजकीय कोष से उनका समस्त व्यय दिया जाता था[3]। तजोर के नायक ने व्यायाम के लिए एक व्यायाम-शाला तैयार कराई थी[4]। विजयनगर-राज्य में विदेशी जरीक ने राजा की व्यायाम-शाला का सुन्दर वर्णन किया है। उसके कथनानुसार साधारण जनता से लेकर राजा तक सभी व्यक्ति प्रति दिन व्यायाम किया करते थे। इसके लिए सब साधन वर्तमान थे। व्यायाम-शाला सुन्दर बनी थी और वह राज-महल के समीप वर्तमान थी। कूदना, दौड़ना मुक्की मारना (Boxing) तथा लकड़ी के अन्य खेल खेले जाते थे। शरीर में पसीना आ जाने तक खेल होता रहता था। गरम पानी से शरीर की धूल और पसीना साफ किया जाता था। इसके बाद सूखे कपड़े से पोंछा जाता था[5]। इस प्रकार खेल नित्य-प्रति हुआ करता था। पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रियां भी कुश्ती लड़ा करती थीं। लाठी तथा तलवार चलाने का काम भी औरतें सीखती थीं और उसका अभ्यास किया करती थीं। विजयनगर राज्य में वेश्याओं के भी कुश्ती लड़ने का वर्णन मिलता है। कुश्ती प्रायः पर्याप्त समय तक लड़ी जाती थी। कभी कभी तो अङ्ग-भङ्ग भी हो जाता था[6]।

तलवार से द्वन्द-युद्ध करना भी विजयनगर-राजाओं के लिए

---

१ एपि० कर भा ११ पृ० ३६। सोर्सेज पृ० ६६, २६५

२ सेवेल—वही पृ० २४६। ३ वही पृ० ३७८

४ रघुनाथाभ्युदयम्। ५ जरीक भा० १ पृ० ६८४

६ सेवेल—वही पृ० २६८, २७१

मनोरंजन का साधन था। दो व्यक्ति नंगे बदन परन्तु सिर पर पगड़ी बांधे ढ़ाल और तलवार लेकर तैयार हो जाते थे। राजाज्ञा प्राप्त होने पर द्वन्द-युद्ध प्रारम्भ हो जाता था। यद्यपि यह अमानुषिक कार्य था परन्तु राजा इसे बहुत पसंद करता था[1] और प्रति दिन एक न एक व्यक्ति इस युद्ध में अवश्य मारा जाता था[2]।

तलवार से युद्ध

राजा को आखेट अत्यन्त प्रिय था, आखेट में कुत्ते भी साथ रहा करते थे। विजयनगर राज्य में राजा के आखेट करने का दृश्य प्रस्तर पर खुदा मिलता है[3]। राजा को आखेट देखने का भी शौक था[4]। अतः आखेट के लिए स्थान नियुक्त थे। राजा तैयारी के साथ आखेट को जाता था। देवराय द्वितीय का आखेट प्रेम प्रसिद्ध है। उसके लिए शिकार की जगहें निश्चित थीं[5]। वह जहाँ शिकार करता था। वहाँ दान भी दिया करता था। इसके वर्णन लेखों में मिलते हैं[6]। आखेट के लिए सुन्दर स्थान तैयार किये जाते थे[7]। राजा हाथी के शिकार को अधिक पसंद करता था[8]। हाथी फँसाये जाते थे। पहले जंगल का हाथी छल से गड्ढे में गिराया जाता था। फिर महावत राजधानी से अन्य हाथियों को वहां ले जाता था। उस जंगली हाथी को फँसा कर महावत ले आता था। हाथी-खाने में उसे लोहे की जंजीर से

आखेट

---

१ बारबोसा—भा० २ पृ० २३६
२ हेरास—आरविदु डाइनेस्टी पृ० ४०५
३ सालातोर० विजयनगर हिस्ट्री भा० २ पृ० ४२१
४ ट्रैवल्स० भा० २ पृ० १२७
५ एपि० कर० भा० १० पृ० २२४
६ एपि० इंडि० भा० ३ पृ० २५
७ बारबोसा-डेमस भा० १ पृ०२२८
८ नं० ६७ आफ १६०७

बांध कर रखते थे और कई दिन के बाद उसे खाना दिया जाता था[1]। इस प्रकार के आखेट का शौक देवराय को अधिक था। यही कारण है कि विजयनगर राजाओं के सिक्कों पर एक ओर हाथी की आकृति बनी है और दूसरी ओर 'राय-गजगंड-भेरुण्ड' लिखा मिलता है[2]। लेखों से भी इसी बात की पुष्टि होती है[3]। राजा जंगल में चिड़ियों तथा सूअरों का भी आखेट करता था। विजयनगर में मांसाहारी व्यक्तियों की अधिकता से चिड़ियों तथा पशुओं का शिकार आवश्यक समझा जाता था। विजयनगर राज्य के नटों द्वारा भी मनोरंजन की वृद्धि होती थी। वर्तमान काल के नटों की तरह ये लोग भी रस्सी पर चढ़कर खेल दिखाया करते थे। राजा उनके काम से प्रसन्न होकर उन्हें सोना या वस्त्र पुरस्कार में देता था[4]।

घोड़े पर सवारी करना तथा नदियों में तैरना भी आमोद-प्रमोद का एक साधन था[5]। शतरंज भी खेला जाता था। कृष्णदेव राय स्वयं शतरंज का अच्छा खिलाड़ी बतलाया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि शतरंज के खेल से लोगों को शौक था। कृष्णदेव राय की पुत्रियां अपने पिता (राजा) से शतरंज खेला करती थीं[6]। विजयनगर राज्य में मुसलमानों तथा ईसाइयों के निवास करने से उनके भी कुछ खेल प्रचलित हो गये थे। मुसलमानी खेलों में मुर्गों की लड़ाई सर्व प्रधान थी। ईसाई लोग गेंद खेलने का भी नया तरीका लेकर आये जिसका उन लोगों ने प्रचार किया। यद्यपि भारत में गेंद खेलने की प्रथा पुरानी है, तथापि उनका खेल कुछ नवीनता लिये हुये था।

---

१ इलियट-हिस्ट्री भा० ४ पृ० ११०

२ कैटलाग आफ क्वायन्स इन इंडियन म्यूज़ियम पृ० ३२४

३ एपि० कर० भा० ५ पृ० ४७,६१

४ इलियट-हिस्ट्री भाग ४ पृ० ११८

५ मै. आ. रि. १६४४ पृ. ५१

६ इ. ए. भा. २७ पृ. २६६

भोजन

भारत में भोज्य-सामग्री की कभी कमी न थी। प्रत्येक पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता था। लोगों की रुचि के अनुसार खाद्य पदार्थों में परिवर्तन होता रहता था। विजयनगर-साम्राज्य में ऐसा अनाज पैदा होता था जिसपर जीवन-निर्वाह करना कठिन न था। ज्वार तथा रुई की फसल के लिए यह राज्य प्रसिद्ध था। रुई की पैदावार का समुचित उपयोग किया जाता था। ज्वार भोजन के काम में आता था। पूर्वी भाग के समुद्र के किनारे की पैदावार चावल का उपयोग विजयनगर के लोग करते थे। उत्तर में बहमनी सुल्तानों से तथा पश्चिम में पुर्तगालियों से उनका सम्बन्ध सदा बना रहा। यही कारण है कि विजयनगर के लोगों ने पवित्र एवं सात्विक भोजन के साथ तामसिक पदार्थों का भी प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। राजाओं के भोजन में चावल, शक्कर, मक्खन तथा मास आदि का प्रयोग किया जाता था। विदेशियों ने लिखा है कि विजयनगर राज-दरबार में ईरानी दूत को उपर्युक्त पदार्थ भोजन के लिए दिया जाता था[1]। इस से विदित होता है कि जलवायु तथा रीति-रिवाज के अनुकूल पदार्थ ही राजा के भोजनालय में प्रयोग किये जाते थे तथा अतिथि को भी दिये जाते थे। भैंस, बकरी और चिड़ियाँ पर्याप्त मात्रा में मिलती थीं, अतः इन्हीं का मास सर्व-साधारण के खाने के काम आता था। राज्य में चावल,जव आदि भोजन के काम में लाया जाता था[2]। फलों में गोआ के आम, कटहल और इमली आदि अधिक मात्रा में प्रयोग किये जाते थे। मसाला राज्य में अधिकता से पैदा होता था, इसीलिए दक्षिण के लोग प्राचीनकाल की भाँति मसाले तथा इमली को आजकल भी अधिक पसंद करते हैं। स्थान स्थान पर साप्ताहिक बाजार लगते थे जिनमें सूअर, कबूतर, और समुद्र की जीवित मछलियां बिका करती थीं। उनके मास भी

---

१ इलियट हिस्ट्री भाग० ४ पृ० २१३

२ ट्रैवेलस भा० २ पृ० २२४।

बिकते थे परन्तु जीवित जानवरों को खरीदना लोगों को अधिक पसंद था। उसी स्थान पर अन्न भी बिकता था। फलों मे बाहर से आये हुए अंगूर, संतरे, नीबू, बादाम आदि बड़े सस्ते दाम पर बिका करते थे[1]। बारबोसा ने लिखा है कि विजयनगर में चावल, शक्कर, मक्खन, मधु, दाल तथा दूध का प्रयोग भोजन में किया जाता था[2]। समुद्र के किनारे रहने के कारण वहां के लोगों को नमक अत्यन्त सुविधा से मिल जाता था। पेई ने लिखा है कि हिन्दू-मुसलमान की एकता को ध्यान में रखकर मांस का प्रयोग किया जाता था। न्यूनिज का कथन है कि प्रत्येक चिड़िया तथा छोटे-छोटे जानवरों का मांस खाया जाता था[3]। राज्य में पान खाने की प्रथा बहुत प्रचलित थी। रज्जाक ने लिखा है कि सर्वसाधारण पान खाया करते थे। उसने यहा के पान की बड़ी प्रशंसा की है[4]। राजा के हाथ से दिया गया पान एक गौरवास्पद वस्तु समझी जाती थी। जब कभी सेना शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने जाती तो राजा सैनिकों को अपने हाथ से पान खिलाया करता था, जिससे उनकी प्रतिष्ठा होती थी और युद्ध में वे अपनी पूरी शक्ति लगाते थे। देश की समृद्धि को देखते हुए यह अनुमान सहज ही में किया जा सकता है भोजन-सामग्री का मूल्य कम होगा। जनता थोड़े खर्च में ही अपना जीवन निर्वाह करती होगी।

राजाओं की दिनचर्या

राजा प्रति-दिन ब्राह्म-मुहूर्त में उठ कर दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर व्यायाम करता था। उसके बाद राज-सभा में बैठकर लोगों से बारी बारी से भेंट करता था। सभी लोग जाकर राजा को झुककर प्रणाम करते और बैठ जाते थे। प्रश्न करने पर सब लोग उचित उत्तर देते थे[5]। राजा प्रतिदिन धर्म की बाते सुना करता था। राजा का समय विद्वान् पुरुषों

---

१ सेवेल—एफारगाटेन इम्पायर पृ० २५६, ३७५।
२ डेमस भा०१ पृ० २१७। ३ सेवेल—वही पृ० ३७५
४ इलियट—हिस्ट्री भा० ४ पृ० ११४। ५ सेवेल—वही पृ० २५०

के साथ व्यतीत होता था। सोमनाथ ने अपनी पुस्तक 'व्यासयोगि-चरितम्' में वर्णन किया है कि विजयनगर के राजा नरेश नायक, वीर नरसिंह तथा कृष्णदेवराय प्रतिदिन धर्म की बात वैष्णव साधुओं से सुना करते थे[1]।

इसके अतिरिक्त धर्म पर राजाओं की अधिक आस्था थी। तीर्थ-यात्रा करना साधारण बात थी। राजा जिस तीर्थ पर पहुंच जाते थे वहां ही तुलादान करते तथा अग्रहार दान दिया करते थे। गया में पिण्ड-दान और काशी तथा प्रयाग में भूमि दान देने का वर्णन लेखों में पाया जाता है[2]। राजा शास्त्रोक्त बातों पर अधिक विश्वास करता था। मरने पर श्राद्ध किया जाता तथा मृत व्यक्ति का फूल (जलाने के पश्चात् शरीर की राख) काशी भेजा जाता था। रामराय के दत्तक पुत्र आदिलशाह ने पिता के फूल को काशी भेजवाया था। तीर्थ स्थान पर हवन और यज्ञ किया जाता था। पर्वों पर उत्सव मनाने तथा उसके व्यय के लिए राजा के दान देने का वर्णन सर्वत्र पाया जाता है[3]।

सब लोग मित्र, धन और पुत्र इन तीनों को सुख के नाम से पुकारते थे। जिस व्यक्ति के पास ये तीनों वर्तमान थे वही परम सुखी समझा जाता था। पंच सूना अथवा पांच कार्य—काटना, पीसना भोजन-बनाना, ले जाना तथा गृह को स्वच्छ करना—स्त्रियों के कर्तव्य थे। स्त्री-प्रेम भी सुख के साधनों में सम्मिलित किया गया था[4]। अन्य लेखों में सुख के आठ साधनों का वर्णन मिलता है[5]।

पारिवारिक जीवन

---

१ 'एवमेव भक्त्या सभावयन्तं रहस्येन धर्मपदोपदेशेन प्रत्यहमनुगृह्णन्' (व्यासयोगि-चरितम् श्लो० ४६)। पुण्यकीर्तनेन वसुधाधिपेन हंसेनेव कमलाकरः प्रत्यहं उपसेव्यमानः। वही—श्लोक ६४

२ एपि० कर० भा० १० पृ० ६७

३ मैसूर आ० रि० १९१८ पृ० ५२

४ एपि० कर० भा० २. पृ० २१। ५ वही भा० १२ पृ० ८८

पिता पुत्र को प्यार करता और पुत्र पिता की सेवा आदर एवं भक्ति से करता था। इसका उल्लेख लेखों में मिलता है[1]। पुरुष कई स्त्रियाँ रखता था। कभी-कभी एक व्यक्ति की सोलह सन्तानें होती थीं[2]।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट प्रकट होता है कि विजयनगर राज्य में जनता का भौतिकजीवन कितना सुखी था। उनको भोजन के लिये सुन्दर सुन्दर पदार्थ मिलते थे। राज्य में गाय, भैसों की अधिकता के कारण दूध और घी की नदी बहती थी। जनता के मनोरंजन के लिए अनेक साधन विद्यमान थे। लोगों की संगीत में विशेष रुचि थी और नाटक देखने का भी पूरा शौक था। सामाजिक उत्सवों पर नृत्य का भी सार्वजनिक प्रदर्शन होता था। इस प्रकार विजयनगर राजाओं की शीतल छत्र-छाया में जनता आनन्द से अपना समय बिताती थी।

---

१ वही एपि० कर० पृ० २   २ सत्यनाथ-नायक पृ० ३२७

: १२ :

ललित कला

कला की वास्तविक परिभाषा बतलाना कठिन है। आनन्द में विभोर मनुष्य अपने आन्तरिक भावों को कला के द्वारा ही अभिव्यक्त करता है। कला का प्रधान कार्य उल्लास प्रदान करना है। कला दो भागों में विभक्त की जाती है पहली स्थित तथा दूसरी गतिशील। स्थित कला के अन्तर्गत-वास्तु, तक्षण तथा चित्रकलायें मानी जाती हैं और गतिशील कला में काव्य तथा संगीत सम्मिलित हैं। किसी देश की कला उस समय की वास्तविक स्थिति को बतलाती है। भारत ऐसे धर्म-प्रधान देश में कला का प्रादुर्भाव धार्मिक कारणों से ही हुआ और समयानुकूल उसमें परिवर्तन होता रहा। अतएव भारतीय कला धर्म मूलक मानी जाती है। पहले ईश्वर के प्रतीक अग्नि, वरुण आदि की पूजा होती थी परन्तु भक्ति के प्रचार से पूजा का प्रकार बदल गया और मूर्तियाँ बनने लगीं। वास्तु-कला में भी धार्मिक भावनाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। विजयनगर-राज्य में भी धार्मिक परिवर्तन (शैव पुनः वैष्णव) के साथ मंदिरों की बनावट तथा मूर्तियों की रचना में परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। देवताओं के प्रीत्यर्थ नृत्य किया जाने लगा तथा वाद्य बजाया जाने लगा। देवताओं के चित्र बनने लगे। इस प्रकार विभिन्न कलाओं का विकास विजयनगर राज्य में होता रहा। धार्मिक सुधार की लहरें दक्षिण में हिलोरें मार रही थीं। मुसलमानों से भारतीय संस्कृति की रक्षा करनी थी। अतएव जनता के उन्नत जीवन की स्फूर्ती ने विजयनगर राज्य में कला को प्रोत्साहन दिया। यही कारण है कि विजयनगर राजाओं का राज्यकाल भारतीय कला का उन्नतिशील-युग समझा जाता है।

भारतवर्ष में कला के इतिहास पर दृष्टिपात करना यहां अनावश्यक प्रतीत होता है। कला के प्रत्येक विभाग का पृथक्-पृथक् लम्बा इतिहास

है। परन्तु इतना कहना अत्यावश्यक है कि कला का इतिहास तीन कालों में बाँटा गया है—(१) प्राचीन (२) मध्य (३) अर्वाचीन। विजयनगर की कला मध्ययुग की कला का उत्कृष्ट तथा सर्व-श्रेष्ठ नमूना मानी जाती है। इस समय में बने मंदिर या मूर्तियां मध्य-कालीन (दक्षिण भारतीय) कला के प्रतिनिधि स्वरूप हैं। भारतवर्ष में उत्तरी तथा दक्षिणी शैली का जन्म अत्यन्त प्राचीन है। दोनों शैलियों में विशेष अन्तर है। डा० कुमारस्वामी का मत है कि तुलुव-वंशी नरेश कृष्णदेव राय के समय में विजयनगर की कला चरम सीमा को पहुंच गई थी। दक्षिण-भारतीय-कला के सर्व श्रेष्ठ नमूने उसके शासन-काल में ही मिलते हैं[1]। दक्षिण-भारत में वास्तु, तक्षण तथा चित्रकला के नमूने विजयनगर राज्य काल में मिलते हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

वास्तु-कला

विजयनगर-राज्य में द्राविड़ शैली की इमारतें बनीं। शासकों ने अनेक मन्दिर तथा अपने निवास के लिए महल बनवाये। उन मन्दिरों तथा महलों को तालिकोट-युद्ध के पश्चात् पांच माह तक राजधानी में रहकर मुसलमानों ने नष्ट कर दिया और जला दिया। तत्कालीन दो मन्दिरों की स्थापत्य-कला को देखने से विजयनगर की वास्तु-कला का परिचय मिलता है। पहला मन्दिर विट्ठल स्वामी का तथा दूसरा हजाराराम स्वामी का है। दक्षिण-भारत में चौदहवीं शताब्दी से द्राविड शैली में एक विलक्षण परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इस में भाव तथा सामग्री दोनों सम्मिलित हैं। विजयनगर-राज्य में नाना प्रकार के महल बनने लगे थे जिनसे जीवन की पूर्णता, स्वातंत्र तथा वैभव की वृद्धि का पता लगता है। इन सब का कारण विजयनगर के राजाओं का कला-प्रेम ही था। राजधानी में विशाल महल बने थे, जिससे एशिया में यह एक ही नगर समझा जाता था। इस वास्तु कला में सुन्दरता तथा अलंकरण का प्रकार पराकाष्ठा को पहुँच चुका था।

---

१ हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट पृ. १२३

सबसे अधिक सुन्दर और अलंकार-युक्त बना है[1]। यह मन्दिर गहरे हरे रंग के प्रस्तर का बना है। मन्दिर के एक प्रस्तर खण्ड पर एक स्त्री की मूर्ति पेड़ के नीचे खड़ी दिखलाई गई है[2]। जिञ्जी के मन्दिर में स्त्री की मूर्ति (१५०० ई० की) गांधार तथा मथुरा की स्त्री-मूर्ति के सदृश दिखलाई गई है। कृष्णदेवराय ने विट्ठल स्वामी का मन्दिर तैयार किया था, जिसमें गर्भगृह के चारों तरफ वर्गाकार प्रदक्षिणा-पथ बना है। यह बनावट होयसल कला से सर्वथा भिन्न है। इस प्रदक्षिणा-पथ के ऊपर मंदिर का पूरा शिखर बना है। शिखर के शुरु ही में बेल, बूटे, लता और कई तरह की दूसरी आकृतियां खुदी हैं। इस भाग को 'उपानय' कहते हैं। शिखर के बीच का भाग 'कुमुदम्' कहलाता है। यह भाग भी कई तरह से अलंकृत किया गया है। ऊपरी भाग 'कण्ठम्' कहलाता है। इसमें नाचने वाली वेश्यायें, जीवन की अन्य सामाजिक घटनायें, मल्लयुद्ध करते हुए योद्धा आदि की मूर्तियां खुदी हैं। सबसे ऊपर कमल का फूल उलटा बना है। विट्ठल स्वामी के प्रदक्षिणा-पथ में उत्सव के समय काम में लाने के लिए रथ रक्खा है। इन बातों से कृष्णदेव राय के समय में विजयनगर की वास्तु-कला में विशेषता दिखलाई पड़ती है।

अलंकरण

विजयनगर कालीन मंदिरों की विशेषता उनके स्तम्भों से प्रकट होती है। स्तम्भ तथा मेहराबों का अलंकरण इस प्रकार घना हो जाता है कि प्रस्तर में नाटक का भाव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है, जैसे कोई नाटक खेल हो रहा हो। कमरों में स्तम्भ का निर्माण विजयनगर की वास्तुकला का एक विशेष भाग हो जाता है। बीच का भाग लम्बा होता है जिसके चारों तरफ विभिन्न अलंकरण-प्रस्तर लगे हैं तथा बड़ी-बड़ी आकृतियां बनी हैं। उसमें जानवर तथा मनुष्य भी दिखलाये गये हैं। स्तम्भ के अन्य तीन तरफ नाना प्रकार

---

१ कुमारस्वामी—हिस्ट्री आफ इण्डियन एंड इंडो० आर्ट पृ० १२

२ स्मिथ—हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट्स चित्र नं० १६६
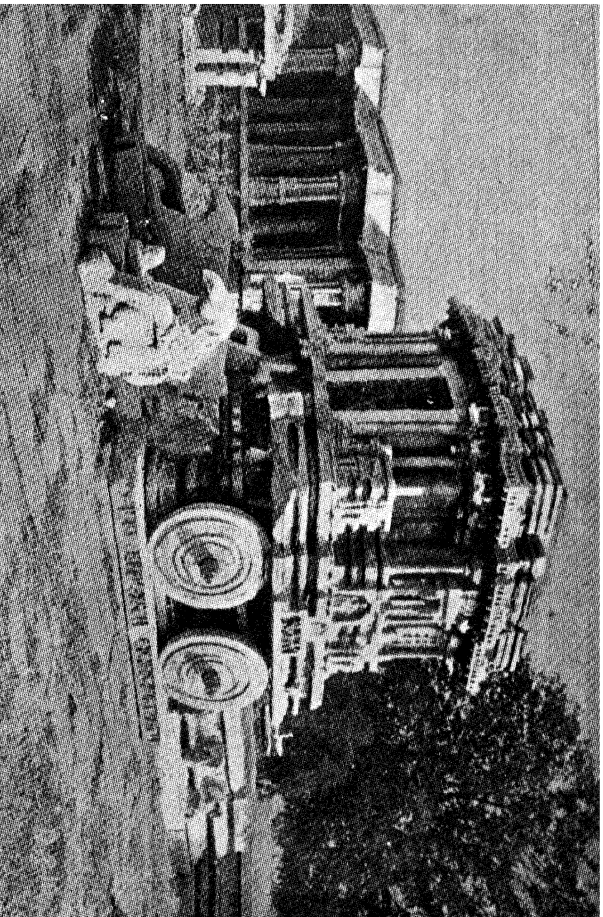
कमल-मन्दिर

के अलंकार बने हैं। विजयनगर के स्तम्भों में घोड़े या किसी देवी जानवर की आकृति अधिकतर बनी है। स्तम्भ नीचे की ओर घनाकार होते हैं परन्तु ऊपर आठ या सोलह कोण वाले हो जाते हैं। उन बड़ी आकृतियों पर अलंकरण-प्रस्तर होता है। सब से ऊपर मेहराब वाला पत्थर जुड़ा होता है। दो मेहराबों पर सुन्दर खुदे हुए प्रस्तर रक्खे होते हैं। उसके ऊपर चपटा छत का भाग रहता है[1]। कभी-कभी घोड़े के स्थान पर औरतों की भी आकृति मिलती है[2]। किसी प्रस्तर पर शेर की आकृति बनी मिलती है[3]। इस प्रकार लगातार सभी खम्भों में आधी सच्ची तथा आधी काल्पनिक आकृतियाँ बनाई जाती हैं। स्तम्भ के चारों ओर मिल कर एक प्रस्तर का आधार बन जाता हैं जो दोनों खम्भों पर रखा जाता है। उसके ऊपर छत बनती है। उसी में कमल के फूल खुदे हुए रहते हैं। इस विवरण से यही ज्ञात होता है कि स्तम्भ का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जो अलकार अथवा आकृति से युक्त न हो[4]। वेलोर मन्दिर में घोड़े के नीचे वामन पुरुषों को दबा हुआ दिखलाया गया है। विद्वानों का मत है कि यह किसी जंगली जाति पर विजय का द्योतक है या मुसलमानों के पराजय को बतलाता है।[5]

ऊपर कहा गया है कि विजयनगर-कालीन मन्दिरों की विशेषता स्तम्भों से प्रकट होती है। विट्ठल स्वामी के मन्दिर में गजसिंह (घोंड़े पर बैठा सैनिक) और पीठिका पर बैठी अंकित सिंह की आकृतियां अत्यन्त सुन्दर बनी हैं। 'कल्याण मण्डप' के स्तम्भों पर राजा-रानी की मूतियाँ खुदी हैं। जो वर्गाकार स्तम्भ हैं उन पर धार्मिक, सामाजिक, काल्पनिक विषयों के चित्र खुदे हैं। नीचे चारों कोने में 'नागबन्ध' वर्तमान है। इस प्रकार

---

१ पी. ब्राउन–इंडियन आर्किटेक्चर प्लेट १०५ नं० ४

२ ब्राउन—वही ,, ,, १११

३ स्मिथ–हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट चित्र नं० १६७

४ ब्राउन–इ. आ. प्लेट ११०। ५ वही—२७३ प्लेट ११२

नगर में दो विभिन्न शैलियाँ (Schools) वर्तमान थीं । भिन्न-भिन्न सामग्रियों के कारण हरे रंग तथा बालूदार पत्थर की दो प्रकार की वास्तुकला का प्रयोग किया गया था।

जैसा ऊपर कहा गया है कि विजयनगर के समस्त मन्दिरों में विट्ठल स्वामी तथा हजाराराम स्वामी के मन्दिर प्रधान थे। विट्ठल स्वामी का मन्दिर सन् १५१३ ई० में कृष्णदेव राय ने प्रारम्भ किया था। अच्युत के समय में वह मन्दिर समाप्त हो गया। विट्ठल भगवान् विष्णु का दूसरा नाम है। यह विशाल मन्दिर हम्पी में तैयार कराया गया था। यह ५००×३१० फीट में विस्तृत है। इसकी ऊंचाई २५ फीट है। गर्भ-गृह स्तम्भों की तीन कतार से घिरा है। इसी में विट्ठल की मूर्ति है। इसमें अर्ध-मण्डप तथा महा-मण्डप भी हैं। महामण्डप के स्तम्भों की बनावट अत्यन्त विचित्र है। बीच के खम्भों में कई अलंकरण प्रस्तर लगे हैं, जिनमें राक्षसों पर बैठी हुई मनुष्यों की आकृति है। स्तम्भ एक ही पत्थर से तैयार किये गये हैं। उन पर कारनिस के पत्थर लगे हैं जो सुन्दर तौर से खुदे हैं । महा-मंडप का भाग १००×६० फीट का है। हाथियों को रक्षक के स्थान पर बनाया गया है और मंडप में जाने के लिए सीढ़ियां हैं। प्रत्येक खम्भे पर मेहराब का प्रस्तर भी लगा है। उसकी छत खुदी हुई है और सुन्दर ढङ्ग से तैयार की गई है। अर्द्धमण्डप में दो तरफ से आने का मार्ग है। चारो कोने में चार स्तम्भ बने हैं जिन पर आधे मनुष्य और आधे दानव की आकृति खुदी है। गर्भ-गृह में जाने के लिए एक मार्ग है। इसी सीमा के भीतर कल्याण-मण्डप भी है। महा-मण्डप के सामने एक सुन्दर भवन है जिसे रथ कहते हैं। उसमें गोलाकार प्रस्तर के घूमते हुए पहियों के साथ रथ बना हुआ है। इसकी रखवाली के लिए दो हाथी बने हैं। इस मंदिर का शिखर द्राविड़ शैली का था परन्तु अब नष्ट हो गया है। बाहर से मंदिर की सीमा में आने के लिए 'गोपुरम्' के साथ तीन द्वार बने हैं।

विट्ठल स्वामी का मन्दिर

दूसरा विशाल मंदिर हजाराराम स्वामी का है । कृष्णदेव राय ने
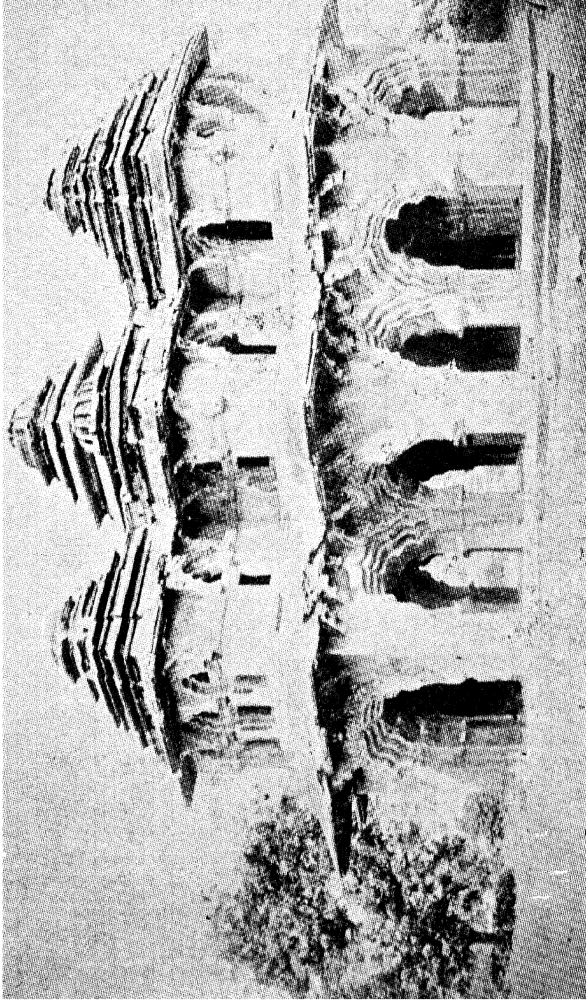
विट्ठल स्वामी का मन्दिर (सामने से)

ही इसको भी बनवाया था। इस मंदिर में राजवंश के लोग पूजा करने आते थे। बड़े मंदिरों की सभी बातें इसमें पाई जाती हैं। अर्द्ध-मण्डप से गर्भगृह में जाने का एक चौड़ा मार्ग बना है। खम्भे पहले घनाकार थे फिर गोलाकार बनाये गये। सब पूरी तरह से खुदे हैं। इसमें 'अम्मान-मण्डप' (बिना शिखर का) तथा विमान या रथ मण्डप शिखर युक्त अत्यन्त सुन्दर है। मंदिर के छत में एक विशेष अलंकरण-प्रकार है। बेल बूटे बने हैं जो द्राविड शैली में नवीनता पैदा करते हैं क्योंकि ये ईंट सीमेंट तथा रंग के प्रयोग से तैयार किये गये हैं[1]। सब से बड़ी विशेषता यह है कि मंदिर की दीवारों पर राम का चरित प्रस्तर में खुदा हुआ है[2]। राम की लीला समस्त दीवार पर स्पष्टतया अंकित देखी जा सकती है। वहाँ जलूस में घोड़े और हाथियों की आकृतियाँ खुदी है। ये सब रामलीला को प्रस्तर खण्डों में दिखा कर मंदिर के नाम की सार्थकता प्रकट करते हैं[3]।

हजाराराम का मन्दिर

विजयनगर के अनेक सुन्दर मन्दिर वेलोर, कुम्भकोणम्, कांची, ताडपत्री तथा श्रीरंगम् में पाये जाते हैं। वेलोर मंदिर में कल्याण-मण्डप सर्वप्रसिद्ध हैं। उसके स्तम्भों पर चित्रलिपि, राक्षस और अन्य आकृतियाँ सुन्दर ढग से बनाई गई हैं। उसका 'गोपुरम्' विशाल आकार का है। कांची के वरदराज मंदिर में एक हजार स्तम्भ हैं। श्रीरंग का मंदिर द्राविड़ शैली का एक अद्भुत नमूना है[4]। गर्भ-गृह तक पहुँचने के लिए एक दिशा में छः गोपुरम् से युक्त द्वार बने हैं। इन 'गोपुरम्' पर मनुष्यों तथा विभिन्न जानवरों और राक्षसों की आकृतियां बनी हैं। इनके स्तम्भ लड़ते हुए घोड़ों की आकृति के साथ खुदे हैं। ताडपत्री का गोपुरम्

---

१ पी० ब्राउन—इंडियन आर्किटेक्चर पृ० १६८

२ फरगुसन—आर्कि० इन० धारवार एंड मैसूर प्लेट ११८, ११६

३ स्मिथ-हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट्स प्लेट ६७

४ पी० ब्राउन—इण्डियन आर्किटेक्चर प्लेट ११५

इससे पता लगता है कि सुन्दर, सूक्ष्म और अद्भुत कल्पना-शक्ति वाले कलाकार ही ऐसा भवन तैयार कर सकते थे।

मन्दिर

द्राविड़ शैली के मन्दिर उत्तरी भारत से सर्वथा भिन्न होते थे। एक मन्दिर तीन विभिन्न भागो में विभक्त होता था। पहला गर्भ-गृह था जिसमें देवता की मूर्ति स्थित होती थी। यह स्थान केवल पुजारी के लिए होता था; अन्य व्यक्ति वहा नहीं जा सकते थे। गर्भ-गृह द्वार के सामने (मुख-मण्डप) देवता के वाहन नन्दी या गरुड़ की मूर्ति बनी होती थी। दूसरा अर्ध-मण्डप होता, था इसको सभा-भवन भी कहते थे। इसमें जनता एकत्रित होकर पूजा में सम्मिलित होती थी। इसका मार्ग गर्भ-गृह को जाता था। प्रायः यह दो तरफ खुला रहता था। तीसरा भाग-महा-मण्डप कहलाता था। यह बहुत बड़ा कमरा होता था। विशेष उत्सवों पर देवमूर्ति को सिंहासन पर रखकर उसकी पूजा करते थे। इन विशेष कमरों की बनावट अत्यन्त सुन्दर होती थी। इन कमरों के ऊपर छत बनी रहती थी। स्तम्भों की सुन्दरता, अलंकार तथा तत्सम्बन्धी प्रस्तर-मेहराब (Pier) इन कमरों की विशेषता को बतलाते हैं। ये कमरे ऊंचे स्थान पर बने होते थे। उन पर जाने के लिए सीढ़ियां बनी होतीं थीं। रास्ते में शोभा के लिए हाथियों की मूर्तियाँ बनी होती थीं। उस स्थान के खम्भों की घनी बनावट, खुदाई, मूर्तियों की रचना ऐसी होती थी कि वे गृह विशाल और भव्य प्रतीत होते थे। विजयनगर के ऐसे खम्भों से युक्त कमरों की विशेष महत्ता मानी जाती थी। इनका विशेष वर्णन आगे किया जायेगा। मुख्य देव-गृह के उत्तर-पश्चिम के कोने पर एक और कमरा बना रहता था, जिसको 'अम्मान-मण्डप' कहते थे। इसमें आराध्य देवी की मूर्त्ति स्थापित की जाती थी। पूर्वी फाटक के बांई ओर एक और भवन बना होता था जिसको कल्याण-मण्डप कहा जाता था। यह अत्यन्त सुन्दर, खुला हुआ, कमरा ऊंचे स्थान पर बनाया जाता था। इसमें देव तथा देवी का वार्षिक उत्सव मनाया जाता था। ये सब कमरे सीमा की दीवार से

हजाराराम स्वामी के मन्दिर की दीवारों पर सेना का खुदा हुआ दृश्य

घिरे रहते थे। मन्दिर में प्रवेश करने के लिए चारों ओर द्वार बने रहते थे। ये साधारण न होते थे बल्कि इन पर एक विशेष लम्बे प्रकार की प्रस्तर की आकृति बनी रहती थी जिसे 'गोपुरम्' कहते थे। यह केवल पत्थर की दीवार की भांति ही न होता था, बल्कि इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के सुन्दर मनुष्यों तथा जानवरों की मूर्तिया खुदी रहती थीं। विजयनगर वास्तुकला की यह एक विशेषता है। जिन मन्दिरों में गोपुरम् नहीं थे उन्हें कृष्णदेवराय ने स्वयं तैयार कराया था। द्राविड़ शैली के एक मंदिर का उपर्युक्त विवरण खाका (मानचित्र) के समान है। मन्दिर की दीवारें, स्तम्भ तथा छतें खुदीं तथा अलंकृत होती थीं। इन मंदिरों की अलंकृति तथा देवताओं के चिन्हों से पता चलता है कि ये शैव अथवा वैष्णव मन्दिर हैं।

विजयनगर में दो प्रकार के मन्दिर बने हुए हैं। पहला बालूदार प्रस्तर का विशाल मन्दिर तैयार किया गया है। दूसरा मंदिर पर्वत पर पत्थर निकालने के स्थान से हटकर कुछ दूरी पर बना है। यह सारा मन्दिर, कमरा तथा स्तम्भ एक बहुत बड़े पहाड़ को खोदकर बनाया गया है। जिसमें कहीं भी जोड़ नहीं है। एक ही चट्टान से विशाल मन्दिर तैयार करने का विचार आश्चर्य-जनक प्रतीत होता है, परन्तु विजयनगर में ऐसे ही मन्दिर तैयार किये गये थे। पहाड़ को खोदकर खाका तैयार करना, कमरे निकालना, बरामदा तैयार करना, स्तम्भों को खड़ा करना, और विभिन्न प्रकार के अत्यन्त सुन्दर अलंकरण करना, विजयनगर-कालीन कलाकारों की अद्‌भुत निपुणता का परिचय देता है। पूरी इमारत को केवल एक ही विशाल प्रस्तर से तैयार करना विजयनगर के वास्तु-कलाकारों की उत्कृष्टता को प्रकट करता है। दूसरे प्रकार के मंदिर हरे रंग के प्रस्तर से तैयार किये जाते थे। पहले ढंग का मन्दिर सूक्ष्म तथा वास्तविक बातों को प्रकट करता है, परन्तु उसमें सफाई की कमी है। गहरे हरे रंग के मन्दिर बड़ी दक्षता-पूर्वक तैयार किये गये हैं। वे कलाकार की निपुणता तथा अनुभव का परिचय देते हैं। इन सब बातों को देखने से प्रकट होता है कि विजय-

मन्दिर के स्तम्भ ही उसकी महत्ता को बढ़ाते हैं। सर्वत्र मन्दिरों के द्वार पर हाथियों अथवा शस्त्रयुक्त योद्धा (द्वारपाल) की मूर्तिया पाई जाती हैं।

विजयनगर के शासकों ने मन्दिरों के अतिरिक्त महल तथा दुर्ग भी बनवाया था। भवनों की सुन्दरता के कारण विजयनगर एशिया का एक प्रधान स्थान समझा जाता था। आजकल राजधानी के नष्ट हो जाने से कोई सुन्दर भवन शेष न रहा।

महल तथा किले

जो ध्वंसावशेष मिले हैं उन्हीं से वास्तु-कला का परिचय प्राप्त किया जाता है। विजयनगर के सुन्दर तथा विशाल-भवन पहाड़ों पर स्थित थे। उनको देखकर यह कहना कठिन है कि पत्थर-खण्डों को जोड़कर यह भवन तैयार किया गया था अथवा पहाड़ को ही काट कर महल या अट्टालिकायें तैयार की गई थीं। प्रस्तरों की सरलता से प्राप्ति के कारण ये भवन पहाड़ों पर ही बनाये गये थे परन्तु कलाकारों की निपुणता से ऐसा मालूम पड़ता है कि सारी इमारत एक ही चट्टान से तैयार की गई है। किलों के ध्वसावशेष बतलाते हैं कि विजयनगर के दुर्ग विशाल थे। उनमें सभा-भवन, सिंहासन का स्थान तथा विजय-स्मारक स्थान विशेषतया सुन्दर बने थे। सभा-भवन में सैकड़ों स्तम्भ थे। उनके ध्वंसावशेष से जान पड़ता है कि ये मध्य में चौड़े (किसी में गोल) तथा सिरे पर मेहराब युक्त थे। राजमहल के कमरों का विस्तार ३२′×७८′ फीट था। दीवारें खुदे हुए प्रस्तरों से बनी थीं। अलंकार युक्त पत्थरों के नमूने उस समय की कारीगरी को बतलाते हैं।

विजयनगर के सामन्तों तथा नायकों ने भी भवन तथा मन्दिर बनाने में पर्याप्त लगन दिखलाया। 'तंजौर के नायक शिवप्पा ने शिवगंगा नामक एक विशाल दुर्ग बनवाया था। तिरुवन्नमलाई में उसने एक सुन्दर मन्दिर बनवाया जो अत्यन्त दर्शनीय था। सुदूर प्रान्त से लोग उसे देखने के लिए आते थे। विदेशियों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मदुरा के नायकों द्वारा निर्मित मन्दिर भारत की स्थापत्य-कला में विशेष

स्थान रखते हैं। उनकी निर्माण-शैली स्वतन्त्र समझी जाती है। विजय नगर कला-सम्प्रदाय (स्कूल) के ये महान् द्योतक हैं। मुट्टु वीरप्पा की माता रानी मंगमल्ल ने अनेक मन्दिर तैयार कराये। मदुरा की मीनाक्षी देवी का सुप्रसिद्ध मन्दिर तत्कालीन वास्तु-कला का ज्वलन्त उदाहरण है। सभी प्रादेशिक शासकों ने कला को अपनाया तथा उसे प्रोत्साहन दिया। भारतीय कला (विजयनगर शैली) की बहुत सी इमारतें मुसलमानों ने ध्वंस कर दीं, तो भी उस समय की कला हम्पी के खण्डहरों में आज भी सुरक्षित है। वर्तमान समय में भी दक्षिण में भारत के अन्य प्रान्तों के मुकाबिले में भवन, मन्दिर तथा किले अधिक सुरक्षित हैं जो उस समय की वास्तु-कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

भारतीय-कला में विजयनगर कालीन तक्षण-कला का एक विशेष स्थान प्राप्त है। इस कला को मध्य-कालीन तक्षण-कला का नाम दिया जाता है। इसकी एक निजी विशेषता है।

तक्षण-कला

मध्य-युग की मूर्त्तिकला में शास्त्रीय बातों का अक्षरशः अनुकरण किया गया है। अन्यत्र इस प्रकार की बातें नहीं दिखलाई पड़ती। इस कला में कलाविदों की कुछ निजी भावनायें तथा हस्त कौशल दृष्टिगोचर होता है। परन्तु इस युग में शास्त्रीय बातों के अतिरिक्त कलाकारों ने अपनी स्वतन्त्र-कला को दिखलाने का विशेष प्रयत्न नहीं किया। विजयनगर की तक्षण-कला में मनोविज्ञान तथा शृङ्गार रस की भावमयी अभिव्यक्ति की प्रधानता है। मध्य-युग की तक्षण-कला में वास्तुकला की अनेक बातें दिखलाई पड़ती है। इसमें सर्वथा तक्षण-कला की विशेषतायें नहीं हैं। इसका एक प्रधान कारण यह है कि मूर्त्ति-निर्माण करने वालेका विशेष सम्बन्ध उस मूर्त्ति से समझा जाता है, जिसमें भक्त अपनी भावना और भक्ति को आरोपित कर सके। देवता की पूजा से मनुष्य के मनोवांच्छित फल तथा मोक्ष-प्राप्ति की कामना सम्बन्धित रहती है। इन सब बातों को ध्यान में रख कर मूर्त्ति-कला की शैली स्थिर की जाती थी।

दिखलाई पड़ते हैं जिनकी एक विशेष शैली प्रचलित थी। विजयनगर की प्रारम्भिक अवस्था के अनुसार चित्रों का स्थान तथा रंग भरा गया है। रंग भरने का प्रकार पुराना था। कृष्णदेवराय आदि राजाओं की धातु-मूर्तियों में जिस प्रकार का मुकुट मिलता है वैसा ही मुकुट चित्रों में भी पाया जाता है। आभूषण उसी प्रकार तथा उसी स्थान पर दिखाये गये हैं जिस प्रकार कि विजयनगर शैली में प्रचलित थे। स्त्रियां घोड़े पर सवार चित्रित की गई हैं। शरीर में तंग वस्त्र तथा साड़ी दिखलाई पड़ती है। सिर तथा नाक की बनावट का अनुपात शरीर की तुलना में बड़ा मालूम पड़ता है। नाक तथा कान में आभूषण है। लक्ष्मी देवी परिचारिका के साथ चित्रित हैं। चित्रों में नोकीलापन अधिक आ गया है। समस्त दक्षिण में विजयनगर शैली प्रचलित थी। अनेगुडी के मठ में चित्रों के काले रंग में लाल रंग की लाइनें दिखलाई पड़ती हैं। कई प्रकार के फूल पत्तों को भी चित्रकारों ने स्थान दिया है। कमल के फूल की लाल पंखड़ियों तथा पीले पराग का भाग दिखलाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त कांची में इरुगप्प द्वारा निर्मित संगीत-मण्डप भी वर्तमान है। इसका सम्बन्ध विजयनगर से बतलाया जाता है। इसमें की गई चित्रकारी इसी काल की द्योतक है। परन्तु अनेगुडी की चित्र-कला विशेष महत्त्व रखती है। चित्र के किनारों पर बेल बूटे तथा कमल के फूल बने हैं। स्त्रियां वस्त्रा-भूषण से सुसज्जित दिखलाई पड़ती हैं। हाथी तथा ऊंटों के चित्र भी प्रायः मिलते हैं। उनपर सवारी करते हुए पुरुष चित्रित हैं। बरामदे की छतों में एक ही समान चित्र दोनों तरफ बनाये जाते थे। जिससे देखने वालों को एक-सा प्रतीत हो। कोई भाग खाली न रहता था। भूमिति की शक्लें, पुष्पों के सहित अनेक लताएं, अत्यन्त सुन्दर प्रकार से दिखलाई गई हैं। मनुष्यों की विभिन्न अंगों की बलवान् तथा चंचल आकृतियाँ सजीवता के साथ चित्रित हैं। मनुष्यों की बराबरी में स्त्रियों के पैर उचित रीति से नहीं दिखलाये गये हैं। उनकी आँखें लम्बी हैं और ललाट तथा नाक एक सीध में दिखलाई पड़ती है। वक्षस्थल उभरा हुआ दिखलाया
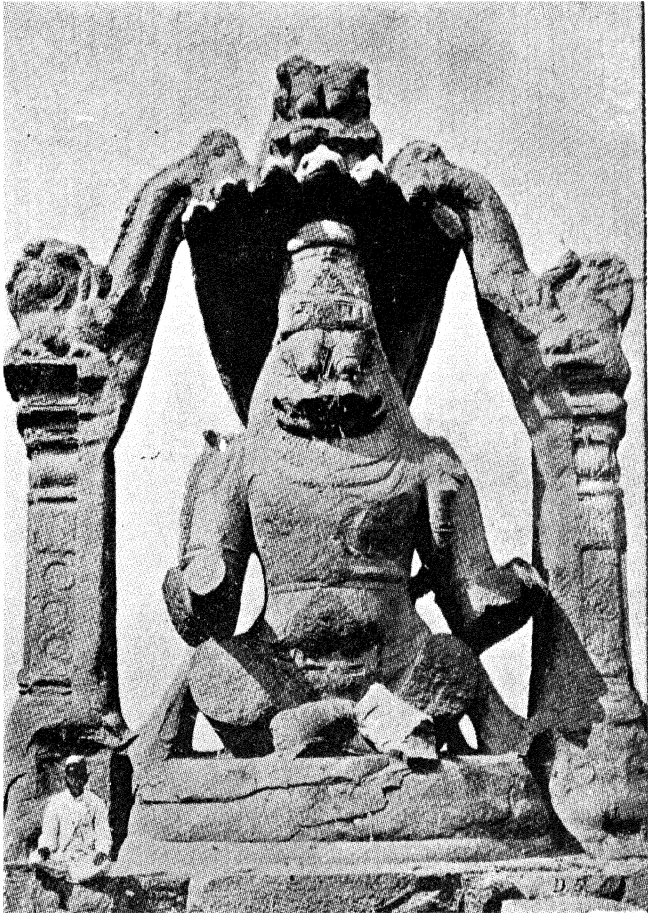
नृसिंह की मूर्त्ति

गया है। वस्त्रों में टेढ़ी लकीरें एक दूसरे को आच्छादित कर रही हैं जिसके कारण कपड़े की लाइनें गोलाकार बनकर आगे चलती हैं। चित्रों में खाका-चित्रों को विशेष महत्त्व दिया जाता था। चित्रों में ऊंचाई, निचाई का पूरा ध्यान रक्खा जाता था। दूर स्थित वस्तुओं का चित्र इस बारीकी से खींचा जाता कि सभी अंगों का चित्र ठीक-ठीक उतर जाय। चित्र के साथ प्राकृतिक दृश्य की भी प्रथा यत्र-तत्र प्रचलित थी।

विजयनगर की चित्रकला उपर्युक्त विशेषताओं के साथ दक्षिण-भारत में प्रचलित थी। उस भाग में प्रायः प्रत्येक चित्र विजयनगर की शैली पर ही तैयार किये जाते थे। उस काल के चित्रों के अधिक नमूने इस समय नहीं मिलते। विदेशी यात्रियों ने लिखा है कि वेंकटपति द्वितीय विद्वान् राजा था तथा कलाकारों का आश्रयदाता था। चन्द्रगिरि में चित्रकार अधिक संख्या में रहा करते थे। योरप की चित्रकला से वेंकट बहुत प्रभावित था, अतएव उसने ईसाई चित्रकारों को अपने यहां नियुक्त किया था। राजा ने उनके काम से प्रसन्न होकर नई सौ मुद्राये रंग खरीदने के लिए दी थीं। कृष्णदेव राय के समय में विजयनगर की कला चरमसीमा को पहुंच चुकी थी। अतएव यह अनुमान किया जाता है कि कृष्णदेव राय से लेकर वेंकट के समय तक प्रत्येक कला अभ्युदय को प्राप्त थी।

विद्वानों की यह धारणा निराधार है कि दक्षिण भारत में चित्रकला चोल राजाओं के साथ समाप्त हो गई; प्रत्युत इसके विपरीत इसकी परम्परा अविच्छिन्न रूप से विजयनगर काल तक पायी जाती है। जैसा कहा गया है कि विजयनगर के चित्रकारों को आकृति तथा मुद्राओं का अच्छा ज्ञान था। चित्र को आकर्षक बनाने के लिए रंग भरने की कला की वे पूरी जानकारी रखते थे। पेई ने ऐसे ही सुन्दर चित्र कृष्णदेव राय के महल में देखा था। चित्र का विषय सर्वथा पौराणिक था। समुद्र-मन्थन, कामदेव का नाश, नलदमयन्ती का विवाह और विष्णु आदि के चित्र अंकित थे। यही नहीं, सुन्दर चिड़ियों—हंस, शुक, मयूर आदि के चित्र खींचे गये थे। इसके अतिरिक्त प्रेम-लीला, रम्भा, उर्वशी, कृष्ण

ढंग से बनी हैं। रथ, जलूस तथा आखेट आदि के दृश्य स्वाभाविक हैं। ये कृतियाँ पर्याप्त अनुभव प्राप्त कलाकार की कला को बतलाती हैं। यदि ये मंदिर अपनी पूर्वावस्था में होते तो विजयनगर की कला अपने पूर्ण विकास के साथ हमें देखने को मिलती। सक्षेप में यही कहा जा सकता है कि दक्षिण में विजयनगर की कला-शैली किसी समय की कला से घट कर नहीं है। कला के ऐसे सुन्दर उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलते। जैसा कहा गया है कि यहा की तक्षण-कला का विषय एक न था। कहीं रानी नृत्य देख रही है और कहीं राजा के पास दूत आ रहे हैं। कहीं स्त्री घोड़े पर सवार या धनुष-बाण के साथ दिखालाई गई है। किसी स्थान पर मृगया का अथवा राजा के सम्मुख नृत्य का दृश्य खुदा है। बादशाह के सामने खडे कैदियों की मूर्तियाँ बनी हैं। हिरन, कुत्ते, घोडे या सिपाही की आकृतियाँ सजीव मालूम पड़ती हैं। उनमें जीवन, शक्ति और स्फूर्ति दिखलाई पड़ती है।

धातु-मूर्त्तियां

विजयनगर-कालीन तक्षण-कला के सुन्दर उदाहरण केवल प्रस्तर पर ही नहीं मिलते बल्कि विशिष्ट धातु की निर्मित मूर्त्तियों में भी पाये जाते हैं। चोल राजाओं के समय से ही तांबे की मूर्त्तियाँ ढाली जाती थीं। शैव सम्प्रदाय वालो ने नटराज शिव की धातु-मूर्त्ति अत्यन्त सुन्दर ढंग से तैयार की। विजयनगर राजाओं ने भी उस ढंग को अपनाया। इन धातु-मूर्त्तियों में मध्यकालीन कला के गुण मुख्यतया दिखलाई पड़ते हैं। शास्त्रीय ढंग के समावेश के कारण उनमें गम्भीरता आ जाती है, परन्तु अलंकारों की सघनता से कला नष्ट-प्राय होगई है। विजयनगर काल में मिश्रित धातु की मूर्तियां बनतीं थीं। राजा देवराय द्वितीय ने जस्ता (धातु) का एक मन्दिर तैयार कराया[1]। इस मन्दिर को राजा ने अगणित दान तथा असंख्य द्रव्य व्यय करके तैयार किया था। यह मन्दिर इतना सुन्दर बना हुआ था कि गोआ का

---

१ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ८८

पुर्तगाली गवर्नर इसे देखने के लिए तिरुपति आया। इसी स्थान पर कृष्णदेवराय तथा उसकी दो रानियों की धातु मूर्त्तियां मिली हैं[1]। वेंकटपति राय की भी धातुमूर्त्ति तिरुवन्नमलाई से प्राप्त हुई है। उसमें कलाकारों ने पूर्व मूर्त्तियो के अनुकरण करने का प्रयत्न किया है परन्तु प्रयोग की कमी के कारण इस शैली का अधिक प्रचार न हो सका[2]। उस समय में मदुरा के नायकों के यहाँ भी धातु-मूर्त्तियाँ बनती थीं। ऐसी मूर्तियों के ढालने का केन्द्र तंजोर, त्रिचनापल्ली, सलेम, रामनाड़ तथा उत्तरी आरकाट था। गांगूली का कथन है कि दक्षिणी तिरुपति प्रांत में जस्ता तथा तांबे की मूर्त्ति बनाने वाले कारीगर अब भी वर्तमान हैं जो प्राचीन कलाकारों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं[3]।

चित्र-कला

विजयनगर-युग में जिस प्रकार स्थापत्य-कला तथा तक्षण-कला की उन्नति हुई थी, उसी प्रकार चित्र-कला भी अभ्युदय की चोटी पर पहुंच गई थी। दक्षिण भारत में चित्र-कला की जितनी उन्नति हुई उसका अधिकांश श्रेय विजयनगर-काल को प्राप्त है। उस समय की प्रारम्भिक चित्रकला के उदाहरण नहीं मिलते। इसका कारण यह है कि मुसलमान आक्रमणकारियों ने चित्रों को नष्ट कर दिया। तो भी बचे हुए नमूनों से उस काल के चित्रकारों की हस्त-कुशलता और निपुणता का परिचय मिलता है। दुर्भाग्यवश उस समय के कोई भी चित्र आज कागज अथवा केनवास पर नहीं मिलते परन्तु मन्दिरों, मठों तथा भवनों की दीवारों पर दिखलाई पड़ते हैं। भारतियों में ज्ञान-पिपासा के साथ सौंदर्य पिपासा की कभी कमी न थी। इन चित्रों की रचना केवल स्मरण और कल्पना के आधार पर ही होती थी। उस समय के चित्रों के नमूने अनेगुडी में स्थित उचमप्प मठ की छतों में मिलता है। छतों में अनेक प्रकार के चित्र

---

१ ओ० सी० गांगूली—सा० इ० ब्रोन्जेज़ पृ० २२ प्लेट १२४

२ वही पृ० ५६ प्लेट १२५। ३ सा० इ० ब्रोन्जेज पृ० ६०

विजयनगर की तक्षण-कला मध्य-युग की कला का प्रतिनिधि मानी जाती है। इसमें अलंकरण का प्रकार इतना अधिक है कि भावों की ओर ध्यान ही नहीं जाता। इसमें सब से अधिक अलंकार तथा अलंकरण सामग्री का एकत्रित भाव दर्शाया गया है। प्रायः सर्वत्र एक ही भावना का प्राबल्य है तो भी समय-समय पर इसमें कुछ भिन्नता दिखलाई पड़ती है। इसमें एक कलाकार दूसरे से बहुत अधिक विभिन्नता नहीं रखता। प्रत्येक मूर्त्ति में अलंकरण व अंगों में अनुपात दिखलाया गया है। पुरुष की मूर्त्ति कला के शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार तैयार की जाती थी, यद्यपि स्त्री की मूर्त्ति में कुछ अशास्त्रीय बातें भी आ जाती थीं।

विजयनगर की मूर्त्तियों की सुन्दरता का एक मुख्य कारण यह है कि वे देखने में विशाल तथा चित्ताकर्षक लगती थीं। भक्त का ध्यान एकाग्र हो जाता था। भगवान् की मूर्त्ति गर्भ-गृह में स्थापित की जाती थी, जहां पर प्राकृतिक प्रकाश नहीं पहुंचता था। गर्भ-गृह में खिड़कियों का अभाव होता था। बाहरी कृत्रिम प्रकाश भीतर पहुँचाया जाता था, जिससे मूर्त्ति की विलक्षण शक्ति बनी रहे। संभवतः विजयनगर के कलाकारों ने गुफा-मूर्त्तियों से यह भाव ग्रहण किया हो। मूर्त्ति स्नान के समय नग्नावस्था में रखी जाती थी। कपड़ा पहनाना अथवा विशेष शृंगार गर्भ-गृह में ही किया जाता था। मूर्त्ति की दैवी शक्ति का ज्ञान भक्तों को सदा एक सा बना रहता था और भक्त सदा एकाग्रचित्त होकर ध्यान लगाता था।

विजयनगर की तक्षण-कला की दूसरी विशेषता यह थी कि मंदिरों की दीवारों पर अनेक प्रकार की मूर्त्तियाँ बनी रहती थीं जिनका शास्त्रीय रीति से अधिक संबंध नहीं रहता था। पार्श्व देवता की बड़ी मूर्त्ति गर्भ-गृह के मुख्य मार्ग के दोनों तरफ की दीवारों में बनी रहती थी। ऊपर दिक्पाल की आकृतियां मंदिर की दीवारों पर बनाई जाती थीं। शालभंजिका तथा शार्दूल (आधा मनुष्य, आधा जानवर) की आकृतियाँ साधारणतया सर्वत्र पाई जाती हैं। कभी-कभी गुरु-शिष्य की मूर्त्ति मंदिर

की दीवारों पर बनी मिलती है। । मिथुन की जोड़ी, सैनिक तथा जानवर आदि भी विजयनगर के कलाकारों द्वारा बनाये गये थे।

विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय के समय में तक्षण-कला अपनी उच्चतम चोटी को पहुंच गई थी। सोलहवीं शताब्दी के पश्चात् मुसलमान राजाओं ने विजयनगर पर आक्रमण कर छः मास के भीतर इसके समस्त वैभव का नाश कर दिया। उसी समय विशाल मंदिर और मूर्त्तियाँ नष्ट कर दी गईं। अद्यावधि हम्पी के भग्नावशेषों में जो कुछ प्राचीन मूर्त्तियाँ मिलती हैं उन्हीं से उनकी अलौकिक सुन्दरता तथा अलंकरण का अनुमान किया जा सकता है। कला की इन्हीं अवशिष्ट कृतियों से विजयनगर के कलाकारों के सिद्ध हस्त होने की बात सिद्ध होती है। ये मूर्त्तियाँ विठोबा मंदिर और हजाराराम मंदिर के ऊँचे सिंहासन पर बनाईं गईं थीं। मंदिर में थोड़ा-सा भी भाग ऐसा न था जिसमें किसी न किसी प्रकार की मूर्त्ति न बनी हो। ताडपत्री के मंदिर में भी विजयनगर शैली (मध्य-कालीन) की मूर्तियाँ बनी थीं। हम्पी में एक प्रस्तर पर होली के उत्सव मनाने के समय का दृश्य दिखलाया गया है। उसमें एक नर्तकी नृत्य कर रही है। उस प्रस्तर खण्ड में नर्तकी के स्वच्छ वस्त्र, केश-ग्रंथि, आभूषणों की बनावट अत्यन्त सुन्दर दिखलाई पड़ती है। उसके प्रत्येक अंग में समान अनुपात का ध्यान रखा गया है[1]। विठोबा तथा ताडपत्री के मंदिरों में गंगदेवी की अत्यन्त सर्वांग सुन्दर मूर्त्ति बनी है। पीछे घोड़ों की मूर्तियां अधिकता से बनने लगीं। स्तम्भों तथा मेहराबों में जानवरों के चित्र बनाये जाने लगे। कभी तो घोड़े के स्थान पर विचित्र जानवरों की आकृतियाँ पाई जाती हैं। उनकी बनावट अलंकार से युक्त तथा स्वाभाविक रूप में तैयार की जाती थी। हजाराराम मंदिर की दीवारों पर रामायण की सारी घटनायें प्रस्तर दिखलाई गई हैं। उनमें मनुष्य और जानवर की आकृतियाँ स्वाभाविक पर

---

१ खांडेलवाला—इंडियन स्कल्पचर चित्र नं० ७७ व ७८

और गोपियों के चित्र पेई ने स्वयं देखे थे। विजयनगर के चित्रकारों में इतनी कुशलता होने पर भी वेंकट द्वितीय ने अपने समय में विदेशी चित्रकारों की नियुक्त की थी।

बाद की विजयनगर-कला का नमूना लेपाक्षी मंदिर में पाया जाता है। यद्यपि यह मंदिर छोटी सी जगह में बना है पर वहाँ पापनाशेश्वर शिव का भी मंदिर है। अच्युत राय का एक लेख भी वहाँ मिला है। परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि अच्युत ने उस मंदिर का निर्माण कराया था। उस मंदिर का मुख्य भाग 'मण्डप' है जिसमें विशाल स्तम्भ नाना प्रकार से खुदे है। इसी के अन्दर मण्डप की छत में चित्र खीचे गये हैं। इनमें महाभारत तथा पुराण की घटनायें चित्रित हैं। चित्रकारों ने अपने हस्त-कौशल का सुन्दर परिचय दिया है। अर्धमण्डप देखने योग्य है। इसकी छत में चित्रकला के सुन्दर और उत्कृष्ट नमूने पाये जाते है। इनकी विशेषता यह है कि इन चित्रों में शिव के विभिन्न रूप शिव-ताण्डव, दक्षिणामूर्त्ति, गंगाधर तथा हरिहर आदि दिखलाये गये हैं। ये चित्र शिल्पशास्त्र के अनुकूल बने हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि अर्धमण्डप के चित्र विजयनगर काल की चित्र-कला का प्रतिनिधित्व करते हैं।

विजयनगर कालीन साहित्य तथा कला का विवेचन किया जा चुका है। अब संगीत और अभिनय का कुछ वर्णन किया जायेगा। विजय-

संगीत

नगर के राजा स्वयं विद्वान् थे और पण्डितों के आश्रयदाता थे। उनके दरबार में विद्वानों का जमघट लगा रहता था। वे साहित्य, कला तथा सङ्गीत की चर्चा में अपने समय को बिताते थे क्योंकि—

साहित्य-संगीत-कलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।

साहित्य तथा कला की उन्नति के उपरान्त सङ्गीत की ओर शासको का ध्यान जाना नितान्त स्वाभाविक था। सामाजिक तथा आध्यात्मिक कारणों से ही

सङ्गीत का प्रादुर्भाव हुआ करता है। यह तो सब को विदित ही है कि सामवेद से सङ्गीत का जन्म हुआ (सामवेदादिदं गीतं संजग्राह पितामहः)। परन्तु इसके बाद सङ्गीत-शास्त्र पर ग्रंथ लिखने का प्रथम श्रेय भरत को ही है। समस्त भारत में इनकी शैली का विस्तार हुआ पर दक्षिणी भारत में 'दाक्षिणात्य-पद्धत्ति' का प्रचार था। भरत ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। अतएव दक्षिण में विजयनगर-राज्य से पूर्व सङ्गीत की पद्धति प्रचलित थी जिसकी उन्नति इस काल में हुई।

विजयनगर के शासक और नायक लोग भी सङ्गीत के प्रेमी थे। कृष्णदेव राय और रामराय स्वयं संगीत के ज्ञाता थे। उनके लेखों में वर्णन मिलता है कि राजा गान-विद्या में अद्वितीय था[1]। पेई ने भी लिखा है राज दरबार में नाना प्रकार के बाजे वर्तमान थे[2]। इन सब उल्लेखों से राजाओं के संगीतज्ञ होने की बात सिद्ध होती है। बारबोसा का कथन है कि राजा के स्नान करते समय राजमहल की स्त्रियाँ गाने गाकर उसका विनोद किया करती थीं। उसके दरबार में संगीत-शास्त्र के आचार्य रहा करते थे। इम्मादी देवराय के समय में संगीत-विद्या चरम-सीमा को पहुँच गई थी। उसी की आज्ञानुसार कल्लिनाथ तथा अष्ठाना पंडित ने 'संगीत-रत्नाकर' पर टीकायें लिखीं। यद्यपि भरत की संगीत-पद्धति पर अनेक विद्वानों ने टिप्पणी लिखी थी, पर कल्लिनाथ की टीका महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। इसी टीका से सबको भरत के भाव ज्ञात होते हैं। भरत-पद्धत्ति के अतिरिक्त दक्षिण-भारत में 'कर्नाटक-शैली' का भी प्रचुर प्रचार था। विजयनगर-शासकों ने उत्तरी और दक्षिणी भारतीय-संगीत-पद्धत्ति को अपनाया और प्रोत्साहित किया। विशेषतः 'ध्रुव' तथा 'ख्याल' की अधिक प्रसिद्धि थी। इसे उत्तर में फैलाने का श्रेय गोपाल नायक को है। रामराय के समय में कर्नाटक-पद्धत्ति को लोग अधिक पसंद करते थे। उसी की आज्ञानुसार कल्लिनाथ

---

१ इ. आ. आ. पृ. ४०१। २ सेवेल पृ० २४१।

के पौत्र रामामात्य ने 'स्वरमेलकलानिधि' नामक पुस्तक लिखी। इस प्रकार संगीत का प्रसार विजयनगर काल में अधिक हुआ। कल्लिनाथ के समय में संगीत द्वारा जनता में धार्मिक और सामाजिक भावनायें जागरित की की गईं। श्रीपाद स्वामी ने माधवाचार्य के शिष्य नरहरितीर्थ की परम्परा को आगे बढ़ाया। इन्होंने संगीतमय सैकड़ो छंदों की रचना की। संस्कृत न जानने वालों के लिए कन्नड़ भाषा में गीत लिखे गये। इस प्रकार जनता में संगीत का प्रचुर प्रचार हुआ। ये सालुव नरसिंह के गुरु थे। इनकी शिष्य-परम्परा में ऐसे ही संगीतज्ञ होते आये हैं। इनके सभी शिष्य विजयनगर के राजगुरु थे। राजा कृष्णदेव राय के गुरु श्रीव्यासरामस्वामी सन् १५२६ ई० में बानबे वर्ष की आयु में मरे। इनके तीन प्रधान शिष्य थे। पुरन्दर दास ने पंढरपुर को अपना केन्द्र बनाया। कीर्तन के द्वारा संगीत का अच्छा प्रचार किया गया। इन लोगों ने कर्नाटक शैली का प्रचार किया। आचार्यों का मत है कि संगीत में 'ठाट' का समावेश विजयनगर दरबार में हुआ था। इस हिन्दू-राज्य के अतिरिक्त तत्कालीन मुसलमान सुल्तानों ने भी संगीत को प्रोत्साहित किया। अहमदनगर सुल्तान के दरबार में पुण्डरीक विट्ठल नामक संगीताचार्य रहा करता था। वह कर्नाटक का पंडित था। परन्तु वह अहमदनगर सुल्तान के यहाँ अपनी कला का प्रदर्शन किया करता था। उसने 'रागमाला', 'राग-मंजरी' तथा 'नर्तक-निर्णय' आदि ग्रन्थों की रचना की है। संगीत के आचार्यों में 'मेल' के प्रस्तार और निश्चित संख्या के विषय में मत-भेद है। कल्लिनाथ तथा विट्ठल ने 'मेल' की विभिन्न संख्यायें निश्चित की हैं। परन्तु यहां पर इसका गूढ़ विवेचन करना अनुचित होगा। यह संगीतज्ञों के विवाद का विषय है। सारांश यह है कि भारतवर्ष में भरत और दक्षिणात्य-पद्धति का प्रचार साथ-साथ ही हुआ। विजयनगर शासकों ने दोनों को अपनाया। इस प्रकार संगीत की विशेष उन्नति इस समय में हुई।

संगीत के साथ नृत्य तथा वाद्य का अभिन्न सम्बन्ध है। जहां गीत

वसन्तोत्सव का दृश्य (चित्र में नर्तकियाँ नाच रही हैं)

है, वहां नृत्य तथा वाद्य का होना स्वाभाविक है। विजयनगर-राज्य में नृत्य का प्रचुर प्रचार था। राज-सभा में नित्य गाना तथा नृत्य हुआ करता था। वेश्यायें मन्दिरों में नाचा करती थीं। लेखों में वर्णन मिलता है कि प्रत्येक शनिवार को महल में नृत्य होता था तथा राजा-रानी उसे देखा करते थे। वेश्यायें रानियों को संगीत (नृत्य, वाद्य व गाना) सिखलाया करती थीं। जैन लोग भी गाने व नाचने से अधिक प्रेम रखते थे। विजयनगर के लेखों में वाद्य-सामग्री ढोल, भेरी, मंजीर आदि का नाम मिलता है। 'राघवेन्द्र-विजयम्' में ऐसा वर्णन मिलता है कि राजा (कृष्णदेवराय) स्वयं वीणा बजाया करता था। रामराय के समय में वाद्य की बड़ी उन्नति हुई। बारबोसा के कथनानुसार वेश्यायें नाच के प्रसार में खूब दिलचस्पी लेती थीं। वृद्ध वेश्यायें अपनी दस वर्ष की लड़कियों को शृङ्गार कर मन्दिरों में ले जाती थीं। वे वहां देवदासी के रूप में रहा करती थीं। उस समय नर्तकी को आजकल की वेश्याओं के समान निन्दनीय नहीं समझा जाता था। वे राजमार्ग पर रहा करती थीं। सभ्य विद्वान् व्यक्ति भी गाने तथा नाच देखने के लिए उनके पास जाया करते थे। वे राजमहल में बिना संकोच के चली आती थीं और राजा-रानी के साथ पान खाया करती थीं। इससे मालूम पड़ता है कि उनको आदर की दृष्टि से देखा जाता था। राजा कृष्णदेव राय के समय में वेश्यायें महानवमी उत्सव में खूब भाग लेती थीं। राजा ने नृत्य के प्रचार के लिए नृत्य-शाला तैयार कराई थी। नाच सिखाने वाले को कृष्णदेव राय ने दो गाँव दिये थे[1]। नृत्य-मण्डप की इमारत बड़ी सुन्दर थी। स्तम्भों से युक्त बड़ा कमरा था जिस पर नाना प्रकार की आकृतियाँ खुदी थीं। जानवर (हिरन), मनुष्य और पक्षियों की आकृति प्रस्तर पर खुदी थी। हाथियों पर ढोल लेकर बैठी हुई वेश्याओं की मूर्त्तियाँ स्तम्भ पर खोदी गई थीं। इस मण्डप की

नृत्य तथा वाद्य

---

१ रंगाचार्य—टोपो-लिस्ट भा० २ पृ० ११२

विशेषता यह थी कि खम्भों पर जितने प्रस्तर लगे थे उन पर सुन्दर खुदाई की गई थी। उनमें नृत्य की विभिन्न मुद्रायें दिखलाई गई थीं। नाचने वाले को इन्हें देख कर काम करना पड़ता था। यदि नर्तकी कहीं कोई मुद्रा भूल जाती तो शीघ्र ऊपर आंख उठा कर देख लेती और पुनः उचित रीति पर नाचने लगती थी। नाच सिखलाने के लिए किसी आदमी की आवश्यकता सदा न थी। उस मण्डप में भरत नाट्य-शास्त्र में बतलाई हुई सभी मुद्राओं के चित्र थे। कृष्णदेव राय की विशेष आज्ञा से नृत्य-मण्डप के मध्य में एक युवती नर्तकी की सोने की मूर्ति बना कर खड़ी की गई थी। खेद है कि इस मण्डप की केवल कथा ही शेष रह गई। अब वह स्थान नष्ट हो गया है। हाल ही में विट्ठलस्वामी-मन्दिर में एक पत्थर का सिंहासन मिला है जिस पर गाने वालों, नाचने वालों और बाजा बजाने वालों की आकृतियाँ खुदी हैं। सम्भवतः राजा इसी पर बैठता था। इन सब के वर्णन करने का सारांश यही है कि राजा नृत्य में अधिक दिलचस्पी रखता था। गाने के साथ नाचने का कार्य अच्छे ढंग पर चलता था। हजाराराम मन्दिर की दीवारों पर नर्तकों की मूर्त्तियां इस कथन की पुष्टि करती हैं।

अभिनय

संगीत के साथ नाटक का भी इस काल में प्रचार था। समय-समय पर राज्य में नाटक हुआ करते थे। इसके लिए नाट्यशालायें तैयार की गई थीं। रंगस्थल के नाम से कई लेखों में इसका उल्लेख पाया जाता है[१]। मंदिरों में नाटक खेला जाता था अतएव जनता नाटक की कला से प्रेम रखती थी[२]।

अभिनयकर्ता विजयनगर से दूसरे स्थानों पर भी नाटक खेलने जाया करते थे। मल्लिकार्जुन के समय में गंगाधर नामक व्यक्ति ने 'गंगादास 'प्रताप-विलासम्' नामक ग्रंथ की रचना की। उसमें यह वर्णन आता है कि

१ एपि० कर० भा० ११ पृ० ३६

२ सा० इ० इ० भा० ३ पृ० २६०

विजयनगर के नाटक खेलने वाले अन्य शासक के पास भेजे गये थे। इसका कारण यह था कि वहां के राजा ने एक नाटक लिखा था जिसका अभिनय करने के लिए विजयनगर से अभिनयकर्ता निमन्त्रित किये गये थे[1]। सालुव नरसिंह के शासन काल में ज्योतिरीश्वर ने 'धूर्त-समागम' नामक प्रहसन का अभिनय किया था। कृष्णदेव राय ने भी 'जाम्बवती-कल्याण' नामक नाटक की रचना की थी। वह वसंत के उत्सव पर जनता के सम्मुख खेला गया था[2]। इससे यह प्रकट होता है कि राजा तथा प्रजा नाटक में विशेष प्रेम रखती थी। प्रांतीय नायकों के यहां भी नाट्य-शाला तैयार की गई थीं। 'रघुनाथाभ्युदयम्' में वर्णन मिलता है कि तंजौर के शासक विजयराघव नायक ने नाट्यशाला तैयार कराई थी[3]। इकेरी के नायक ने भी अभिनय के लिए 'सुन्दर-शाला' का निर्माण कराया था। अतएव लेखों तथा साहित्यिक विवरण के आधार पर यह ज्ञात होता है कि केन्द्रीय तथा प्रांतीय राजधानियों में नाटक खेलने का प्रबंध था तथा नाट्य शालायें वर्तमान थीं। पात्र-गण अपने कला-पूर्ण अभिनय से सब का मनोरञ्जन किया करते थे।

---

१ सोर्सेज़ आफ विजयनगर हिस्ट्री पृ० ६६

२ सोर्सेज़ पृ० १४२। ३ सोर्सेज़ पृ० २६५

: १३ :

विजयनगर की महत्ता

गत पृष्ठों में विजयनगर-साम्राज्य के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास का विवेचन किया गया है। विभिन्न ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा राजाओं के शासन तथा तत्कालीन सभ्यता का वर्णन हो चुका है। इस संबंध में यही बतलाना शेष है कि मध्ययुग के भारतीय सम्राटों में विजयनगर शासकों को क्यों विशेष महत्ता दी जाती है तथा इनका ऐतिहासिक महत्त्व क्या है? सर्व प्रथम इस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि दक्षिण भारत में कोई भी ऐसा राजा अथवा हिन्दू राज-वंश न था जिसकी समता विजयनगर से की जाय। मध्य-युग में केवल यही राज्य था जिसने हिन्दू-गौरव की रक्षा की। इस काल में हिन्दू-संस्कृति की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई। उत्तरी भारत में जब पठान सुलतान निर्विघ्न अपना राज्य बढ़ा रहे थे, उस समय दक्षिण में मुसलमान बहमनी शासकों को पराक्रमी विजयनगर राजाओं साथ संघर्ष में अपना समय बिताना पड़ता था। प्राचीन भारत की सारी संस्कृति को मध्ययुग में सुरक्षित रखने का श्रेय विजयनगर सम्राटों को ही है। मुगल बादशाहों के अभ्युदय से पूर्व विजयनगर का ह्रास प्रारम्भ हो गया था। जब दक्षिण-भारत में उनका राज्य फैला तो कोई भी हिन्दू-शासक (शिवाजी के अतिरिक्त) उनके मार्ग में बाधक न हो सका। महाराष्ट्र में शिवाजी ने विजयनगर के बाद हिन्दू-साम्राज्य' को स्थापित किया था। पर यह अत्युक्ति न होगी कि महाराज शिवाजी के मार्ग को विजयनगर सम्राटों ने सरल बना दिया था। तालकोट के युद्ध के बाद बहमनी सुल्तानों की प्रधानता हो गई। हिन्दू जनता त्रस्त हो गई थी। वह ऐसे नेता की खोज में थी जो पुनः देश में हिन्दू-सत्ता को स्थापित कर सके। यही कारण है कि शिवाजी को

चारो तरफ से सहायता मिलने लगी। दक्षिण की हिन्दू जनता के हृदय में विजयनगर सम्राटों ने पर्याप्त मात्रा में आर्य संस्कृति के प्रति प्रेम पैदा कर दिया था। यद्यपि वे सुल्तानों के शासन में, समय के फेर से मौन बने बैठे थे, पर उनकी रगों में आर्य-संस्कृति का रुधिर वर्तमान था। शिवाजी की साम्राज्य स्थापना के उद्योग से उनको सहारा मिल गया और पुनः हिन्दू-साम्राज्य की भावना जाग उठी। इसीलिए यह कहा गया है कि पूर्वगामी विजयनगर शासक शिवाजी के पथ-प्रदर्शक थे।

यों तो दक्षिण भारत में मुसलमानों का आवागमन बहुत पहले से प्रारम्भ हो गया था परन्तु मुगल बादशाहों के अतिरिक्त कोई भी सुल्तान वहाँ अपना साम्राज्य स्थापित न कर सका। दक्षिण-भारत का इतिहास यह बतलाता है कि मध्य-युग में मुगलों से पूर्व विजयनगर की प्रधानता थी। आठवीं शताब्दी के पश्चात् हिन्दू-सभ्यता तथा संस्कृति का केन्द्र उत्तर से हटकर दक्षिण भारत में चला आया। इसी भाग में प्रायः सभी महापुरुषों का जन्म (आविर्भाव) हुआ। शङ्कर और रामानुज आदि दक्खिन में ही पैदा हुए। तुकाराम और रामदास ने धर्म का प्रचार दक्षिण में ही किया। इस सम्बन्ध में यह भी कहना न्याय-सङ्गत प्रतीत होता है कि विजयनगर के हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना विन्ध्य के दक्षिण में हुई और आर्य-संस्कृति के रक्षक राजा कृष्णदेवराय विजयनगर में ही शासन करते थे। सुदूर मदुरा में अरब वालों का राज्य था। विन्ध्य के दक्षिण में बहमनी सुल्तान राज्य करते थे। परन्तु इस बीच में स्थित रह कर हिन्दू धर्म की रक्षा का महान् भार विजयनगर सम्राटों पर ही था। प्राचीन-भारत के शासक गुप्त-सम्राटों के सदृश विजयनगर राजाओं ने भारतीय-संस्कृति की सर्वाङ्गीण उन्नति की। इस प्रकार इन तीन सौ वर्षों के सुशासन में इन सम्राटों ने दक्षिण-भारत में मुसलमानों के पैर नहीं जमने दिये। इन सब बातों की विवेचना यही बतलाती है कि विजयनगर साम्राज्य का भारतीय-इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी ऐतिहासिक महत्ता का अनुमान उसके प्रधान कार्यों से किया जा सकता है।

विजयनगर-साम्राटों ने प्राचीन-भारतीय-शैली को अपनाया। उनका सारा शासन आदर्श कार्यों से भरा पड़ा है। विजयनगर का शासन-प्रबंध एक निजी विशेषता रखता है। यह कहा जा चुका है कि इन तीन सौ वर्षों में चार विभिन्न वंशों ने राज्य किया। एक वंश के अन्त होने पर दूसरे वंश का शासक शासन की बागडोर अपने हाथ में लेता गया। परन्तु सब से विचित्र बात यह है कि किसी वंश के राजा ने पूर्वगामी राज-वंश को निर्मूल करने का कभी विचार तक नहीं किया। यहां तक कि उनके रहने का प्रबन्ध स्थानापन्न राजा ही करते रहे। उनका मुख्य ध्येय यही रहता था कि साम्राज्य की अवनति न होवे तथा शासन-प्रबंध में बुराई न आये। नरसिंह सालुव ने संगम-वंश के हाथों से विजयनगर की अवनति न होने दी। प्रभाव-शाली होने के कारण अच्युत के स्थान पर रामराय ने शासन को अपने हाथों में ले लिया। इस प्रकार शक्ति-हीन शासक के स्थान पर प्रतापी व्यक्ति शासन करने लगता था। यदि राजनैतिक सिद्धान्त को लेकर विचार किया जाय तो विजयनगर के चारों वंशों के राजाओं का केवल यही ध्येय था कि साम्राज्य का शासन आदर्श ढंग से किया जाय। इस कार्य में प्रजा भी राजा का साथ देती थी। बहमनी सुल्तानों के आक्रमण को रोकने का पूरा भार प्रजा पर था। हिन्दू सैनिकों ने अन्य लोगों से रण-कौशल को सीख कर राजा की सहायता की।

आदर्श-शासन

अन्त में विजयनगर की सेना के बारे में कुछ कहना आवश्यक ज्ञात होता है। सेना में अनेक विभाग थे। सबका संचालन पृथक्-पृथक् होता था। लाखों की सेना सदा तैयार रहती थी। उस समय मुग़ल सम्राट् के सिवा किसी कें पास ऐसी विशल सेना न थी। आक्रमण के समय पड़ाव एक नगर बन जाता था। पेई ने इसका वर्णन सुन्दर शब्दों में कियां है।

विजयनगर के शासकों ने प्रजा के सुख तथा शांति के लिए सब वस्तुओं का प्रबंध किया था। प्रजा के इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखों

का सदा ध्यान रक्खा जाता था। विजयनगर के राजाओं ने वैदिक मार्ग की स्थापना की। स्वधर्म तथा स्वभाषा की नीति निर्धारित की। इनके शासन में प्रजा की नसों में आर्य-संस्कृति का रुधिर बहता था। अतएव सब ने आर्य-सभ्यता की रक्षा की। विजयनगर नरेशों ने देववाणी (संस्कृत) तथा मातृभाषा तेलुगु को अपनाया जिसके कारण तत्कालीन लेख तथा साहित्यिक ग्रंथ इन्हीं भाषाओं में लिखे गये। समाज का कोई भी ऐसा अग न था जिस पर विजयनगर के शासकों का ध्यान न रहा हो। ईश्वर के भक्तों से लेकर साधारण मनुष्यों तक के लिए मनोरंजन की सामग्री का आयोजन किया गया था। इस प्रकार इन राजाओं ने प्रत्येक प्रकार से प्रजा की उन्नति का मार्ग निर्धारित किया था। विजयनगर में सदा विदेशी यात्री आते रहे। उन्होंने साम्राज्य की हर एक बातों का वर्णन किया है और भूरि-भूरि प्रशंसा की है। संक्षेप में यही कहना पर्याप्त प्रतीत होता है कि विजयनगर के सुशासन में प्रजा की सर्वाङ्गीण श्री-वृद्धि हुई और उनका जीवन सुख व शांति के साथ व्यतीत होता रहा।

संस्कृति की रक्षा

संस्कृत में एक सुभाषित है कि 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र-चिन्ता प्रवर्तते' अर्थात् जब देश की रक्षा पूर्ण रूप से होती है तब शास्त्रों के अध्ययन में लोग प्रवृत्त होते हैं। शांत वातावरण में जनता साहित्य के कार्य में लीन होती है। यह कहावत विजयनगर राज्य में अक्षरशः चरितार्थ होती है। बुक्क तथा हरिहर ने विजयनगर में शांति स्थापित कर शास्त्र का चिन्तन आरम्भ किया था। इस काल की एक विशेषता—जो प्राचीन काल में भी नहीं पाई जाती—यह है कि हरिहर के अनुरोध से आचार्य सायण ने वेदों पर भाष्य लिखे। इन्होंने अगम्य वेदार्थ को गम्य बनाया। वेद के ज्ञान को सब के लिए सुलभ बनाया। प्राचीन भारत में गुप्त सम्राटों का काल 'स्वर्ण-युग' माना जाता है, उस समय साहित्य की—विशेषतया संस्कृत की—असाधारण उन्नति हुई। उस काल में ऐसा कोई व्यक्ति न था जो

साहित्य की उन्नति

देव-वाणी को न जानता हो। यह कहा जाता है कि संस्कृत उस समय राष्ट्र-भाषा थी। साहित्य के ऐसे उन्नत-काल में भी वेदों पर टीका ग्रन्थ नहीं लिखे गये। इसके प्रतिकूल विजयनगर काल में वैदिक साहित्य पर अधिक ज़ोर दिया गया। सायण के वेद-भाष्य अभी तक प्रामाणिक माने जाते हैं। वेदभाष्यों की रचना करा कर विजयनगर के शासकों ने प्रशंसनीय कार्य किया। सायण के भ्राता माधवाचार्य ने इस काम में अधिक सहायता पहुंचाई। राजा स्वयं विद्वान् थे। विद्वानों का वे आदर करते थे। भारतीय इतिहास में ऐसा कोई काल विभाग नहीं है जिस समय वैदिक-साहित्य के भण्डार को इस प्रकार भरा गया हो अन्त में यही कहना पर्याप्त होगा कि विजयनगर के शासक इस क्षेत्र में भी किसी से पीछे न रहे।

धार्मिक-सहिष्णुता

भारतवर्ष धर्म के पालन में सदा अग्रसर रहा है। यहाँ के शासक एक ही समय में कई धर्मों को प्रोत्साहन दिया करते थे। उनकी इच्छा थी कि सभी धर्मों की वृद्धि हो। इस कारण वे धर्म-सहिष्णु कहे जाते थे। विजयनगर-काल में राजा शैव तथा वैष्णव मत को मानते थे। कुछ राजाओं ने शैव मत को अपनाया, तो किसी ने वैष्णव-धर्म को राजधर्म बनाया। इन राजाओं ने जैनियों को भी शरण दी। अपनी सेना में मुसलमानों की नियुक्ति की। राजधानी मे मसजिद् बनाने की आज्ञा दी तथा इसके लिए आर्थिक सहायता भी की। ईसाई लोग राज्य में सब जगह फैले हुए थे। स्थान-स्थान पर उन्होंने अपना केन्द्र बना लिया था। कई गिरजाघर बन गये थे। परन्तु विजयनगर के शासकों ने इसका विरोध नहीं किया। एक बार जैनियों के झगड़े को नीति-पूर्वक सुलझा दिया था। राज्य में जैन, ईसाई, मुसलमान आर्य-धर्मावलम्बियों के साथ शांति पूर्वक रहते थे। यह किसी को कहने का अवसर न मिलता था कि अमुक राजा शैव या वैष्णव होकर अन्य धर्मावलम्बियों पर अत्याचार करता है। शासक के सामने सभी बराबर थे। आर्य-संस्कृति के संरक्षक के नाते विजयनगर के सम्राट अपने धार्मिक कृत्य में सदा संलग्न रहते थे। वर्षा में समय-समय पर उत्सव मनाया

जाता था। महानवमी का उत्सव सर्व प्रधान माना जाता था। उस समय राजा यज्ञ करता था और हवन में हीरे, मोती आदि मूल्यवान् द्रव्यों की आहुति दी जाती थी। पेई ने इस कथन की पुष्टि की है[1]।

मध्ययुग के आरम्भ में दक्षिण-भारत ही व्यापार का केन्द्र हो गया था। यों तो अरब वाले भारत के पश्चिमी किनारे पर व्यापार काफी समय से करते थे परन्तु योरप से पुर्त्तगालियों के आ जाने से प्रतिस्पर्धा बढ़ गई। इनकी प्रतियोगिता का फल बुरा हुआ। पुर्तगाली अरब वालों को दबाने में और उनके व्यापार को नष्ट करने में लगे थे। भारत का व्यापार कुछ शिथिल पड़ गया था। विदेशी लोग अपना जहाज लेकर समुद्र तट पर आने लगे। वास्कोडिगामा ने अफ्रीका होकर भारत में आने का मार्ग ढूंढ़ निकाला था। अतएव पुर्तगाली यहाँ व्यापार करने में तन मन धन से लग गये। गोआ में रहकर ये धीरे-धीरे फैलने लगे। अरब-सागर में इनका बोल-बाला हो गया। उन्होंने अपना राजदूत विजयनगर में भेजा। शासक स्वयं व्यापार के महत्त्व को समझता था। अतः दोनों में व्यापारिक सन्धि हुई जो अन्तर्राष्ट्रीय ढंग की पहली संधि कही जा सकती है। भारत में इस प्रकार की यह पहली सन्धि थी। रामराय का दूत गोआ गया और उसका स्वागत वहा के गवर्नर ने किया। अरब वालों की जगह पर पुर्तगाली ही प्रधान व्यापारी हो गये। लंका को भी जीतकर विजयनगर-सम्राटों ने अन्तर-राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित किया था। इस प्रकार दोनों की संस्कृति का आदान प्रदान हुआ। बृहत्तर भारत में हिन्दू-सभ्यता के साथ ही विजयनगर के शासकों का प्रभाव व्याप्त हो गया। विजयनगर शासकों का विदेशी राज-प्रतिनिधि से सन्धि करने का यह पहला अवसर था। यह उनकी दूर-दर्शिता थी। आगे चल कर मुगल सम्राटों ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने तथा देशी व्यापार की उन्नति के लिए

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

---

१ सेवेल—ए फार० इम्पा० पृ० २६७

योरप वालों को भारत में व्यापार की करने की अनुमति दी। सम्भवतः विजयनगर तथा पुर्तगालियों की व्यापारिक सन्धि ने उनके लिए मार्ग-दर्शक का काम किया हो।

भारतीय इतिहास में किसी राजवंश की महानता तब तक नहीं आंकी जा सकती जब तक कि तत्कालीन कला की उन्नति का विवरण न उपस्थित किया जाय। इसी बात को ध्यान में रख कर विजयनगर कालीन कला के विषय में दो शब्द कहना आवश्यक हो जाता है। भारतीय कला-शैली के दो विभाग किये गये हैं। पहली उत्तर शैली या आर्य शैली और दूसरी दक्षिण-भारतीय अथवा द्राविड़ शैली। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि विजयनगर-कालीन कला भी अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण समझी जाती थी। इसकी अपनी पृथक् शैली हो गई थी। विजयनगर के भवनों में यही शैली अधिक प्रयोग की गई है। इस समय कला की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई। विजयनगर की कला मध्य-कालीन कला का प्रतिनिधि स्वरूप है। वास्तुकला की उत्तमता का अनु-मान हजाराराम तथा विट्ठल स्वामी के मन्दिरों के देखने से किया जा सकता है। इस कला की विशेषता यह है कि विजयनगर शैली में भाव और सामग्री का संमिश्रण पाया जाता है। इस शैली की सुन्दरता पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। विजयनगर में दिव्य राजमहलों के निर्माण के कारण यह एशिया में एक विशिष्ट नगर समझा जाता था। यहाँ के मन्दिर, दुर्ग तथा राजमहल देखने योग्य थे। तक्षण-कला में अलङ्करण की प्रधानता थी। मूर्तियां विशाल बनाई जाती थीं जिससे वे चित्त को आकर्षित कर सकें। उस समय के सुन्दर चित्र तत्कालीन कलाकारों की निपुणता और हस्त-कुशलता का परिचय देते हैं। स्यात् सङ्गीत की उन्नति तो किसी काल में भी ऐसी नहीं हुई थी। कृष्णदेव राय ने नृत्य-मण्डप का निर्माण कराया था और उसने एक युवती नर्तकी की सोने की प्रतिमा बनाकर मानों नृत्य को सशरीर खड़ा कर दिया था।

कला की वृद्धि

गत पृष्ठों में विजयनगर साम्राज्य के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक

इतिहास प्रस्तुत करने के बाद, भारतीय इतिहास में इसकी महत्ता को संक्षेप में समझाने का प्रयत्न किया गया है। सच तो यह है कि इतने स्वल्प स्थान में इस साम्राज्य की महत्ता का प्रतिपादन हो ही नहीं सकता। जब भारत के सुदूर दक्षिण में विधर्मी मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे, जब हिन्दू-राज्य तथा धर्म को समूल नष्ट करने के लिए यवनों की विजयवाहिनी 'दक्षिण की मथुरा' मदुरा तक पहुँच गई थी, जब बहमनी रियासतें छोटे-छोटे हिन्दू-शासकों को निगलने के लिए तुली बैठी थीं ऐसे सङ्कट के समय में हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना कर विधर्मियों को मार भगाना विजयनगर-शासकों का ही काम था। स्थिति के विपरीत होने पर भी लगातार तीन सौ वर्षों तक दक्षिण भारत में हिन्दू-साम्राज्य को जीवित रखने का श्रेय इन्हीं राजाओं को है। यदि विजयनगर के शासक न होते तो कौन कह सकता है कि दक्षिण भारत की क्या दुर्दशा हुई होती? ये राजा परम वैष्णव थे तथा हिन्दू-संस्कृति के पोषक और रक्षक थे। इनके समय में संस्कृत, कन्नड़ तथा तेलुगु साहित्य की अलौकिक उन्नति हुई। सायण ने तो अपना वेद-भाष्य लिखकर इस काल को सदा के लिए अमर बना दिया है। माधवाचार्य ने वेदान्त-दर्शन पर अनेक ग्रन्थों की रचना कर जनता को शाश्वतिक शान्ति का मार्ग दिखलाया। इन दोनों भाइयों की जोड़ी अपूर्व थी। एक उद्भट वैदिक था तो दूसरा गंभीर वेदान्ती। इनके अतिरिक्त कन्नड़ तथा तेलुगु भाषा के कवियों ने इस काल में सरस कविता कर जनता को आनन्द सागर मे डुबो दिया।

उपसंहार

इस समय में ललित-कला की भी अपूर्व उन्नति हुई। क्या वास्तु-कला, क्या तक्षण कला तथा क्या चित्रकला सभी अपनी अपूर्व कलायें दिखला रही हैं। विजयनगर की राजधानी में बने हुए विशाल राजमहल तथा दुर्ग विजयनगर की वास्तु-कला के अनुपम उदाहरण हैं। इन सुन्दर राजमहलों को देखकर विदेशी यात्री भी दंग रह जाते थे और मुक्त कण्ठ से इनकी सुन्दरता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। तक्षण-कला में

विजयनगर के कारीगर अपना सानी नहीं रखते थे। उनके द्वारा बनाई गई मूर्तियों में वह सजीवता पाई जाती है जिसका दर्शन अन्यत्र होना कठिन है। कृष्णदेवराय की धातुमूर्ति उस समय की तक्षण-कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। इन मूर्तियों में अंगों का अनुपात तथा वस्त्र और आभूषणों की बनावट इतनी सुन्दर हुई है कि मन मुग्ध हो जाता है। विजय-नगर-कालीन चित्रकला भी अपनी अलग विशेषता रखती है। इस काल की चित्रकला में अलंकरण की विशेषता पाई जाती है जिससे वास्तविक भाव दबा सा जान पड़ता है। यह हमारे लिये बड़े दुर्भाग्य की बात है कि चित्रकला की ये अलौकिक कृतियाँ आज केनवास या चित्रपट पर उपलब्ध नहीं है बल्कि हम्पी के उन खंडहरों में मिलती हैं जो अपनी सत्ता को मिटाने के लिए काल की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन रमणीय चित्रों को देखकर तत्कालीन चित्रकारों की तूलिका को बरबस चूम लेने का जी करता है। इस काल में धार्मिक-सहिष्णुता भी कुछ कम न थी। राजा शैव या वैष्णव मत को मानते थे परन्तु जैन, ईसाई तथा मुसलमान सभी धर्मों के अनुयायियों के साथ समान व्यवहार करते थे।

इस प्रकार विजयनगर-राज्य हिन्दू-साम्राज्य तथा हिन्दू-संस्कृति का रक्षक था। मध्ययुग में यह सबसे विशाल हिन्दू-साम्राज्य था। अतः गुप्त साम्राज्य से यदि इसकी तुलना की जाय तो कुछ अनुचित न होगा। अन्त में पुण्यश्लोक, आर्य-संस्कृति के प्रतिष्ठापक इन राजाओं का अभिवादन करते हुए कविराज धोयी के शब्दों में हम यही प्रार्थना करते हैं कि:—

"यावच्छम्भुर्वहति गिरिजासंविभक्तं शरीरं,
यावज्जैत्रं कलयति धनुः कौसुमं पुष्पकेतुः।
यावत् राधारमणतरुणीकेलिसाक्षी कदम्बः,
तावज्जीयात् विजयनगरीराजकानां विलासः॥

परिशिष्ट

(१) दक्षिण-भारत के नायक नरेश

विजयनगर के शासकों के इतिहास को जानने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि उनके आधीनस्थ नायकों के विषय में भी कुछ परिचय दिया जाय। दक्षिण-भारत में विजयनगर साम्राज्य के अन्तर्गत कई प्रांत के अधिपति थे जिनको नायक कहा जाता था। शासन की सुविधा के लिए विजयनगर नरेशों ने प्रांतों में नायक-शासन स्थापित किया था। अन्य राजाओं के राज्य को जीत कर उस विजित भू-भाग का प्रबंध एक नायक के आधीन कर दिया जाता था। नायक सदा केन्द्रीय शासन की आज्ञानुसार काम करते थे। परन्तु यह आवश्यक न था कि नायक शासक केन्द्रीय-सरकार की आज्ञा से दान आदि दें अथवा भवन तथा मंदिर आदि का निर्माण विजयनगर राजा के कथनानुसार करें। नायक बहुत से मामलों में स्वतंत्र थे। अतः यही कहा जा सकता है कि प्राचीन 'भुक्ति-शासक (प्रान्त-अधिपति) की तरह, ये नायक शासन करते थे। किसी-किसी विद्वान् का मत है कि नायक अपने प्रांत में पूर्ण स्वतंत्र थे। परन्तु यह बात माननीय नहीं है। आधी स्वतंत्रता उनको नायक होते ही मिल जाती थी। विजयनगर के नायकों में मदुरा, तंजौर जिञ्जी तथा इक्केरी के नायक मुख्य थे। सोलहवीं शताब्दी के मध्य में तालिकोट के महायुद्ध के बाद नायक नरेश धीरे धीरे स्वतंत्रता की घोषणा करने लगे। उनको विजयनगर राजाओं ने अपनी शक्ति से वश में रखने का प्रयत्न किया, परन्तु नायकों ने दक्षिण-भारत के सुल्तानों से मदद ली। इन मुसल्मान सुल्तानों ने पहले तो नायकों को सहायता दी परन्तु विजयनगर की शक्ति क्षीण हो जाने पर इन्होंने समय देख कर इन्हीं नायकों को ही परास्त किया और इनके राज्य को अपने शासन में सम्मिलित कर लिया।

प्राचीन समय में मदुरा का प्रांत पांड्य लोगों के हाथ में रहा। ईसवी सन् के बाद से भिन्न-भिन्न वंश के हिन्दू-नरेश वहां राज्य करते थे।

(क) मदुरा के नायक

उत्तर-भरत का प्रभाव वहां पर्याप्त समय तक न रहा। चौदहवीं सदी में मलिक काफूर ने इस प्रांत पर आक्रमण करके वीर पांड्य को परास्त किया था। काफूर के चले जाने के पश्चात् मुसलमानी सेना वहां रह गई थी। होयसल-वंश के राजा वीर बल्लाल ने मदुरा पर चढ़ाई की और उसको परास्त किया। विजयनगर के राजा बुक्क ने भी बल्लाल के मार्ग का अनुसरण किया। उसके पुत्र कम्पण ने मुसलमानों को वहां से भगा दिया और सारे भाग को अपने राज्य में मिला लिया। गंगदेवी ने 'मधुरा-विजयम्' में इसका पूरा वर्णन किया है। पांड्य वंश के शासक नायक बनाये गये। सोलहवीं शताब्दी के मध्य में चोल देश के राजा वीर शेखर ने मदुरा के नायक को हटा कर शासन अपने हाथ में ले लिया। इससे पूर्व बहुत समय तक पांड्य लोग विजय-नगर के अधीन होकर राज्य करते रहे। वीर शेखर के आक्रमण के कारण विजयनगर के राजा अच्युत राय को बड़ा क्रोध आया अतएव उसने अपने सेनापति को भेज कर पांड्य शासन का अन्त कर दिया। अच्युत के प्रतिनिधि विश्वनाथ को मदुरा का प्रबंध सौंपा गया और चन्द्र-शेखर पांड्य ने इच्छा-पूर्वक अपना शासन विश्वनाथ के हाथों में दे दिया। इस प्रकार विश्वनाथ मदुरा प्रान्त का राजा बन गया। पाड्य में इसका वर्णन मिलता है कि विश्वनाथ ने दो वर्षों तक मदुरा में शासन किया। परन्तु 'कर्नाटक के शासक' नामक इतिहास ग्रन्थ में उसका राज्य-काल छब्बीस वर्ष उल्लिखित है। यह कहा जा सकता है कि विजयनगर के राजा अच्युत राय ने विश्वनाथ को योग्य समझ कर नायक नियुक्त किया था। विश्वनाथ शासन-सम्बन्धी कार्य में बड़ा चतुर था। उसने अरिअन्नमुंडली नामक व्यक्ति को अपना मन्त्री बनाया। इस मन्त्री ने दक्षिण-भारत में रक्षा की एक नई पद्धति निकाली जिसे 'पालीगर' प्रणाली कहते हैं। इसके अनुसार देश को अनेक भागों में बांट दिया गया था।

इस प्रणाली को 'पालीगर' कहते थे और शासक 'पलैयम' नाम से प्रसिद्ध होता था। प्रत्येक 'पलैयम' नियमतः वीर योद्धा हुआ करता था। रक्षा के निमित्त सेना का सब प्रबन्ध इसी के ऊपर रहता था। जब आवश्यकता पड़ती तो मदुरा के विशाल दुर्ग की रक्षा इसी को करनी पड़ती थी। अतः 'पालिगर' पद्धत्ति से देश की रक्षा सरल हो गई थी। मदुरा की रक्षा के लिए नायक को परेशानी नहीं रहती थी। विश्वनाथ नायक एक प्रबल शासक समझा जाता था। वेंकट द्वितीय के ताम्रपत्र में वर्णन मिलता है कि मदुरा के नायक वंश-परम्परा से विजयनगर के प्रतिनिधि होते थे। विश्वनाथ नायक ने केन्द्रीय सरकार की राज्य-सीमा बढ़ाने में अत्यधिक सहायता की थी। रामराय के समय में ट्रावनकोर के शासक ने विद्रोह किया था। राजा के पुत्र विट्ठल के साथ में विश्वनाथ ने ट्रावनकोर पर आक्रमण किया और वहां के राजा को परास्त किया। विजयनगर का प्रभुत्व वहां स्थापित कर, ट्रावनकोर नरेश को वार्षिक कर देने के लिए बाधित किया गया। वहां के शासक केरल वर्मा ने कर देना स्वीकार कर लिया और विश्वनाथ नायक की संरक्षता में रहने लगा। इस प्रकार विश्वनाथ समस्त चोल और पांड्य प्रदेशों का स्वामी बन गया। पालिगर प्रणाली से उसे बड़ी सुविधा थी और सुचारु रूप से वह शासन करता रहा।

उसके पश्चात् कृष्णप्पा नायक सन् १५६४–७२ ई० तक शासन करता रहा। वह विजयनगर का आज्ञापालक तथा स्वामिभक्त नायक था। उसने कई मन्दिर बनवाये तथा नगर बसाये। उसके पुत्र वीरप्पा के समय में मदुरा में अशान्ति रही। लेखों तथा विदेशी यात्रियों के वर्णन से पता चलता है कि वीरप्पा नायक ने केन्द्रीय सरकार का विरोध किया तथा विद्रोह खड़ा करके विजयनगर सम्राट् को कर देना बंद कर दिया। विजयनगर का सम्राट् वेंकट बहुत क्रोधित हुआ और उसने वीरप्पा को दण्ड देने की प्रतिज्ञा की। च्चिक्कराय-वंशावली में वर्णन मिलता है कि वेंकटराय ने मदुरा को एक बड़ी सेना लेकर घेर लिया था। फ्रांसीसी

यात्री ने भी ऐसा ही लिखा है कि वीरप्पा को विजयनगर की सेना ने परास्त कर दिया। इससे प्रकट होता है कि वेङ्कटराय ने मदुरा के विद्रोह को शांत कर दिया और विजयनगर का प्रभुत्व पुनः स्थापित हो गया। वीरप्पा को हार माननी पड़ी और उसने वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। तत्कालीन लेखों[1] से ज्ञात होता है कि सन् १५६५ ई० (वीरप्पा की मृत्यु) तक वेंकट का प्रभुत्व मदुरा पर बना रहा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वीरप्पा ने अपनी शक्ति के घमंड में विजयनगर के प्रति विद्रोह किया था, परन्तु थोड़े ही समय में यह दबा दिया गया। वीरप्पा को लाचार होकर विजयनगर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। वेंकट राय इसी आक्रमण के सिलसिले में तंजोर भी गया था। वहाँ का नायक शिवप्पा बड़ा स्वामिभक्त था। अतः वेंकट राय को युद्ध नहीं करना पड़ा। सन् १५६५ ई० में वीरप्पा की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र विश्वप्पा मदुरा का नायक नियुक्त किया गया। परन्तु इसका शासन सम्भवतः कुछ ही महीनों के लिए रहा। इसका प्रमाण यह है कि सन् १५६६ ई० के एक लेख में विश्वप्पा का छोटा भाई कुमार कृष्णप्पा द्वितीय मदुरा का नायक कहा गया है। सन् १५६७ ई० के एक ताम्र-पत्र में कुमार कृष्णप्पा पांड्य का राजा कहा गया है। कुमार कृष्णप्पा के समय की विशेष घटना उस वंश के मंत्री आर्यनाथ की मृत्यु मानी जाती है। वह कई नायकों के समय में ३८ वर्षों तक मंत्री तथा सेनापति का काम योग्यता से करता रहा। वास्तव में राज्य का सारा अधिकार उसी के हाथ में था। कुमार कृष्णप्पा बड़ा दानी नायक था। उसने रथ यात्रा के अवसर पर कई ग्रामों, वाटिकाओं तथा नाना प्रकार के आभूषणों को दान में दिया था। उसने मंदिरों में दीपक का प्रबंध करवाया। वह तुला-दान करके ब्राह्मणों को

---

१ रंगाचार्य भा० २ पृ० ११८६.

सोना बांटा करता था। उसका शासन सद्व्यवहार तथा दान के लिए प्रसिद्ध था।

इसके पश्चात् विश्वप्पा का पुत्र मुट्टू कृष्णप्पा मदुरा का शासक नियुक्त हुआ। पाण्ड्य इतिहास में वह पांड्य देश का राजा कहा गया है। मुट्टू कृष्णप्पा ने अपने राज्य की आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए तूतीकोरिन प्रांत में मछली के व्यापार करने वाले ईसाईयों से अधिक कर वसूल किया। लेखों में वर्णन आता है कि ईसाईयों को बाध्य होकर मदुरा के नायक को कर देना पड़ा। मुट्टू कृष्णप्पा बड़ा प्रभावशाली शासक था। इसने अपना राज्य कुमारी अन्तरीप तक विस्तृत किया था। उस भाग (मारव देश) में लंका के मछली मारने वाले लोग रहा करते थे। मुट्टू कृष्णप्पा ने मारव प्रांत में सेतुपति वंश की स्थापना की। ये लोग रामेश्वरम् नगर के रहने वाले थे। रामेश्वरम् के यात्रियों को कष्ट हुआ करता था। सेतुपति वंश के संस्थापक मुट्टू कृष्णप्पा ने इसके निवारण करने का विचार किया। उसी की आज्ञानुसार मदुरा-नायकों के गुरु को सेतुपति शासक ने रामेश्वरम् की यात्रा कराई और इन्हें सकुशल मदुरा पहुँचा दिया। इस कार्य से मुट्टू अत्यन्त प्रसन्न हुआ और सेतुपति को भूमि वस्त्र तथा आभूषण प्रदान किया। सेतुपति उदियन ने अन्य लोगों को परास्त कर मदुरा के प्रभुत्त्व को बढ़ाया और उनको कर देने के लिए बाध्य किया। मुट्टू कृष्णप्पा ने उदियन को अपना प्रतिनिधि (वायसराय) घोषित कर दिया। वह जहां से कर वसूल करता था वहाँ के कर का आधा भाग मदुरा के नायक को भेज देता था और आधा स्वयं रख लेता था। उदियन ने रामेश्वरम् में एक दुर्ग बनवाया और राजा की तरह शासन करने लगा। उसने छः मंत्री नियुक्त किये और रामेश्वरम् के पवित्र नगर में 'यज्ञ' के लिए दान दिये।

मुट्टू-कृष्णप्पा

मदुरा में मुट्टू कृष्णप्पा के बाद तिरुमल नायक ने राज्य-प्रबंध अपने-

अपने हाथ में लिया। पर उसके लेखों में विजयनगर के राजाओं का उल्लेख नहीं मिलता। इससे प्रकट होता है कि सन् १६२३ ई० में तिरुमल ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। इसका कारण यह था कि तिरुमल का सहायक रमापैय्या नायक सेनापति का काम कर रहा था।

तिरुमल नायक

उसकी सहायता से तथा विजयनगर राज्य की दुर्बलता के कारण तिरुमल ने मदुरा को स्वतंत्र राज्य बना दिया। जैसा पहले कहा जा चुका है कि सोलहवीं सदी के मध्य भाग में बहमनी के सुल्तानों तथा विजयनगर के बीच तालिकोट के स्थान पर महान् युद्ध हुआ था। उसी युद्ध के पश्चात् विजयनगर का पतन आरम्भ हो गया। यही कारण था कि शनैः शनैः समस्त नायक-गण स्वतन्त्र हो गये। मदुरा का तिरुमल नायक ही सर्व प्रथम प्रांत-अधिपति था जो स्वतंत्र हुआ। इसके बाद अन्य नायक भी स्वतंत्रता की घोषणा करने लगे। तिरुमल का राज्य बहुत विस्तृत था और मदुरा, रामनद, तिनेवेली, कोयम्बटूर, सलेम, त्रिचनापल्ली तथा ट्रावनकोर के कुछ भाग उसमें सम्मिलित थे। विजयनगर के राजा तिरुमल ने श्रीरंग के विरुद्ध जिंजी के नायक की सहायता की। सुल्तानों की सहायता से उसे बचाने का प्रयत्न किया परन्तु वह असफल रहा। इस राजा ने मदुरा में विशाल मन्दिर तैयार कराये जिससे इसका नाम अमर हो गया है। मदुरा के नायकों के द्वारा निर्मित भवन तथा मन्दिर भारतबर्ष की स्थापत्य-कला में विशेष स्थान रखते हैं। उनकी निर्माणशैली स्वतंत्र समझी जाती है। बर्तमान समय में भी इन भवनों को देखने लिए दूर-दूर से लोग आते हैं। विदेशियों ने इन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ये भारत की स्थापत्य-कला के जीते जागते उदाहरण हैं। तिरुमल के पश्चात् उसका पुत्र मदुरा का राजा हुआ परन्तु उसके समय की कोई विशेष घटना उल्लेखनीय नहीं है।

उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके वंशज मुट्टु वीरप्पा का शासन मदुरा

में था, परन्तु नाबालिग होने के कारण राज्य का कार्य-भार रानी मंगमल्ल के हाथों में रहा। मुट्टू वीरप्पा की माता रानी मंगमल्ल बड़े शान के साथ कई वर्षों (सन् १६८६ ई० से १७०६ ई०) तक शासन-कार्य करती रही। दक्षिण-भारत के लोग उसका नाम बड़े गर्व के साथ स्मरण करते हैं। उसने अपने समय में राज्य में अनेक भवन तथा मन्दिर निर्माण कराये। प्रजा के आने जाने की सुविधा के लिए राजमार्ग (सड़कें) तैयार कराईं। कृषि की उन्नति के निमित्त तालाब खुदवाये। ऐसा कहा जाता है कि तिरुमल के समय में जो कमी थी उसकी पूर्ति रानी ने की। मदुरा अत्यन्त वैभव पूर्ण और सुन्दर स्थान हो गया।

रानी मंगमल्ल

इतना होते हुए भी रानी मङ्गमल्ल के समय से ही राज्य की अवनति होने लगी। मुसलमानों की शक्ति दक्षिण-भारत में बढ़ती जा रही थी। विजयनगर के पतन के बाद सुल्तानों की आंखें नायक-रियासतों पर पड़ीं। ज्यों ही मुसलमान दक्षिण की ओर बढ़े, त्यों ही सारे नायक लोग धीरे-धीरे उनके अधीन हो गये। मैसूर-राज्य की शक्ति बढ़ती चली जा रही थी। इस राज्य के शक्तिशाली नरेशों ने नायक-राज्यों को मुसलमानों से छीन कर अपने कब्ज़े में कर लिया। विश्वनाथ नायक के समय में स्थापित 'पालिगर' प्रणाली का फल बुरा ही रहा। नायक लोग अपनी शक्ति स्थिर न रख सके। मदुरा के नायकों के अन्तिम काल में रानी मीनाक्षी का राज्य था। कर्नाटक के नबाब चान्दा साहब ने रानी मीनाक्षी को सन् १७३६ ई० में पकड़ कर कारागार में डाल दिया। फ्रांसीसियों की सहायता से चान्दा साहब मदुरा प्रांत का नबाब हो गया। इस प्रकार मदुरा के नायक राज्य का अन्त हो गया।

तंजौर का प्रांत सन् १५४१ ई० में विजयनगर-राज्य में मिला लिया गया। कहा जाता है कि कम्पण ने इस भाग को चोल राजा से छीनकर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था। शिवप्पा नायक ही सर्व प्रथम व्यक्ति था जिसके हाथों में विजयनगर राजा ने इस प्रांत का शासन-प्रबन्ध

दे दिया। शिवप्पा का विवाह अच्युत राय की बहन से हुआ था। अतः

(ख) तंजौर के नायक-शिवप्पा

तंजौर का राज्य इस नायक को स्त्रीधन (पत्नी की सम्पत्ति) के रूप में मिला और उसी समय से शिवप्पा को राजा से 'नायक' का पद मिला। शिवप्पा के शासन की विशेषता यह थी कि वह सार्वजनिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी लेता था। उसका राज्य काल प्रजा के हित में ही व्यतीत हुआ। इसने तंजौर में शिवगङ्गा नामक एक विशाल दुर्ग तैयार कराया। खेतों की सिंचाई के निमित्त इसने शहर से बाहर एक लम्बा चौड़ा तालाब बनवाया जिससे लोगों को पर्याप्त पानी मिल सके। तिरुवन्नमलाई में शिवप्पा ने एक मन्दिर निर्माण कराया, जो अत्यन्त दर्शनीय था। शैव होते हुए भी शिवप्पा में अन्य धर्मों के प्रति सम्मान तथा सहिष्णुता का भाव भरा था। मुसलमान फकीरों की जीविका-निर्वाह के लिए इसने जमीन का एक हिस्सा दान में दिया था। यही नहीं, शिवप्पा के समय में पुर्तगालियों से गहरी मित्रता थी। देश में विदेशी व्यापार करते थे। व्यापार की अत्यन्त उन्नति थी। शिवप्पा में धार्मिक सहिष्णुता थी। अतएव वह अन्य धर्मावलम्बियों की भी सहायता किया करता था। अपनी राजधानी में ईसाईयों को उसने दो गिरजाघर बनाने की आज्ञा प्रदान की और उन्हें कुछ आर्थिक सहायता भी दी। तंजौर में ईसाईयों के सुन्दर भवन थे। वे राज्य में शांतिपूर्वक रहा करते थे। शिवप्पा के शासन-काल में ईसाईयों को यह ज्ञात न हुआ कि वे किसी अन्य धर्मी राजा के राज्य में निवास करते हैं। नेगापट्टम् में ईसाईगों की बस्ती थी। वे बड़ी संख्या में वहां रहा करते थे।

शिवप्पा का उत्तराधिकारी अच्युत नायक था। सम्भवतः उसके लम्बे शासन-काल के पश्चात् इसने सन् १५७७ ई० मे नायक के पद को

अच्युत

सुशोभित किया। अच्युत के मत्री का नाम गोविन्द दीक्षित था। वह कन्नड़ ब्राह्मण था और बहुत बड़ा विद्वान् था। अच्युत भी विद्वानों का आश्रयदाता था और "बड़ा विद्या-

व्यसनी था। अच्युत नायक का शासन थोड़े समय के लिए रहा। उसके बाद उसका पुत्र रघुनाथ तंजौर का नायक हुआ। रघुनाथ ने विजयनगर राज्य से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। स्वतंत्र होकर तंजौर के नायकों ने राज्य बढ़ाने की इच्छा से अन्य राजाओं पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। बीजापुर के सुल्तान ने तंजोर पर आक्रमण कर दिया और विजय-लक्ष्मी उसी के हाथ आई। बाधित होकर नायकों ने बीजापुर के सुल्तान को कर देना स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप दोनों राज्यों में सन्धि हो गई; परन्तु तंजौर तथा मदुरा में बराबर विरोध चलता रहा। दोनों आपस में लड़ते रहे। यही कारण है कि बीजापुर के सुल्तान ने तंजोर को अधीनस्थ राज्य बना लिया। शिवाजी के पिता शाहजी ने सुल्तान की आज्ञानुसार तंजौर को अपनी जागीर बना ली। शाहजी के पश्चात् व्यानकोजी (शिवाजी के भ्राता) तंजौर पर शासन करते रहे। शिवाजी ने वहाँ चढ़ाई कर पिता की जागीर में से अपना भाग लिया। इस प्रकार १६७३ ई० के लगभग तंजौर में नायक शासन समाप्त हो गया और यह राज्य मरहठों के आधीन हो गया।

विजयनगर-राज्य में जिञ्जी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। यह प्रांत पलार नदी तक विस्तृत था। उत्तरी प्रांत होने के कारण विजयनगर नरेश सदा उसके शासन पर ध्यान रखते रहे। सदाशिव राय के शासनकाल (सन् १५४२–६७ ई०) में जिञ्जी की प्रधानता रही। उस प्रांत के शासन के लिए सदा योग्य नायक नियुक्त किये जाते थे। विजयनगर के राजाओं ने यहां एक अभेद्य दुर्ग बनवाया था, जिससे शत्रु उसे साधारणतया ध्वंस न कर सकें और दक्षिण में उनका प्रवेश न हो सके। सदाशिव राय के समय में जिंजी में किसी प्रकार का विद्रोह नहीं हुआ। परन्तु तालिकोट के युद्ध के बाद ही वहां विप्लव की अग्नि प्रज्वलित हो गई। जिंजी के नायकों ने विजयनगर की संरक्षता से पृथक् होकर स्वतंत्रता की घोषणा की। नाम मात्र के लिए ये केन्द्रीय शासन की आज्ञा का पालन करते रहे। सन् १६१४ ई० से वेंकटपति के शासन

(ग) जिञ्जी के नायक

काल ही में जिंजी के नायक पूर्णतया स्वाधीन हो गये थे। कुछ समय के पश्चात् विजयनगर शासक श्रीरंग ने पुनः अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए जिंजी पर चढ़ाई की, परन्तु इसका फल अच्छा न रहा। मदुरा के नायक तिरुमल ने भविष्य में युद्ध की आशंका से जिंजी की सहायता की ताकि उसका राज्य सुरक्षित रहे। विजयनगर के आक्रमण से जिंजी की रक्षा के लिए तिरुमल ने गोलकुण्डा के सुल्तान की सहायता मांगी। सुल्तान ने जिंजी को विजयनगर के आक्रमण से बचा लिया, परन्तु स्वयं उस राज्य को अपने अधीन कर लिया। दुर्बल होने के कारण जिंजी के नायकों में विरोध करने की शक्ति न रही। मदुरा के नायक तिरुमल ने इस घटना से दुःखी तथा अचम्भित होकर बीजापुर के सुल्तान से सहायता मांगी। बीजापुर तथा गोलकुण्डा परस्पर विरोधी रियासतें थीं। तिरुमल ने इस झगड़े से फायदा उठाने के लिए बीजापुर से निवेदन किया। तालिकोट के युद्ध में सुल्तान आपस में मेल का लाभ समझ गये थे; अतएव इस बार भी बीजापुर और गोलकुण्डा के बादशाहों ने मिलकर जिंजी और मदुरा पर चढ़ाई की और दोनों नायकों को युद्ध में परास्त कर दिया। दोनों ने सन्धि कर सुल्तानों को वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। उनके विरोध से तिरुमल को लाभ के स्थान पर गहरी हानि उठानी पड़ी। इस युद्ध में छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी बीजापुर के सुल्तान की ओर से लड़ते रहे। जब तिरुमल ने बीजापुर के सुल्तान के पास सहायता के लिए निवेदन किया तो उसने शाहजी को अब्दुल्ला खाँ के साथ मदुरा भेजा। परन्तु जैसा कहा गया है कि इस प्रार्थना का फल बड़ा बुरा हुआ। उसी समय शाहजी ने जिंजी के नायक को परास्त किया और इस प्रांत के वे स्वयं जागीरदार बन गये।

कर्नाटक प्रांत में इकेरी का एक छोटा भाग था, जहां का नायक सदा विजयनगर के अधीन रहा। यहां का नायक एक लिंगायत शैव था। सदाशिव राय के राज्य-काल में सदाशिव नामक व्यक्ति ने राजा (विजयनगर के शासक) से बरकुर तथा मंगलोर प्रान्त के शासन

करने की आज्ञा प्राप्त की। कहने का तात्पर्य यह है कि सन् १५६० ई० के लगभग राजाज्ञा प्राप्त कर सदाशिव इकेरी का नायक बन बैठा। वह सदा केन्द्रीय-शासक को कर भेजता रहा और उसकी आज्ञा के अनुकूल काम करता रहा। तालिकोट के महान् विध्वंसकारी युद्ध के पश्चात् सब नायक धीरे-धीरे स्वतंत्र होते गये। इसी समय इकेरी भी स्वतंत्र हो गया। इसका कारण यह न था कि सदाशिव नायक विजयनगर-शासक की संरक्षता से पृथक् होना चाहता था। इकेरी के जैन सरदार लिंगायतों के शासन के विरोधी थे। जैन होकर शैव-राजा के अन्तर्गत रहना सरदारों को खलता था। वे उस समय की प्रतीक्षा में जब वे लिंगायतों का सफल विरोध कर सकें। सदाशिव के विरोधी होने से पूर्व ही जैन सरदारों ने विप्लव कर दिया। इस घरेलू युद्ध में जैन सरदार परास्त किये गये और वेंकटप्पा नायक ने इकेरी में स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया।

(घ) इकेरी के नायक सदाशिव

वेंकटप्पा अपने राज्य को शक्तिशाली बनाकर शासन करता रहा। इसको समकालीन नायकों के आक्रमण का डर था। अतएव जिंजी से पचीस मील दक्षिण में बेदनोर को इसने अपनी राजधानी बनाई। सन् १६४६ के समीप तंजौर के नायक शिवप्पा ने इकेरी पर आक्रमण किया। परन्तु इसमें उसे सफलता न मिली। बीजापुर की सेना ने इकेरी पर चढ़ाई की, परन्तु हार कर वापस चली गई। बेदनोर में इकेरी के नायक आदर्श-प्रणाली से शासन करते थे। उन्होंने शत्रुओं से सामना करने के लिए मजबूत किले तैयार कराये। इन किलों पर अधिकार करना सरल काम न था। यही कारण है कि शाहजी की अध्यक्षता में बीजापुर की सेना परास्त होकर वापस चली आई। प्रायः सौ वर्ष तक इकेरी के नायक बेदनोर में रह कर शासन करते रहे। उनके इतने लम्बे शासन-काल से यह प्रकट होता है कि सुप्रबन्ध के कारण प्रजा प्रसन्न थी और राजा की प्रबल शक्ति के कारण शत्रुओं को आक्रमण करने का साहस न होता था। मैसूर-राज्य में हैदरअली की उन्नति होने पर

वेंकटप्पा

दक्षिण-भारत के शासक उसके आधीन होते गये। उसने उनके राज्यों को जीत कर मैसूर-राज्य का विस्तार किया। हैदरअली ने सन् १७६० ई० केलगभग इक्केरी पर आक्रमण किया और इस प्रकार इस प्रांत को हैदर ने अपने राज्य में मिला लिया।

विजयनगर राज्य के शक्ति हीन होने पर तालिकोट के युद्ध के पश्चात् दक्षिण-भारत के नायक-गण स्वतंत्र हो गये। उनका शासन करीब सौ वर्ष तक स्थिर रहा। हिन्दू राज्य के नष्ट हो जाने पर मुसलमान शासकों से नायकों का युद्ध होता रहा। बहमनी सुल्तानों के स्थान पर मरहठों तथा हैदर अली का आधिपत्य दक्षिण में स्थापित हो गया। अतएव नायकों का राज्य इन्हीं के अन्तर्गत आ गया। धीरे-धीरे इन शासकों ने नायक राज्यों को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। सर्व प्रथम शाहजी की जागीर के के रूप में मरहठों का शासन रहा, फिर शिवाजी और पेशवा के शासन तक उस पर मरहठों का अधिकार रहा।

दक्षिण-भारत में नायक-शासन

नायक लोगों के शासन काल में दक्षिण भारत की बहुत उन्नति हुई। उन लोगों ने 'पालिगर' प्रणाली को निकला। देश की रक्षा में इससे पूरी सहायता मिली। शाहजी ने इस तरीके को नष्ट कर दिया। इस कारण से सेना-सम्बन्धी प्रबन्ध में नायक लोग कमज़ोर पड़ गये। नायक लोगों का ध्यान जल सेना की ओर से भी हट गया। वे शत्रुओं का मुकाबिला करते रहे, पर नाविक-शक्ति कम हो जाने पर समुद्र पर विजय प्राप्त न कर सके। इनके नाश का यह भी एक मुख्य कारण था।

नायकों ने अपनी धार्मिक भावना के साथ-साथ धार्मिक-सहिष्णुता भी बनाये रखी। इन्होने साधुओं को ज़मीन दी और राजधानी में चर्च बनाने की आज्ञा दी। दक्षिण में ईसाई धर्म का खूब विस्तार हुआ। पुर्तगाली पहले मित्रता का भाव रखते थे। परन्तु कारोमण्डल पर आधिपत्य स्थापित कर, इन लोगों ने हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान रामेश्वरम् में यात्रियों पर कर लगाना शुरू कर दिया। अतएव

धार्मिक जनता का राजा पर विश्वास न रहा। ये शासक धर्म की रक्षा न कर सके। जनता की सहानुभूति जाती रही और नायक-गण शनैः शनैः शक्ति-हीन होते गये।

समस्त नायकों का राज्य समृद्धिशाली था। व्यापार की पूरी उन्नति थी। पुर्तगाली तथा डच लोगों के हाथ में अधिक व्यापार आगया था। जब तक विदेशियों और नायकों में मित्रता रही, तब तक व्यापार में पर्याप्त लाभ होता रहा। नायकों की नाविक शक्ति कमजोर होने पर पुर्तगाली लोगों ने कारोमण्डल तथा पश्चिमी किनारे पर अपना प्रभुत्व जमाया। समुद्र के किनारे मोती निकालना तथा अन्य सामुद्रिक व्यापार इन्हीं के हाथों में रहा। उनकी समानता करना नायकों की शक्ति के बाहर की बात होगई थी। नायक राजाओं का धन तथा वैभव कम होने लगा। राजाओं की आय तथा उनका प्रभाव घटने लगा जिसके कारण उनका अन्त हो गया।

नायकों के शासन-प्रबन्ध का पता उनके सार्वजनिक कार्यों से लगता है। यों तो प्रत्येक नायक अपनी अपनी पृथक् मुद्रा रखते थे परन्तु उनके सिक्के सर्वत्र चलते थे। नायक लोगों ने राजधानी में अनेक भवन तथा मन्दिर बनवाये जो भारत की स्थापत्य-कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इनकी एक पृथक् शैली तैयार हो गई थी। सभी ने इस कला-शैली की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। देश की रक्षा के निमित्त अभेद्य दुर्ग बनवाये गये थे, जिन पर अधिकार करके हैदरअली शक्ति-शाली बन गया था। जनता के हित के लिए नहर तथा तालाब खुदवाये गये थे जिनसे सिंचाई का काम अच्छी रीति से होता था। दान देने में नायक गण किसी से पीछे न थे। सारे दक्षिण-भारत को धन, धान्य और वैभव पूर्ण बनाने में नायकों का भी पर्याप्त हाथ था। परन्तु समय के परिवर्तन से मरहटों और हैदर अली की बढ़ती हुई शक्ति के सामने ये ठहर न सके और सदा के लिए काल के गाल में विलीन हो गये।

सार्वजनिक-कार्य

(२) राजधानी का परिवर्तन

विजयनगर इतिहास के अध्ययन के पश्चात् यह कहने की आवश्यकता नहीं मालूम होती कि राज्य का नाम राजधानी के नामकरण के बाद हुआ। राजाओं ने विजयनगर नामक नगर को स्थापित कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। परन्तु अभी तक यह विषय विवाद-ग्रस्त ही है कि इस नाम के नगर को सर्व प्रथम किस शासक ने स्थापित किया। यदि इस विषय की विवेचना की जाय तो ज्ञात होता है कि विजयनगर नामक नगर का संस्थापक कोई ऐसा व्यक्ति था जिसने दक्षिण-भारत की भौगोलिक-स्थिति पर अच्छी तरह से विचार कर, राज्य की रक्षा निमित्त नये नगर की स्थापना की। इस विषय की जांच के लिए होयसल-राज्य के लेखों, विजयनगर के लेखों, साहित्यक-प्रमाणों तथा विदेशियों के यात्रा-विवरणों पर दृष्टि डालना परमावश्यक हो जाता है।

विजयनगर राज्य की स्थापना से पूर्व उसी भूभाग पर होयसल-वंश का राज्य था। उनके लेखों में 'विजयनगर' नामक नगर का उल्लेख नहीं मिलता। उनके लेखों में इसके लिए इन तीन नामों— (१) अनेगुडी (२) हस्तिनावटी और (३) 'वीर विजय विरुपाक्षपुर' का उल्लेख मिलता है। एक लेख[1] में यह वर्णन मिलता है कि होयसल-वंश के प्रतापी नरेश वीर बल्लाल तृतीय ने अपने पुत्र के नाम पर राजधानी का नाम 'वीर विजय विरुपाक्षपुर' रक्खा। दूसरे लेख[2] में यह स्पष्टतया उल्लिखित है कि होयसल-वंश के नरेश विजय विरुपाक्षपुर में शासन करते थे। विजयनगर के शासक हरिहर द्वितीय के सन् १३८० ई० के लेख में विजयनगर का प्राचीन नाम 'विरुपाक्षपुर' मिलता है[3]। इससे पुरानी राजधानी का नाम

---

१ एपि०कर० भा०६ पृ० ४३। २ एपि० कर० भा०११ पृ० ४।
३ मद्रास ए० रि० १६१६।

ज्ञात होता है। अतः इन लेखों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि विरुपाक्षपुर होयसल-वंश की राजधानी थी। इसके दूसरे नाम के लिए विदेशी ऐतिहासिक पेई के कथन पर विश्वास करना पड़ता है। उसका कथन है कि राजा अनेगुड़ी में शासन करता था। सम्भवतः बल्लाल तृतीय के समय में यह होयसल राजाओं की दूसरी नगरी रही हो[1]। विद्वानों की राय है कि बल्लाल तृतीय ने तुंगभद्रा नदी के उत्तरी किनारे पर अनेगुड़ी नगर स्थापित किया था। दक्षिण की भौगोलिक-स्थिति पर विचार करने से यह बात सिद्ध होती है कि शत्रुओं से रक्षा करने के लिए बल्लाल ने इस नगर को अवश्य तैयार किया होगा। तुङ्गभद्रा के उत्तरी किनारे पर यह नगर बसाया गया था। बल्लाल तृतीय ने इसे सुरक्षित करने के लिए एक दुर्ग तैयार कराया। वास्तु-कला के ज्ञाता यह बतलाते हैं कि अनेगुडी की बनावट रंगनाथ स्वामी के मन्दिर के सदृश थी। अतः इस आधार पर यही कहना पड़ता है कि होयसल वंशी राजा बल्लाल के समय में अनेगुडी एक प्रधान नगर था। सम्भवतः शासक ने इसी को अपनी राजधानी बना लिया। विजयनगर के लेखों से भी इसी बात की पुष्टि होती है। इन लेखों में अनेगुडी के लिए हस्तिनावटी का प्रयोग किया गया है, जिसका भाव एक ही है। एक लेख[2] में यह वर्णन पाया जाता है कि देवराय द्वितीय अनेगुडी दुर्ग या हस्तिनावटी में थोड़े समय के लिए निवास करता था। सन् १३६६ ई० में हरिहर द्वितीय का भी निवास स्थान हस्तिनावटी (अनेगुडी दुर्ग) बतलाया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि होयसल राज्य की राजधानी अनेगुडी थी। दुर्ग के कारण वह स्थान सुरक्षित था। बल्लाल तृतीय ने रक्षा के निमित्त इसे स्थापित किया था।

होयसल-वंश के उत्तराधिकारी विजयनगर के नरेशों ने अपनी अलग

---

१ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २५६।

२ एपि० कर० भा० ७ पृ० २८८

राजधानी बसाई, परन्तु राज्य की सीमा में स्थित हस्तिनावटी (अनेगाडी दुर्ग) में भी थोड़े समय के लिए रहते थे। राज्य की यात्रा करते समय भी शासकगण वहां आकर रहते थे। अतएव यह बात निश्चत हो जाती है कि विजयनगर नामक स्थान से होयसलों की नगरी भिन्न थी।

विजयनगर के शासकों ने अपनी राजधानी का नाम विजयनगर रक्खा। इस नगरी की स्थापना हेमकूट पर्वत पर तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी-भाग में हुई थी। इस नगर की स्थापना का यही कारण जान पड़ता है कि हिन्दू-शासक बहमनी के सुल्तानों से दूर रहना चाहते थे। होयसल-वंश के उत्तराधिकारी होते हुए भी बुक्क तथा हरिहर ने राजधानी को परिवर्तित कर दिया। उन्होंने दक्षिणी-भाग को सुरक्षित समझ कर विजय-नगर की स्थापना अनेगुडी से दूर स्थान पर की।

इस विषय में मतभेद है कि विजयनगर नामक राजधानी का संस्थापक कौन था ? न्यूनिज़ के कथन से प्रकट होता है कि होयसल-नरेश बल्लाल ही उस नये नगर की स्थापना की थी। उस समय इसका नाम 'होसपट्टन' (नया नगर) था। कुछ विद्वान् इस मत के मानने वाले हैं कि होसपट्टन की स्थापना बल्लाल तृतीय ने की, परंतु विजयनगर के शासक बुक्क प्रथम ने इसका नाम बदल कर 'विजयनगर' रक्खा[1]। इसी लेख में बुक्क को 'महाराजधिराज' कहा गया है। विद्वानों की धारणा यह है कि प्रजा ने बुक्क का अभिषेक हस्तिनावटी (नये नगर) में किया और उस नगर का नाम 'विजयनगर' में परिवर्तित कर दिया। एक विदेशी यात्री ने लिखा है कि नये नगर की स्थापना बुक्क ने की[2]। हम इस निष्कर्ष पर इस कारण भी पहुंचते हैं कि बुक्क प्रथम से पूर्व शासक हरिहर की पदवी 'महाराज' की न थी। हरिहर के नेलोर के लेख[3] में वर्णन आता है कि हरिहर ने विद्यारण्य की सहायता से विजयनगर की स्थापना की। एक

---

१ एपि० कर० भा० ५। २ सेवेल—वही पृ० २२, २९९।
३ एपि० कर० भा० १०।

दूसरे एक लेख में यह वर्णन आता है कि विद्यारण्य ने इस नगर की स्थापना की थी[1]। इसी बात की पुष्टि हरिहर द्वितीय के शृंगेरी ताम्रपत्र से भी होती है। इसमें बुक्क के दान का वर्णन करते हुए यह लिखा है कि विद्यारण्य ने विजयनगर की स्थापना की[2]। इसमें कोई मौलिक विरोध ज्ञात नहीं होता। यह संभव है कि गुरु की आज्ञानुसार इन नरेशों ने अपनी राजधानी में परिवर्तन किया हो। हस्तिनावटी का नाम बदल कर 'विजयनगर' रक्खा गया। सम्भवतः सन् १३६८ ई० के बाद होयसल राजधानी को उसी अवस्था में छोड़ कर 'विजयनगर' शासकों ने नये स्थान को अपनी राजधानी बनाया, क्योंकि वे होयसलों के स्थानापन्न होते हुए भी पूर्ववर्ती राजा के यश के ध्वंसकारक न थे। हरिहर द्वितीय के एक लेख में विजयनगर को नई राजधानी बतलाया गया है[3]। उसमें बुक्क तथा हरिहर की समता कृष्ण तथा बलराम से और द्वारिका की समता विजयनगर से की गई है। इस प्रकार वर्णन मिलता है–[4]

अथानुजस्तस्य जगति प्रतीतः श्रीबुक्कराजो विजयाभिधानम्।

विजयनगर शासकों के एक लेख में[5] राजधानी विजयनगर के साथ प्राचीन नगरों-अनेगुडी तथा हस्तिनावटी का नाम मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्राचीन राजधानी का नया नाम विजयनगर था। हरिहर तथा बुक्क के वंशज इसी स्थान से शासन करते रहे। कम्पण की स्त्री गंगदेवी ने अपने काव्य-ग्रंथ 'मधुरा-विजयम्' में स्पष्टतया लिख दिया है कि विजयनगर नामक नगर ही राजधानी थी—

तस्यासीद् विजया नाम, विजयार्जित संपदः राजधानी।

एक लेख[6] में इसी प्रकार का वर्णन पाया जाता है—

---

१ एपि० कर० भा० ८। २ मद्रास एन्युवल रिपोर्ट १९१६।
३ एपि० कर० ५ पृ० ४४। ४ एपि० कर० भाग ११ पृ० ४२
५. एपि० कर० भाग ७ पृ० १४६। ६ एपि० कर० भाग ५ पृ० २३२

विजित्य विश्वं विजयाभिधानं विश्वोत्तरा या नगरी व्यधत्त ।"
इस वर्णन के पश्चात् विवाद के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता है और यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि विजयनगर के राजाओं ने अपनी नई राजधानी बनाई। परन्तु यह नगर (विजयनगर) होयसल राजधानी से सर्वथा भिन्न था। इसकी पुष्टि लेखों, यात्रियों के कथन तथा साहित्यिक प्रमाणों से होती है।

विजयनगर नामक नगर में बहुत समय तक अनेक राजा शासन करते रहे। परन्तु कालान्तर में आवश्यकता-वश राजधानी का परिवर्तन कर दिया

दूसरी राजधानी-पेनुगोडा

करते थे। संगम के वंशज सदा बहमनी राज्य से युद्ध करते रहे। मुसलमानों के आक्रमण के भय से ही विजयनगर की स्थापना तुंगभद्रा के दक्षिण में की गई थी। परन्तु युद्ध के बराबर चलते रहने के कारण देवराय द्वितीय के पुत्र मल्लिकार्जुन के समय में राजधानी के परिवर्तन की आवश्यकता मालूम पड़ी। बहमनी सुल्तानों ने विजयनगर नरेशों को शक्ति-हीन तथा प्रभुत्व-रहित समझकर आक्रमण जारी रक्खा। यही कारण था कि पेनुगोडा नामक स्थान को दूसरी राजधानी बनाया गया। विजयनगर से दक्षिण में सौ मील की दूरी पर पेनुगोडा नगर स्थित था। यहां पर एक मजबूत किला भी बना था। अतएव मल्लिकार्जुन ने पेनुगोडा को सुरक्षित समझ कर उसे अपनी राजधानी बनाया। शताब्दियों तक यही नगर राजधानी बना रहा। विजयनगर के दूसरे तथा तीसरे वंश के राजा पेनुगोडा में शासन करते रहे। सन् १५७६ ई० में बीजापुर के सुल्तान ने पेनुगोडा पर चढ़ाई की। वहां का शासक (विजयनगर का चौथा वंश) श्रीरंग पराजित हो गया। मुसलमानों ने उसे पकड़ लिया परन्तु असंख्य धन देने पर मुक्त कर दिया।

उसके उत्तराधिकारी वेंकट ने इस बात को अत्यन्त आवश्यक समझा कि राजधानी को और दक्षिणी भाग में हटा दिया जाय। अतएव उसने

चन्द्रगिरि नामक सुन्दर स्थान को इस कार्य के लिए चुना। चन्द्रगिरि में एक सुन्दर दुर्ग था। पठारी भाग में इसकी स्थिति होने के कारण यह बहुत सुन्दर नगर था। कुछ लेखों[1] में वर्णन मिलता है कि वेंकट पेनुगोंडा में शासन करता था, परन्तु इस उल्लेख का भाव यह है कि वह शासन-सम्बन्धी कार्यों के लिए राजकीय यात्रा के सिलसिले में वहां जाया करता था। विजयनगर के नरेशों में यह विशेषता थी कि वे राज्य में भ्रमण किया करते तथा प्रजा की वास्तविक अवस्था की जानकारी प्राप्त करते थे। इसी सम्बन्ध में सम्भवतः वेंकट वहां गया हो। लेकिन यह निश्चत है कि उसने श्रीरंग के मुक्त होने पर, शासन की बागडोर लेते ही, पेनुगोडा के स्थान चन्द्रगिरि को अपनी राजधानी बनाई। उस स्थान में वेंकट को नायकों की सहायता प्राप्त थी। अतः नायकों की सहायता से सुल्तानों पर चढ़ाई करने के विचार से वेङ्कट ने चन्द्रगिरि को ही पसन्द किया। सालुव नरसिंह ने वहां एक विशाल दुर्ग तैयार कराया था। कृष्णदेवराय तथा अच्युत को भी चन्द्रगिरि प्रिय था और वे वहां वर्ष में कुछ काल तक निवास किया करते थे। वेङ्कट ने जब राजधानी का परिवर्तन किया तब बड़े धूमधाम के साथ नये नगर में प्रवेश किया। उस समारोह के अवसर पर राजा की रानी भी थी! जलूस में हाथी, घोड़े तथा मनुष्यों का अपूर्व जमघट था। वेङ्कट वहां 'स्वर्ण-भवन' में रहने लगा। सब सामन्त तथा नायक लोग वहां आते थे और राजा को भेंट देते थे। फिरिस्ता ने लिखा है कि वेङ्कट ने चन्द्रगिरि पर स्थित होकर गोलकुण्डा पर चढ़ाई की। एक लेख[2] से भी फिरिस्ता के कथन की पुष्टि होती है। गोलकुण्डा पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख कई लेखों[3] में पाया जाता है। अतः इससे प्रकट

तीसरी राजधानी चन्द्रगिरि

---

१ एपि० कर० भा० ७ ब १२। २ एपि० कर० भा० १२

३ एपि० कर० भा० ७, १६ पृ० २६७

होता है कि राजधानी के परिवर्तन से वेङ्कट की शक्ति बढ़ गई। सामंतों तथा नायकों ने सहायता पहुँचाई। पेनुगोंडा के छोड़ने का फल अच्छा ही हुआ। विजयनगर के शासक अन्तिम समय तक चन्द्रगिरि में ही शासन करते रहे।

अतएव उपर्युक्त विस्तृत विवरण से यही प्रकट होता है कि विजयनगर नरेश मुसलमानों (बहमनी सुल्तानों) के आक्रमण के भय से से अपनी राजधानी बदलते रहे और क्रमशः दक्षिण की ओर हटते रहे। इन शासकों ने विजयनगर से पेनुगोंडा तथा वहाँ से चन्द्रगिरि को अपनी राजधानी बनाई। ये स्थान सुरक्षित होते हुए भी विजयनगर राजाओं की शक्ति-क्षीण होने के कारण मुसलमानों द्वारा ले लिये गये। यही इस साम्राज्य की विभिन्न राजधानियों की संक्षिप्त कथा है।

---

(३) विजयनगर-इतिहास-सम्बन्धी सामग्री

वर्तमान समय में भारत के किसी प्राचीन राजवंश अथवा साम्राज्य का इतिहास लिपिबद्ध नहीं मिलता। परन्तु इससे यह अनुमान करना अनुचित होगा कि भारतियों की इतिहास में अभिरुचि नहीं थी। ये पारलौकिक विषयों का चिंतन करते हुए भी इतिहास की महत्ता से अनभिज्ञ न थे। इतिहास को पढ़ना तथा सुनना हमारी प्राचीन-शिक्षा में सम्मलित था तथा एक प्रधान अंग था। यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक घटनाओं को क्रमबद्ध लिखने की परिपाटी इस देश में नहीं थी। फलतः विजयनगर के इतिहास की सामग्री भी एकत्र उपस्थित नहीं मिलती। यह नाना स्थानों में बिखरी हुई है। इन्हीं सबको एकत्रित कर इस साम्राज्य का इतिहास तैयार किया जाता है। विजयनगर के इतिहास के निम्नलिखित साधन हैं—

(१) उत्कीर्ण लेख (२) साहित्य (३) शिल्पकला (४) मुद्रायें (५) पुर्तगाली तथा मुसलमान यात्रियों के यात्रा-विवरण (६) मुसलमान इतिहास-लेखकों के ग्रन्थ।

१. उत्कीर्ण लेख

भारत के किसी भी प्राचीन काल का इतिहास देखा जाय तो यह पता चलता है कि उसके साधनों में उत्कीर्ण लेखों का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। समस्त ऐतिहासिक सामग्रियों में उनका स्थान सर्वोपरि है। विजयनगर के इतिहास को जानने में लेखों से अत्यन्त अधिक सहायता प्राप्त हुई है। प्रायः प्रत्येक राजाओं के शासनकाल के अनेक लेख प्राप्त होते हैं। विजयनगर के लेख अधिकतर ताम्रपत्रों तथा प्रस्तर-खण्डों पर उत्कीर्ण मिलते हैं। इन लेखों से राजाओं के जीवन-वृत्त का पता चलता है। कभी-कभी राजाओं के विशिष्ट कार्यों का भी उल्लेख इन लेखों में किया गया मिलता है। इन उत्कीर्ण लेखों

के द्वारा तत्कालीन शासन-प्रणाली, सामाजिक जीवन तथा धार्मिक अवस्था का परिचय मिलता है। ताम्र-पत्रों में दान का अधिक उल्लेख पाया जाता है जिससे विजयनगर शासकों की धार्मिकता तथा दयालुता ज्ञात होती है।

२. संस्कृत तथा तेलुगु साहित्य

विजयनगर की ऐतिहासिक सामग्रियों में संस्कृत तथा तेलुगु-साहित्य का विशेष स्थान है। इस समय में आचार्य सायण ने वेदों पर भाष्य लिखा। उनकी पुष्पिका में सायण ने सर्वत्र विजयनगर राजाओं के नाम का उल्लेख किया है। सायण के भ्राता माधवाचार्य ने भी धर्मशास्त्र तथा वेदान्त पर अनेक पुस्तकों की रचना की। विजयनगर राजाओं की आज्ञा से उन पुस्तकों की रचना होती थी, अतएव इन ग्रंथों में शासकों का नामोल्लेख होना स्वाभाविक ही था। ये ग्रन्थकार विजयनगर-राज्य में मंत्री पद को सुशोभित करते थे। अतः ऐतिहासिक विवरण इनके ग्रन्थों में ठीक ठीक पाये जाते हैं। सायण तथा माधव के ग्रन्थों का वर्णन पहले किया गया है। यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सायण के भाष्य तथा माधव के ग्रन्थों से तत्कालीन इतिहास पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

इसके अतिरिक्त तेलुगु भाषा में भी अनेक प्रामाणिक ग्रंथों की रचना हुई जो इस राज्य के इतिहास जानने में अत्यन्त सहायक हैं। कम्पण की स्त्री ने 'मधुरा-विजयम्' नामक पुस्तक की रचना की जिससे मुसलमानों के परास्त किये जाने का हाल मालूम पड़ता है। कृष्णदेव राय ने राज नीति पर 'आमुक्तमाल्यम्' नामक ग्रन्थ लिखा। विजयेन्द्र तथा पटंकुश ने धर्म पर सारगर्भित पुस्तकें लिखीं। वेङ्कट सेनापति अनन्त की लिखी 'काकुस्थ-विजयम्' ऐतिहासिक सामग्री से भरी पड़ी है। अनेक ऐसी पुस्तकें मिलती हैं जिससे तत्कालीन राजनैतिक तथा धार्मिक अवस्था का ज्ञान होता है। जैनियों के रचित ग्रन्थ ऐतिहासिक उल्लेखों के साथ ही उनके धर्म की महत्ता को भी बतलाते हैं।

पुर्तगाली-साहित्य में भी ऐसी पुस्तकें उपलब्ध हैं जिसमें विजयनगर राज्य की घटनाओं का उल्लेख पाया जाता है। पुर्तगाली राजदूत विजय-

नगर दरबार में आते रहते थे। उनका समुचित स्वागत भी होता था। हिन्दू-राजाओं से उन्होंने व्यापारिक-सन्धि भी की। इन सबका विवरण पुर्तगालियों ने लिखा है।

३. शिल्पकला

किसी भी जाति तथा राज्य की उन्नति का अनुमान उसकी शिल्प-कला से किया जा सकता है। विजयनगर के शासन-काल में शिल्पकला को विशेष स्थान प्राप्त था। कला के प्रत्येक अङ्ग की उन्नति राजाओं तथा उनके सामंतों के शासन काल में हुई। कला के इतिहास में विजयनगर की एक पृथक् शैली (School) स्थापित हो गई है। परन्तु इसके उदाहरण कम पाये जाते हैं। दक्षिण-भारत में सर्वत्र इसी शैली का अनुकरण होता रहा। तंजौर तथा मदुरा के मन्दिरों से उस समय की शिल्पकला की विशेषता जानी जा सकती है।

४. मुद्रायें

इतिहास के निर्माण में तत्कालीन मुद्राओं का भी पर्याप्त स्थान रहता है। भारत के इतिहास में कितने ऐसे काल-विभाग हैं जिनके अस्तित्व का परिचय केवल मुद्राओं से ही मिलता है। इससे उस समय की व्यापारिक अवस्था का भी ज्ञान होता है। सिक्कों से राजाओं के नाम तथा उन पर बनी आकृतियों से उनके इष्ट-देव का ज्ञान होता है। उनको देखने से प्रकट हो जाता है कि अमुक राजा शैव या वैष्णव था। विजयनगर के सिक्कों पर शिव, नन्दी की आकृतियाँ पाई जाती हैं। लक्ष्मी के चिह्न से वैष्णव होने की बात सिद्ध होती है। इनसे यह भी मालूम पड़ता है कि सर्व प्रथम कृष्णदेव राय ने सिक्कों पर नागरी अक्षर खुदवाये। इस प्रकार सिक्कों से इतिहास की अनेक बातें ज्ञात होती हैं।

५. विदेशी यात्रियों के यात्रा-विवरण

भारतीय इतिहास के निर्माण में विदेशी यात्रियों के यात्रा-विवरणों से बहुत अधिक सहायता मिली है। विजयनगर राज्य में पुर्तगाली, इटालियन तथा मुसलमान यात्रियों का आवागमन जारी रहा। उन लोगों

के यात्रा-विवरण से तत्कालीन शासन, धर्म, समाज, व्यापार तथा राजा की दैनिक जीवन सम्बन्धी बातों का पता लगता है। अब्दुर रज्जाक तथा फिरिस्ता का नाम मुसलमान यात्रियों में प्रधान है। इनका विवरण अत्यन्त प्रामाणिक तथा सारगर्भित समझा जाता है। इटली देश के यात्री निकोलो ने भी राज्य का सुन्दर वर्णन किया है। पुर्तगाली पादरियों के अतिरिक्त पेई, फ्रेडरिक तथा बारबोसा लिखित वर्णन विजयनगर के इतिहास पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं। इनके अतिरिक्त पुर्तगाली राजदूत का विवरण तत्कालीन व्यापार का परिचय देता है।

इस प्रकार विजयनगर के इतिहास की सामग्री इन विभिन्न लेखों, ग्रन्थों तथा यात्रा-विवरणों में बिखरी पड़ी है। इन सामग्रियों का उचित उपयोग करके ही विजयनगर का सच्चा इतिहास लिखा जा सकता है। आज कल विजयनगर के इतिहास के संबंध में अनेक विद्वानों ने खोज की है जिनमें डा० कृष्णस्वामी, हेरास तथा सालातोर का नाम प्रसिद्ध है। इनकी पुस्तकें मौलिक हैं तथा इस साम्राज्य के इतिहास को जानने के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा आवश्यक हैं।

—समाप्त—